अंक 304 वर्ष 61

भाषा

सितंबर–अक्तूबर 2022

भाषा
सितंबर–अक्तूबर 2022

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
भारत सरकार

भाषा (द्वैमासिक)

लेखकों से अनुरोध

1. ***भाषा*** में छपने के लिए भेजी जाने वाली सामग्री यथासंभव सरल और सुबोध होनी चाहिए। रचनाएँ प्रायः टंकित रूप में भेजी जाएँ। हस्तलिखित सामग्री यदि भेजी जाए तो वह सुपाठ्य, बोधगम्य तथा सुंदर लिखावट में होनी अपेक्षित है। रचना की मूलप्रति ही भेजें। फोटोप्रति स्वीकार नहीं की जाएगी।

2. लेख आदि सामान्यतः फुल स्केप आकार के दस टंकित पृष्ठों से अधिक नहीं होने चाहिए और हाशिया छोड़कर एक ओर ही टाइप किए जाने चाहिए।

3. अनुवाद तथा लिप्यंतरण के साथ मूल लेखक की अनुमति भेजना अनिवार्य है। इससे रचना पर निर्णय लेने में हमें सुविधा होगी। मूल कविता का लिप्यंतरण टंकित होने पर उसकी वर्तनी संबंधी त्रुटियाँ प्रायः नहीं होंगी, अतः टंकित लिप्यंतरण ही अपेक्षित है। रचना में अपना नाम और पता हिंदी के साथ–साथ अंग्रेजी में भी देने का कष्ट करें।

4. सामग्री के प्रकाशन विषय में संपादक का निर्णय अंतिम माना जाएगा।

5. रचनाओं की अस्वीकृति के संबंध में अलग से कोई पत्राचार कर पाना हमारे लिए संभव नहीं है, अतः रचनाओं के साथ डाक टिकट लगा लिफाफा, पोस्टकार्ड आदि न भेंजे। इन पर कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी।

6. अस्वीकृत रचनाएँ न लौटा पाने की विवशता/असमर्थता है। कृपया रचना प्रेषित करते समय इसकी प्रति अपने पास अवश्य रख लें।

7. भाषा में केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी वर्तनी का प्रयोग किया जाता है। अतः रचनाएँ इसी वर्तनी के अनुसार टाइप करवाकर भेजी जाएँ।

8. समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए।

संपादकीय कार्यालय

संपादक, भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110066

सत्यमेव जयते

भाषा

सितंबर–अक्तूबर 2022
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका (क्रमांक–16)

अध्यक्ष, परामर्श एवं संपादन मंडल
प्रोफेसर नागेश्वर राव

परामर्श मंडल
प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित
सुश्री ममता कालिया
प्रो. सत्यकाम
प्रो. करुणाशंकर उपाध्याय
प्रो. पूरनचंद टंडन
प्रो. शैलेंद्र शर्मा
डॉ. एम. गोविंदराजन
डॉ. जे.एल.रेड्डी
श्री रविशंकर रवि

संपादक
डॉ. किरण झा

सह–संपादक
मीनाक्षी जंगपांगी
श्री प्रदीप कुमार ठाकुर

कार्यालयीन व्यवस्था
सेवा सिंह
संजीव कुमार

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

ISSN 0523-1418
भाषा (द्वैमासिक)
वर्ष:**61 अंक: 5 (304)**
सितंबर–अक्तूबर, 2022

संपादकीय कार्यालय
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट:www.chdpublication.education.gov.in
www.chd.education.gov.in
ईमेल:bhashaunit@gmail.com
दूरभाष: 011–26105211 / 12

बिक्री केंद्र:
नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस,
दिल्ली- 110054
वेबसाइट:www.deptpub.gov.in
ई–मेल:acop-dep@nic.in
दूरभाष: 011-23817823/ 9689

सदस्यता हेतु ड्राफ्ट नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग, दिल्ली के पक्ष में भेजें।

बिक्री केंद्र:
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट:www.chdpublication.education.gov.in
www.chd.education.gov.in
ईमेल:bhashaunit@gmail.com
दूरभाष: 011–26105211 / 12

सदस्यता हेतु ड्राफ्ट निदेशक, कें. हिं. नि.,
नई दिल्ली के पक्ष में भेजें।

1. शुल्क सीधे www.bharatkosh.gov.in Quick Payment Ministry (007 Higher Education) Purpose (Education receipt) में digital mode से जमा करवाई जा सकती है।
2. कृपया दिए गए बिंदुओं के आधार पर सूचनाएँ देते हुए संलग्न प्रोफ़ॉर्मा भर कर भेजें।
3. भाषा पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र निदेशालय की वेबसाइट www.chdpublication.education.gov.in से डाउनलोड किया जा सकता है।

मूल्य:		
1. एक प्रति का मूल्य	=	रु. 25.00
2. वार्षिक सदस्यता शुल्क	=	रु. 125.00
3. पंचवर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 625.00(डाक खर्च सहित)
4. दस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 1250.00
5. बीस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 2500.00

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे भारत सरकार या संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

भाषा
सितंबर–अक्तूबर, 2022

अनुक्रमणिका
निदेशक की कलम से
आपने लिखा
संपादकीय
आलेख

1.	भारतीय भाषाओं में अंतःसंबंधों की आधारभूमियाँ	प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल	9
2.	हिंदी एवं बांग्ला के 'से' परसर्ग का तुलनात्मक अध्ययन	अनीता गांगुली	22
3.	मलयालम भाषा, साहित्य एवं संस्कृति	पी. ए. राधाकृष्णन	29
4.	रघुवीर सहाय का हिंदी चिंतन	अमिय कुमार साहु	33
5.	शताब्दी वर्ष के बहाने 'पुष्प की अभिलाषा' का पुनर्पाठ	धर्मेंद्र प्रताप सिंह	38
6.	हिंदी पत्रकारिता और 'सरस्वती' पत्रिका	राहुल राज आर्यन	45
7.	वर्तमान समय में हिंदी शिक्षणः दशा एवं दिशा	प्रभाकर कुमार	50
8.	मुझे नहीं मरना है कभी : नरेश मेहता	गुर्रमकोंडा नीरजा	55
9.	कन्नड हिंदी शब्दकोशों का अनुशीलन और रचना प्रक्रिया	महबूबअली अ. नदाफ	60
10.	हिंदी में आलोचना और रमेशचंद्र शाह का आलोचना कर्म	हनुमान प्रसाद शुक्ल	68
11.	क्रांतिपुत्री दुर्गा भाभी और स्वाधीनता संग्राम	डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह	76
12.	स्वतंत्रता संग्राम और तमिल पत्रकारिता	डॉ वी. पद्मावती	86
13.	का भाषा का संस्कृत	रमेश चंद्र	94

यात्रा–वृत्तांत

14.	रहस्य और रोमांच से भरी 'चंडिका' गुफा	लोकेंद्र सिंह	100

कहानी

15.	शादी का जूता	कुमार विश्वबंधु	103
16.	प्रिया के दादू	मनीष कुमार सिंह	108

कविता

17.	शब्दों का सूरज	राधेश्याम बंधु	115
18.	हम इतने खुल कर रोए हैं	कृष्ण कुमार कनक	116
19.	कब ये मौसम आएगा	राकेश चक्र	117

अनूदित खंड (कहानी)

20.	प्रारब्ध (मराठी / हिंदी)	दीपक तांबोली अनुवाद–अशोक बाचुलकर	118
21.	वही लड़की (ओडिआ / हिंदी)	दाशरथि भूयाँ अनुवाद– भगवान त्रिपाठी	122

(कविता)

22.	पुल (कश्मीरी / हिंदी)	गौरीशंकर रैणा	131
23.	जाते–जाते (बांग्ला / हिंदी)	सुभाष मुखोपाध्याय अनुवाद : रोहित प्रसाद 'पथिक'	133

परख

24.	'स्त्री और समुद्र' पुस्तक की समीक्षा	पद्मा सिंह	134
25.	समाज की विसंगतियों, आस्थाओं, अनास्थाओं का वास्तविक विश्लेषण करता उपन्यास 'आड़ा वक़्त'	डॉ. ओम प्रकाश शर्मा	139

संपर्क सूत्र **143**

सदस्यता फॉर्म

निदेशक की कलम से

स्वाधीन देश और स्वतंत्र माहौल में जीने की इच्छा और अधिकार जिस प्रकार मनुष्य का है उसी प्रकार प्रत्येक जीव का भी है। जितनी भी सुख समृद्धि मिल जाए परंतु परतंत्रता की बेड़ियों से यदि मनुष्य जकड़ा हो तो वह स्थिति असह्य हो उठती है। भारतवर्ष में आक्रांताओं ने अपनी सत्ता लोलुपता के कारण जनमानस पर अमानवीय अत्याचार किए। परंतु भारतवासियों के अदम्य साहस, त्याग और बलिदान ने आक्रांताओं को हथियार डालने पर विवश कर दिया। सन् 1947 से वर्ष 2022 तक की दीर्घ अवधि में प्रगति के उल्लेखनीय मानक स्थापित हुए। सेना, शिक्षा, चिकित्सा, कला, खेलकूद एवं सूचना प्रौद्यौगिकी सभी क्षेत्रों में विकसित भारत की छवि मजबूत हुई। आजादी का अमृत महोत्सव वर्ष भारतवर्ष की 75वीं गौरवशाली वर्षों की उपलब्धियों की गाथा स्वयं कहता है। यही वह देश है जहाँ विश्व समुदाय मानवता के पुजारी राष्ट्र की ओर उम्मीद भरी दृष्टि से देखता है। वैश्विक महामारी कोरोना हो अथवा विश्व में हो रही राजनीतिक अस्थिरता सभी परिदृश्यों में भारत की भूमिका साहसपूर्ण, सकारात्मक और सराहनीय रही। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के पदचिह्नों पर चलते हुए राष्ट्र शांति के दूत और मानवता के हितैषी के रूप में अहर्निश कदम बढ़ा रहा है। आजादी के अमृत महोत्सव वर्ष में आप सभी सुधीजन के समक्ष यह अंक प्रस्तुत करते हुए मुझे असीम प्रसन्नता है।

जय हिंद!

नागेश्वर राव

(प्रोफेसर नागेश्वर राव)

आपने लिखा

'भाषा' पत्रिका युगमानस की आकांक्षाओं, आशाओं और उपलब्धियों का शब्द प्रमाण है। वर्ष 2022 के मई–जून अंक में हिंदी भाषा के शब्द और अर्थविज्ञान की भारतीय परंपरा की पहचान, हिंदी के अन्य भारतीय भाषाओं के अंतरसंबंधों और हिंदी के वैश्विक शिक्षण के सरोकारों के प्रति जागरूकता भी है। हिंदी के विमर्शों की प्रासंगिकता और बौद्ध आध्यात्मिकता के प्रवेशद्वार की गरिमा का यात्रावृत्त भाषा का ज्ञानवर्धक आयाम है। मानवीय भावनाओं के सरल–जटिल समीकरणों में से खुलने वाले स्त्री–पुरुष मन के सच का बेबाकी से खुलासा करने वाले कथा–प्रसंग आज के जीवन के द्वंद्व के विविध रूपों का सच उजागर करते हैं। 'बड़ी–बड़ी आँखों' वाली सुंदर युवती के प्रति फिसलना और सँभलना दोनों स्थितियाँ पुरुष मानस का सच है। 'सबरस' की रूपगर्विता को न तो विवाहेतर संबंध पर और न ही प्रेमी की आत्महत्या पर कोई अपराधबोध है। पत्नी के पत्रों में से उसके मौन प्रेम को जानकर 'अफसोस के लिफाफे' खोलता रह जाता है। 'दहशत' कहानी की तुनकमिजाज, बात–बात पर बारूद–गंध के बहाने तुनकमिजाज वाली तृप्ति कोरोना वायरस और लॉकडाउन के दौर में परिवार के प्रति सदय हो जाती है। पति को लगता है कि वह परिवार के प्रति चिंतित है, लेकिन सच तो यह था कि उसे अपने भाई के मित्र और पूर्व–प्रेमी के न रहने की दहशत समाई थी। तात्पर्य यह है कि 'भाषा' पत्रिका पूरी ईमानदारी से अपने सामाजिक सरोकारों का निर्वाह कर रही है।

डॉ. मालती
जनकपुरी, दिल्ली

संपादकीय

आजादी का अमृत महोत्सव वर्ष मनाया जाना भारतवर्ष की संप्रभुता को अक्षुण्ण रखने की दिशा में मील का पत्थर है। देश को आजादी मिले 75 वर्ष हो चले हैं। इस दौरान देश ने प्रगति के पथ पर लंबी दूरी तय की है। अंग्रेजों के जाने के बाद भारतवर्ष में चतुर्दिक नव निर्माण की ललक और नूतन भविष्य की तलाश रही। पराधीन भारत के संघर्ष के पश्चात् अब नवीन आजाद भारत की परिकल्पना की जाने लगी। स्वयं का संविधान, स्वयं का कानून और स्वंय का राज ये सभी घटक बृहत् विकसित भारत के मजबूत ढाँचे के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका में रहे। विकास की अनगिनत उपलब्धियों से भारतवर्ष की विश्वपटल पर पहचान स्थापित हुई। अंग्रेजों द्वारा भारत छोड़ कर जाने के बाद संपूर्ण देश में गरीबी, अशिक्षा, महामारी जैसी सुरसारूपी विशाल चुनौतियाँ व्याप्त थीं। भारतीय चिंतकों, मनीषियों के सुचिंतित विचारों से देश में नवीन ऊर्जा का संचार हुआ और देश ने चतुर्दिक कीर्ति स्थापित की। सामाजिक उत्थान का क्षेत्र हो अथवा चिकित्सा, न्याय और संचार माध्यमों का क्षेत्र हो सभी क्षेत्रों में अभूतपूर्व कीर्तिमान परिलक्षित हुए। विज्ञान के क्षेत्र में नित नवीन ऊँचाइयाँ प्राप्त होने लगीं। सामाजिक सशक्तिकरण के क्षेत्र में भी देश ने कई पायदान पार किए। इन 75 वर्षों में स्वाधीन भारत नए पथ पर विश्व बिरादरी में अपनी पहचान बनाने की ओर बढ़ने लगा। आज नवाचार के रूप में देश में युवाओं और उद्यमियों ने परंपरा और नवीनता के युगल को साकार किया। भारतवर्ष ने सदैव प्रकृति को पूजनीय मानकर उसका आशीष प्राप्त किया। इसीके परिणामस्वरूप संपूर्ण विश्व भारतवर्ष की विलक्षणता से आकर्षित होता हुआ यहाँ के शाश्वत ज्ञान की ओर अभिमुख हुआ। योग ने दुनिया को यह संदेश दिया कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का निवास होता है। आज संपूर्ण विश्व में योग के प्रति बढ़ते आकर्षण को सहज ही देखा जा सकता है। आँकड़े बताते हैं कि पूरे विश्व में सबसे युवा देश आज भारतवर्ष है जहाँ आबादी की मध्यम उम्र मात्र 28 वर्ष है। यह महज एक आँकड़ा नहीं अपितु इसके गर्भ में अनंत संभावनाओं और उज्ज्वल भविष्य को देखा जा सकता है। भारतवर्ष 'वसुधैव कुटुंबकम' के साथ ही चेरैवेति! चेरैवेति! को भी स्व और संपूर्णता के विकास के मूलमंत्र के रूप में आत्मसात करता है। अपनी उन्नति के साथ सबके मंगल की भावना ही भारतवर्ष का सदियों से अपनी पहचान स्थापित करने का मजबूत आधार रहा है। आजादी के अमृत महोत्सव वर्ष के आगामी वर्षों में देश और मजबूत और समुन्नत होगा। ज्ञान की विभिन्न शाखाएँ राष्ट्रनिर्माण में सदा से अपना योगदान देती आई हैं। किसी भी देश की भाषा उसकी संस्कृति का जीवनाधार होती है। राष्ट्रव्यापी विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं ने सदैव इस महत्वपूर्ण दायित्व का निर्वहन किया है। विभिन्न आलेखों से सुसज्जित यह अंक विज्ञ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। आपके सुझावों का स्वागत रहेगा।

किरण

(किरण झा)

भारत का संविधान

अनुच्छेद 351. हिंदी भाषा के विकास के लिए निदेश– संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी में और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ उसके शब्द–भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे।

आलेख

भारतीय भाषाओं में अंतःसंबंधों की आधारभूमियाँ

त्रिभुवननाथ शुक्ल

भारतीय भाषाओं की पारस्परिकता का बीज भाव है– उसकी 'सांस्कृतिक एकता'। सांस्कृतिक एकता ही हमें विचार अभिव्यक्ति के स्तर पर एकत्र करती है। यह एकत्रता ही संवाद का अवसर देती है। इसी से हम भाषीय एकात्म की ओर बढ़ते हुए दिखाई देते हैं।

भाषाओं की पारस्परिक अंतःसंबंद्धता का आधार ध्वनि रूप, वाक्य एवं अर्थ की भाषीय संरचना है। इस शोध आलेख में इन्हीं पक्षों भा. भा. (= भारतीय भाषाओं) के अंतःसंबंधों का अन्वाख्यान किया जा रहा है।

ध्वनि संरचना के आधार पर एकात्म

हिंदी की ध्वनि संरचना में 11 स्वर ध्वनियाँ हैं–

अ, इ, उ, ऋ (ह्रस्व स्वर) = 4
आ, ई, ऊ (दीर्घ स्वर) = 3
ए, ऐ, ओ, औ (संयुक्त स्वर) = 4
इन सभी का संपूर्ण योग 11 है।
हिंदी में 'क' से 'ह' तक सभी व्यंजन ध्वनियाँ हैं–
क वर्गः क, ख, ग, घ, ङ
च वर्गः च, छ, ज, झ, ञ
ट वर्गः ट, ठ, ड, ढ, ण
त वर्गः त, थ, द, ध, न
प वर्गः प, फ, ब, भ, म
अंतस्थः य, र, ल, व
उष्मः श, ष, स, ह
दो व्यंजनों के योग से बने नए व्यंजन, अर्थात् संयुक्त व्यंजन क्ष, त्र, ज्ञ (क् + ष् + अ = क्ष; त् + र + अ = त्र; ज + ञ् + अ = ज्ञ)
द्विगुण व्यंजन = ड़, ढ़
अनुस्वार (ं) और विसर्ग (ः)/कुलयोग = 40

हिंदी की आगत ध्वनियाँ

अंग्रेजीः ए (पेन, रेकॉर्ड), ऑ (डॉक्टर, बॉल)
फारसी – उर्दूः
क़ः ताक़
ख़ः ख़ाना (अलमारी का ख़ाना)
ग़ः बाग़, ज़ (सज़ा–(दंड))
फ़: (फ़न (हुनर))
हिंदी की नवीन विकसित ध्वनियाँ हैं–
ड़ (ड > ड़) ढ (ढ>ढ़) न्ह (न > न्ह) म्ह (म > म्ह) ल्ह (ल > ल्ह)

हिंदी की ध्वनि संरचना की तरह अन्य भारतीय भाषाओं की ध्वनि संरचनात्मक व्यवस्था भी इसी प्रकार की है। नातिविस्तार के साथ यहाँ सभी का विवेचन किया जा रहा है।

असमिया में आठ स्वर और चालीस व्यंजनों में से 'छ' का उच्चारण 'च' के बराबर होता है। मूर्धन्य उच्चारण न होने के कारण असमिया में ट वर्ग के पाँच वर्णों का उच्चारण बिल्कुल ही नहीं है। इसमें 'य' 'ज' जैसा उच्चरित होता है। श, ष, स तीनों का उच्चारण एक जैसा और स्थान के

अनुसार कोमल तालव्य एवं प्रयत्न के अनुसार संघर्षी होता है। बाकी 'इ' का उच्चारण असमिया में 'र' जैसा तथा 'ढ़' का रेफ युक्त 'ह' जैसा हाता है। ओड़िया की स्वर एवं व्यंजन ध्वनियाँ अन्य भारतीय भाषाओं से मिलती जुलती हैं। यदि ओड़िया–साहित्य को अन्य भारतीय भाषाओं में लिप्यंतरण कर दिया जाए तो आसानी से उस भाषा के बोलने वाले ओड़िया भाषा का उच्चारण कर सकते हैं। फिर भी, उच्चारण की दृष्टि से ओड़िया ध्वनि की कुछ विशेषताएँ हैं। ओड़िया स्वर ध्वनियों की संख्या 13 है। इनमें से ऋ और ॠ का व्यवहार समाप्त हो गया है। ऋ ध्वनि स्वर के रूप में उच्चरित न होकर व्यंजन की तरह उच्चरित होती है। हिंदी में इसका उच्चारण प्रायः 'रि' की तरह होता है और ओड़िया में इसका उच्चारण प्रायः 'रु' की तरह होता है। अन्य दस स्वर ध्वनियों में से आठ सामान्य स्वर और दो सयुंक्त स्वर हैं। संयुक्त स्वरों में 'ऐ' का उच्चारण 'अ + इ' की तरह एवं औ का उच्चारण 'अ + उ' की तरह होता है। कहीं–कहीं कविता में भी इन संयुक्त स्वरों का प्रयोग दो–दो स्वरों के रूप में होता है। जैसे कैलास > कइलास, मौन >मउन आदि। ह्स्व और दीर्घ भेद से इ–ई और उ–ऊ में खास अंतर नहीं है। सामान्यतया ओड़िया में दीर्ध स्वरों का उच्चारण इतना स्पष्ट नहीं है। उदाहरण के लिए दिन–दीन, कुल–कूल में उच्चारणगत अंतर अत्यंत स्पष्ट है। केवल अर्थ की दृष्टि में अंतर स्पष्ट होता है। कहीं–कहीं ह्स्व का भी दीर्घ के रूप में और 'अ' का उच्चारण दीर्घ 'अ' के रूप में भी होता है। 'ए' और 'ओ' उच्चारण भी प्रायः ह्स्व ही होता है।

ओड़िया में व्यंजन ध्वनियों के नाम भी अन्य भारतीय भाषाओं के समान है। हिंदी में व्यंजनों का उच्चारण प्रायः हलंत के साथ होता है और ओड़िया में उसका उच्चारण अकरांत होता है जैसे– राम् > रामड, नागपुर् > नागडपुरड। वर्गव्यंजन 'ब' और अंतरस्य व्यंजन 'व' के लेखन और उच्चारण में कोई अंतर नहीं है। दोनों का उच्चारण 'ब' जैसा होता है, जैसे– बादल, बक्ता, किंतु 'व' का उच्चारण केवल संयुक्त व्यंजनों में होता है, जैसे– 'क्व'। ओडिय़ा में दो स्वतंत्र ध्वनियाँ हैं– य़ और ळ। 'य' ध्वनि का उच्चारण 'ज' जैसा होता है। इसलिए 'ज' को वर्ग्य 'ज' और 'य़' को अंतस्थ 'य़' कहा जाता है। दोनों के उच्चारण में कोई अंतर नहीं है। जैसे जगत, युग। शब्द के आरंभ में आने वाली 'य' ध्वनि ओड़िया में 'य़' हो जाती है और 'ज' की तरह उच्चरीत होती है। जैसे– यम–य़म (जम)। कही–कहीं शब्द के मध्य और अंत में आने वाला 'य' भी 'य़' हो जाता हैं। हिंदी में 'ल' ध्वनि के लिए ओड़िया में 'ळ' और 'ल' दो ध्वनियाँ हैं, जैसे– फल–फळ, फूल–फूळ किंतु 'ळ' ध्वनि शब्द का प्रयोग शब्द के आरंभ में नहीं होता। ओड़िआ 'श', 'ष' और 'स' के नाम क्रमशः तालव्य श, मूर्धन्य ष और दंत्य स हैं। इनके उच्चारण में खास अंतर नहीं हैं, तीनों का उच्चारण प्रायः 'स' जैसा होता है।

ओड़िया की संयुक्त व्यंजन ध्वनियों का उच्चारण प्रायः अन्य भारतीय संयुक्त व्यंजनों की तरह होता है। इन व्यंजनों में स्पष्टता अधिक है। 'ण' में रेफ का प्रयोग करने से उसका उच्चारण 'न' जैसा हो जाता है, जैसे– 'कर्ण' के लिए 'कर्न'। साधारण बोलचाल में कहीं–कहीं 'ठण' का

उच्चारण करते समय बीच में 'ट' ध्वनि आ जाती है, जैसे कृष्ण के लिए कृष्टँ, विष्णु के लिए बिष्टुँ, बैष्णव के लिए बैष्टम्ब।

निष्कर्षतः सभी भारतीय भाषाओं से ओड़िया भाषा के साथ और वैषम्य देखे जा सकते हैं। पड़ोसी भाषा होने के कारण तेलुगु उच्चारण शैली का प्रभाव ओड़िया पर पड़ा है। साथ ही अनेक शब्दों के यथावत् या तद्भव रूपों का प्रयोग भी मिलता है। पश्चिम की मराठी भाषा के अनेक शब्द और ध्वनियाँ ओड़िया से मिलती–जुलती हैं। 'क' ध्वनि का प्रयोग दोनों भाषाओं में है। ओड़िया भाषा की अपनी स्वतंत्र लिपि होने के कारण ही यह भाषा अन्य भाषाओं से भिन्न लगती है, अन्यथा दूसरी भाषाओं से इसकी निकटता को नकारा नहीं जा सकता। वैसे, सभी भारतीय भाषाओं में यह समानता उपलब्ध है।

कन्नड़ की वर्णमाला की तुलना हिंदी की वर्णमाला से करने पर कई समानताएँ दिखती हैं। हिंदी के लगभग सभी वर्ण कन्नड़ में है। कन्नड़ में कुछ नए वर्ण पाए जाते हैं जो हिंदी में नहीं है और हिंदी में प्रयुक्त कुछ विदेशी ध्वनियाँ कन्नड़ में नहीं पाई जातीं।

कन्नड़ में 'ह्र' ह्रस्व स्वर के अतिरिक्त दीर्घ भी व्यवहृत है किंतु हिंदी में केवल ह्रस्व स्वर 'ऋ' ही है। कन्नड़ में 'ए' और 'औ' ह्रस्व एवं दीर्घ दोनों ध्वनियाँ हैं जबकि हिंदी मे केवल दीर्घ ध्वनियाँ हैं।

'ऌ' तथा 'ॡ' दोनों ध्वनियाँ प्राचीन कन्नड़ में व्यवहृत थीं किंतु आधुनिक कन्नड़ में उनका लोप हो गया है। हिंदी में भी ये ध्वनियाँ नहीं है। हिंदी में सभी व्यंजन कन्नड़ में हैं, साथ ही एक अतिरिक्त व्यंजन 'ळ' पाया जाता है।

'ॠ', 'ॠ' श, ष, विसर्ग आदि का प्रयोग कन्नड़ में नही होता। कन्नड़ में व्यवहृत संस्कृत शब्दों में ही इन ध्वनियों का प्रयोग होता है।

हिंदी में पूर्णानुस्वार के साथ अर्धानुस्वार भी है जो व्यंजनों के ऊपर चंद्रबिंदु लगाकर तथा अन्यत्र केवल बिंदु लगाकर लिखा जाता है। जैसे– कहाँ, यहाँ, वहाँ, मैं नहीं आदि। कन्नड़ में चंद्रबिंदु का अस्तित्व नहीं है। 'ड़' औ 'ढ़', ये जो नए व्यंजन हिंदी की वर्णमाला में हैं इनका अस्तित्व न तो कन्नड़ में है और न संस्कृत में। 'ड' और 'ढ' के नीचे बिंदु लगाकर इनकी रचना हुई है। जैसे– पेड़, सड़क, गाड़ी, पढ़ना, चढ़ना, गढ़ना आदि।

प्राचीन कन्नड़ में अनुनासिक वर्णों के साथ अन्य वर्णों का संयोग होने पर अनुनासिक के नीचे दूसरा वर्ण लिखा जाता था किंतु आधुनिक कन्नड़ में मानक हिंदी की तरह अनुनासिक के साथ अनुस्वार का प्रयोग होता है। यथा–

प्राचीन कन्नड़	**आधुनिक कन्नड़**
अङ्क	अंक
कण्ठ	कंठ
दन्त	दंत

जहाँ तक उच्चारण का संबंध है, कन्नड़ और हिंदी में सूक्ष्म अंतर दिखाई देता है हिंदी में पदांत 'अ' का पूर्ण उच्चारण होता है। यही कारण है कि कन्नड़ शब्दों को हिंदी में लिखेत समय पदांत 'अ' का 'आ' किया जाता है। उदाहरण के लिए–

कन्नड़ में	**हिंदी में**
वसरण्ण	वसवण्णा
कमलम्म	कमलम्मा

पुस्तक शब्द का उच्चारण हिंदी में वास्तव में 'पुस्तक' के रूप में किया जाता है

जबकि कन्नड़ में पदांत का उच्चारण पूर्ण रूप से होता है।

कन्नड़ स्वरों के उच्चारण में हिंदी स्वरों के उच्चारण की अपेक्षा कम समय लगता है। कन्नड़ में कई 'इ' कारांत शब्द हिंदी में 'ई' कारांत होते हैं। कन्नड़ में विद्यार्थि है तो हिंदी में विद्यार्थी, कन्नड़ में सरस्वति है तो हिंदी में 'सरस्वती', ऋट का उच्चारण हिंदी में 'रि' होता है पर कन्नड़ में ध्वनि के अनुसार होता है किंतु हिंदी में इसका उच्चारण 'रितु' होता है।

हिंदी में 'ऐ' का उच्चारण 'अय' तथा 'औ' का उच्चारण 'अव' होता है लेकिन कन्नड़ में इन वर्णों का उच्चारण मूल के अनुरूप होता है।

हिंदी में 'व' का उच्चारण कभी–कभी 'ब' की तरह होता है किंतु कन्नड़ में इस तरह का उच्चारण ग्राह्य नहीं है। यथा हिंदी में वसंत > बसंत, वन >बन आदि। उसी तरह हिंदी में 'य' का उच्चारण कभी–कभी 'ज' के समान होता है। उदाहरण के लिए यमुना >जमुना, यजमान >जजमान।

हिंदी में आगत अरबी तथा फारसी शब्दों के शुद्ध वर्णों के नीचे नुक्ता लगाकार मूल ध्वनियों के अनुरूप उच्चारण बनाए रखने की व्यवस्था की गई है। जैसे कद, क़रीब, ख़त, ख़जाना, ज़रूर, ज़िंदगी, फ़कीर, फ़र्ज आदि। कन्नड़ में इस तरह नुक्ता लगाने की पंरपरा नहीं है।

हिंदी शब्दों के उच्चारण में कुछ ही वर्णों पर विशेष स्वराघात होता है। जैसे– कमल, महल, आदि। कन्नड़ में शब्दो के हर वर्ण पर समान रूप से जोर पड़ता है।

कश्मीरी में स्वनिमों (फ़ोनीम) की कुल संख्या 46 है। च़, छ़, ज़ दंत तालव्य विशिष्ट ध्वनियाँ हैं। कश्मीरी में 'क्ष' के स्थान पर 'छ' तथा 'तूनं' व 'स्सि' के स्थान पर 'इत' व 'इ' का व्यवहार मिलता है। जैसे– शरत >हरुद, श्वशुर >हिहुर, वक्ष >वछ, द्राक्ष >दछ, पक्ष >पछ, गत्वा >गछित, चलित्वा >चलित, पठिठयति >परि, गमिण्यति >गछि आदि। इससे स्पष्ट है कि गुणाढ्य ने वृहत्कथा पैशाची प्राकृत में नहीं लिखी होगी अन्यथा इसका कश्मीरी से कुछ ध्वनिसाम्य अवश्य होता।

कोंकणी में देवनागरी वर्णमाला का प्रयोग चलता रहा है। देवनागरी में अड़तालीस लिपि संकेत हैं जो स्वर एवं व्यंजन ध्वनियों के सात समूह हैं। कोंकणी में पैंतालीस लिपि–संकेत हैं। इसमें 12 स्वर हैं। संस्कृत कर 'ऋट', 'लृ' स्वर कोंकणी में नहीं है। अतः संस्कृत शब्द 'दुःख' का उच्चारण अपभ्रंश की तरह 'दुख' होता है।

कोंकणी में तैंतीस व्यंजन हैं। 'ष' व्यंजन कोंकणी में नहीं है। तत्सम शब्दों के लिखित रूपों में इस व्यंजन का प्रयोग होता है।

'अ' का उदात्त, अनुदात्त और स्वरित ध्वनियाँ कोंकणी में प्राप्त है। ऍ और ऑ विशेष स्वर ध्वनियाँ हैं। उदाहरण– बॉट (जहाज), बॉट– उँगली।

वं– यह कोंकणी की विशेष व्यंजन ध्वनि है।

'ञ'– यह नासिक्य तालव्य व्यंजन ध्वनि कोंकणी में काफी मिलती है।

शब्द के आदि में संयुक्त स्वर होने पर यह 'ए', 'ओ' ध्वनियाँ क्रमशः ऍ, ॲ या ऑ ध्वनि के रूप में परिवर्तित होती हैं। जैसे– ॲक (ऍक), भुरग्ये (एक बच्चा), ऍक दादलो (एक नदी)।

कोंकणी में आनुनासिक रूप पाया जाता है। स्वरों में अनुनासिकता प्राप्त होने पर

कोंकणी शब्दों में अर्थभेद तथा वचन भेद होता है। कोंकणी में आनुनासिक स्वर केवल बिंदी देकर ही लिखे जाते हैं। कोंकणी में प्राप्त 'ळ्' ध्वनि हिंदी में उपलब्ध नहीं है। इसके लिए हिंदी में सर्वत्र 'ल' का प्रयोग होता है।

गुजराती भाषा में भी हिंदी की भाँति संस्कृत–प्राकृत के संयुक्त तथा द्वित्व व्यंजन का ह्रस्व हो जाता है तथा उसके पूर्व का स्वर दीर्घ हो जाता है। यथा– पृष्ठ > पीठ, चक्र >चाक, कज्ज >काज आदि।

ध्वनि ग्रामिक साम्य के बावजूद गुजराती में निजी संध्वनि 'ळ' है, जो हिंदी के ल और ड़ के बीच उच्चरित होती है।

गुजराती हिंदी दोनों भाषाओं में जब 'य' और 'व' 'इ' और 'उ' के बाद उच्चरित होते हैं तब ये लघु प्रयत्न होते हैं। जैसे– दरिया, कड़ियों, रूपियों और इसी प्रकार के चाहिए, लिए, किए, किया, दिया आदि शब्द समूह गुजराती हिंदी के 'जाओ' आदि रूपों में भी 'जाव' आदि ही उच्चरित हो जाता है।

'श–ष–स' हमारी भाषाओं में प्राकृत काल से ही 'स' के रूप में हैं। गुजराती के चरोत्तर एंव उत्तर गुजरात में तालव्य स्वरों के साथ तालव्य उच्चारण होता है, जैसा कि 'शी' डोशी (बृद्धा) ('ष' संपूर्णतया खो दिया गया है, तो भी सौराष्ट्र की 'मेर' प्रजा में 'चन्छ' के उच्चारण में स्पष्ट मूर्धन्य 'ष' सुना जाता है, गुजराती में 'र' का उच्चारण संस्कृत और हिंदी के अनुसार है।

गुजराती में सुलभता से पाया जाने वाला जिह्वामूलीय 'ळ' न तो पूर्वी हिदी में मिलता है और न ही पश्चिमी हिंदी में। गुजरात में 'क्ष' का 'क्ष' शुद्ध उच्चारण शिष्ट लोग करते हैं। उत्तर भारत में अधिकांश लोग 'क्छ' जैसा उच्चारण करते है। गुजराती में जहाँ 'ण' है वहाँ नियमानुसार हिंदी में 'न' हो जाता है। यथा– पाणी–पानी, राणी–रानी आदि। डोगरी में दस स्वर और अट्ठाइस व्यंजन ध्वनियाँ है।

नागरी लिपि के सघोष, महाप्राण, स्पर्श व्यंजन ध, झ, द्, घ और भ् डोगरी भाषा में अनुपलब्ध होने के कारण स्वनिमिक नहीं माने जाते, कारण कि यहाँ पर इनका उच्चारण अपने घोषत्व एवं महाप्राणत्व को ठीक उसी प्रकार स्थापित न रखते हुए विभिन्न स्थितियों में विभिन्न उच्चारण ग्रहण कर लेता है।

आदि स्थिति ये व्यंजन अपने–अपने वर्ग के अल्पप्राण अघोष, स्पर्श व्यंजनों के साथ निम्नारोही सुर का सहयोग ग्रहण करके उच्चरित होते हैं।

मध्यस्थिति में ये व्यंजन घोषत्व स्थापित रखते हैं, किंतु महाप्राणत्व का लोप करते हुए अपने से पूर्व स्वर को उच्चावरोही सुर अथवा अपने से पश्चात् स्वर को निम्नारोही सुर प्रदान करके विशेष प्रकार के उच्चारण रूप ग्रहण कर लेते हैं। जैसे 'पढ़ना' 'ढ़' प्राणत्व का लोप करके 'पड़ना' उच्चारण ग्रहण करता है। इसके विपरीत 'पढ़ाना' में 'ढ़' व्यंजन सघोष, अल्पप्राण 'ड्' रूप ग्रहण करके अपने पश्चात् के 'आ' को निम्नारोही सुर प्रदान करके 'पड़ोना' रूप में उच्चरित होता है।

अंतिम स्थिति में भी वे व्यंजन घोषत्व स्थापित रखते हए प्राणत्व का लोप कर देते हैं अपने पूर्व स्वरों को उच्चावरोही ही सुर प्रदान करते हैं। जैसे 'बर्ध' (विदा हो) का डोगरी उच्चारण 'र्ब' किया जाता है। 'ष' व्यंजन डोगरी में 'ख' और 'श्' रूपों में उच्चरित होता है और क्ष, त्र, ज्ञ संयुक्त व्यंजनों का उच्चारण भी क्रमशः ख् अथवा

क्ख, तर अथवा त्तर और ग्य रूपों में होता है।

तमिल भाषा के स्वरों को हिंदी में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है– अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए (ह्रस्व) ए, ऐ ऑ (ह्रस्व) ओ, औ। इसी प्रकार तमिल की स्वरमिश्रित व्यंजन ध्वनियों को देवनागरी में इस प्रकार देखा जा सकता है–

क च ट त प
ङ ञ ण न म
य र ल व ळ ऱ
ज स श ह ऩ

तमिल की बारहखड़ी को देवनागरी में इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं–

क का कि की कु कू कॅ (ह्रस्व) के कै कॉ (ह्रस्व) को कौ

च चा चि ची चु चू चॅ (ह्रस्व) चे चै चॉ (ह्रस्व) चो चौ

ट टा टि टी टु टू टॅ (ह्रस्व) टे टै टॉ (ह्रस्व) टो टौ

त ता ति ती तु तू तॅ (ह्रस्व) ते तै तॉ (ह्रस्व) तो तौ

प पा पि पी पु पू पॅ (ह्रस्व) पे पै पौ (ह्रस्वे) पो पौ

प्राण ध्वनि के ध्वनि के लिए तमिल में □ चिह्न का प्रयोग किया जाता है। यह ह् की ध्वनि के समान उच्चरित होता है।

इसे तमिल में आयुद ऍकत्रु कहते हैं।

अनुस्वार और हलंत अक्षर के लिए तमिल में वर्ण के ऊपर एक बिंदी लगाई जाती है।

अभी पचास साल पहले द्रविड़ आंदोलन के नेता पेरियार रामस्वामी ने लिपि में थोड़ा सा परिवर्तन किया। व्यंजन के साथ स्वर 'ऐ' के मिलने पर उसे लिखने के ढंग में थोड़ा सा परिवर्तन किया। मतलब यह कि सभी व्यंजनों में बारहखड़ी के स्वरूप में समानता लाने का प्रयत्न किया है।

ऋ का तमिल में ध्वनि–चिह्न नहीं है।

अं अः इन दोनों के लिए तमिल में ध्वनि–चिह्न नहीं है।

अघोष महाप्राण, सघोष महाप्राण के लिए तमिल में लिपि न होने के कारण ध्वनि चिह्न नहीं है। तमिल में उच्चारण में संघोष ध्वनियाँ हैं। लेकिन उसके लिए अलग ध्वनि चिह्न नहीं है।

तमिल में संघोष उच्चारण हैं लेकिन इसके लिए ध्वनि चिह्न नहीं है।

अघोष सधोष का तमिल में भेदभाव नहीं है। वर्ण के बीच में आने वाली ध्वनियों का उच्चारण सधोष हो जाता है।

शब्दारंभ में सघोष ध्वनियाँ नहीं आती। सधोष ध्वनियों के साथ उच्चारण होने पर तुरंत हम कह सकते हैं कि यह दूसरी भाषाओं से लिया गया शब्द है। जैसे तमिल में (जलम, बयम, डमारम) इन ध्वनियों का उच्चारण सघोष होता है। लेकिन ध्वनि–चिह्न नहीं है। यह सघोष होने के कारण विदेशी शब्द माना जाता है।

ग्रंथाक्षर को छोड़कर तमिल में स्वर बारह है और व्यंजन सत्रह हैं। ग्रंथाक्षर पाँच हैं।

दैत्य अनुनतीरक के लिए तमिल में दो ध्वनि–चिह्न हैं– ण, न। इन दोनो की ध्वनियाँ समान हैं। इनको अंग्रेरेज़ी में एलोफोन कहते हैं। इन दोनों का प्रयोग इस प्रकार है। शब्द के प्रारंभ में (न) का प्रयोग होता है। शब्द के बीच में या अंत में इसका प्रयोग नहीं होता।

न्न इसका उच्चारण 'न' सदृश ही है। लेकिन इस ध्वनि का प्रयोग शब्द के मध्य में करते है। जैसे– जन्नल (खिड़की), कभम (गाल), अन्नम(अन्न)।

तमिल की एक विशेष ध्वनि है जो उर्दू की तरह उच्चरित होती है। देवनागरी में वह इस प्रकार लिखी जाती हे– ऱ या ळ। जैसे पऱम (फल), किऱगु (मूली), किऱवन (बूढ़ा) तमिऱ (तमिल), अऱगु (सुंदर), मॉलि़ (भाषा)

तमिल की एक अन्य विशेष ध्वनि है जिसका देवनागरी रूप है ळ। यथा– पळ्ळम (गड्ढा), मुळ् (काँटा), उळ्ळम (दिल)।

ह– तमिल में प्राणध्वनि 'ह' का उच्चारण नहीं होता है। अन्य भाषाओं से गृहीत शब्दों में प्राण ध्वनि आने पर ग्रंथाक्षर का उपयोग किया जाता है। संयुक्ताक्षर– तमिल में संयुक्ताक्षर अनुस्वार लगाकर लिखा जाता है। व्यंजन को अलग–अलग सूचित करने के लिए केवल अनुसार लगाया जाता है। जैसे संध्या या सन्ध्या लिखना हो तो तमिल में सनदिया ही लिखा जाता है। बीच में या अंत में आने वाले व्यंजनों के ऊपर अनुस्वार बिंदी लगाकर संयुक्ताक्षर बनाया जाता है। प्रायः तमिल में संयुक्ताक्षर नहीं है। तमिलेतर भाषाओं से प्राप्त शब्दों को उपर्युक्त ढंग से लिखते हैं। तेलुगु मं 15 स्वर और 38 व्यंजन हैं। तेलुगु और संस्कृत भाषा की वर्णमाला से कुछ ध्वनियों में अंतर है। जैसे ऐ (ह्रस्व एकार), ओ (ह्रस्व ओकार), च़(दंत्य च़) ज़(दंत्य ज़), क(अलघु 'ल' कार), ऱ (अलघु रेफ़)।

तेलुगु में अधिकांश भारतीय लिपियों के समान स्वर और व्यंजनों में विभक्त है।

लेखन–विधि बाएँ से दाएँ की तरफ है।

सभी स्वरों की मात्राएँ अलग हैं।

व्यंजन रूप में ह्रस्व 'अ' कार मिला रहता है जिस प्रकार नागरी लिपि में देखा जाता है। व्यंजन की आकृति में कुछ परिवर्तन से स्वर के सूचित अंश जुड़ते हैं।

व्यंजन के द्वित्तीकरण या संयुक्तीकरण में निम्नलिखित आठ अक्षरों में पूर्ण परिवर्तन है–

क, त, न, म, य, र, ल, व।

अन्यों में परिवर्तन नहीं के बारबर है। व्यंजन के नीचे या बगल में कुछ छोटे आकार में व्यंजन को रखकर संपन्न किया जाता है। यथा– ज्ज, ग्ग, व्व, ण्ण, द्द, श्श आदि में।

संयुक्त व्यंजन या द्वित्व व्यंजन लिखने में कुछ भिन्नता रहती है यथा–

	नागरी	**तेलुगु**
(क)	सत्य = स + त् + य	स+त+य्
(ख)	ज्योत्सना = ज् + य + ओ + त् + स् + न् + आ	ज + य् + ओ + त + स् + न् + आ

पूर्ण व्यंजन और अर्द्धव्यंजन में मात्रा–लेखेन की दृष्टि से अंतर अवश्य है। तेलुगु–ध्वनियों और नागरी ध्वनियों के उच्चारण में अंतर नहीं है। लेकिन ध्यान देने की बात है कि शब्द के प्रत्येक ध्वनि का उच्चारण स्पष्टतः किया जाता है। जैसे–

हिंदी–उच्चारण– सरकार– सरकार

तेलुगु–उच्चारण– सरकार– सर्कारु

नेपाली की लिपि देवनागरी हैं नेपाली में कुछ वर्णों की ध्वनियों में यत्किंचत अलग है, फिर भी अधिकांशतः हिंदी के समान ही स्वर एवं व्यंजन वर्ण पाए जाते हैं।

स्वर वर्ण अ, आ, हिंदी की ध्वनि से साम्य रखते हैं।

इ, ई, उ, ऊ– ये भी हिंदी के समान ध्वनियाँ हैं।

ऋ, ॠ– के उच्चारण विकार युक्त हो गए है लोक में इन्हें रि, री बोला जाता है।

ए, ऐ– ये संयुक्त स्वर हैं। संस्कृत के अनुसार अ + इ = ए बनता है, परंतु नेपाली में इसकी श्रुति शुद्ध स्वर की ही है। हिंदी में यह भी ध्वनि साम्य है।

ओ, औ – ये संस्कृत स्वर है। परंतु नेपाली में 'ओ' शुद्ध स्वर है। 'औ', जो संस्कृत में आ+उ मिलकर बनता है, नेपाली में आ+उ होता है और हिंदी में अ+व। अउरत (नेपाली), अवरत (हिंदी), कउरब (नेपाली) 'सउ' (नेपाली) 'सब' (हिंदी)।

इस प्रकार नेपाली में बारह स्वर वर्ण हैं– सात शुद्धस्वर (अ, आ, इ, उ, ऋ, ए, ओ), तीन दीर्घीकृत स्वर (ई, ऊ, ॠ) और दो संयुक्त स्वर (ऐ, औ)।

नेपाली खंडेतर ध्वनि (अयोगवाह) में चंद्र बिंदु(ँ), अनुस्वार (ं) और विसर्ग (ः) आते हैं। मराठी से हिदी और हिंदी से नेपाली में आगत चंद्र (ॅ) भी स्थान पा गया है।

क्ष– यह क्+ष का संयुक्त वर्ण है। नेपाली में छ, क्छ होते हैं, क्षमा > क्ष्मा, अक्षता > अछेता, रक्षा >रक्छा, राक्षस > राच्छेस इत्यादि।

त्र– त और र का संयुक्त रूप एक सरल रूप है। वर्णमाला में इसकी कोई आवश्यकता नहीं थी पर परंपरा से चली आ रही है।

ज्ञ – संस्कृत के अनुसार यह ज और ञ की संयुक्त ध्वनि है पर हिंदी के अनुरूप नेपाली में भी ग्यँ उच्चरित होता है।

निष्कर्षतः नेपाली मे 12 स्वर, 38 व्यंजन, तथा कुल वर्ण 50 हैं।

पंजाबी

गुरुमुखी लिपि में उच्चारण के आधार पर वर्णों को चार वर्गों में रखा जा सकता है– स्वर (अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ)। व्यंजन – गुरुमुखी में 'म' से लेकर 'ड़' तक 32 व्यंजन हैं। अनुनासिक ङ, ञ, ण, न, म। द्वित्व वर्ण।

गुरुमुखी में मात्राओं को 'लगां' कहा जाता है और इनकी संख्या दस है–

1. मुक्ता (लगां मुक्त अक्षर)
2. कनां (आ की मात्रा)
3. सिहारी (ह्रस्व इ की मात्रा)
4. बिहारी (दीर्घ ई की मात्रा)
5. औकड़ (ह्रस्व उ की मात्रा)
6. दुलैंकड़ (दीर्घ ऊ की मात्रा)
7. लाँ (ए की मात्रा)
8. दुलावां (ऐ की मात्रा)
9. होड़ा (ओ की मात्रा)
10. कनौड़ा (औ की मात्रा)।

बिंदी (ं)– किसी मात्रा की ध्वनि को अनुनासिक बनाने के लिए इनका प्रयोग होता है। इस मात्राओं में से चार (मुक्ता, सिहारी, ओंकड़ तथा दुलैंकड) के साथ टिप्पी (ं) तथा (कनां, बिहारी, लां, दुलावां, होड़ा तथा कनौड़ा) के साथ बिंदी लगती है।

इसके कुछ ध्वनिगत पक्ष है–

1. मूल संयुक्त स्वर ऐ और औ का पंजाबी में उच्चारण बदल जाता है। जैसे– कौरव कऊरव। अर्थात् कौ का 'कउ' हो गया।

2. पंजाबी में तीन अक्षरों वाले शब्दों के पूर्व में आने वाले स्वर का लोप हो जाता है। जैसे– अखंड > खंड, अनंद >नंद, इकल्ला >कल्ला, अनार >नार, इतराज >तराज।

3. शब्दों के अंत में आने वाले (उ) (इ) का कम उच्चारण किया जाता है। जैसे रवि >रव, शशि >सस।

4. पंजाबी में मूर्धन्य वर्णों का प्राधन्य है जैसे– ट, ठ, ड, ढ।

5. पंजाबी में 'स' के स्थान पर 'ह' का प्रयोग होता हैं जैसे विश्वास >विसाह।

बांग्ला भाषा

बांग्ला में लिखित रूप के लिए 11 स्वर ध्वनियाँ प्रचलित है। परंतु वाचिक रूप में 10 ध्वनियाँ हैं जिनमें 'ऋ' का उच्चारण 'रि' रूप में होता है– ऋषि का 'रिशि' रूप में या 'मृत' का 'म्रित' रूप में उच्चारण होता है।

'ओ' का 'अ' रूप में उच्चारण होता है, जैसे– लोक >लक, मोटा >मटा, घोड़ा >घड़ा।

अनुनासिक ध्वनियों का बाहुल्य दिखता है– चाकचाँ, खोका, आटा >आँटा।

अल्प प्राण ध्वनियाँ महाप्राण में परिवर्तित होती हैं– पताका >फताका, जाओ >झाउ'

बोरो

बोरो भाषा में प्रधानतः 6 (छह) विशिष्ट स्वर ध्वनि का प्रयोग होता है। इनमें से पाँच इस प्रकार हैं– इ, उ, ए, अ, आ।

बोरो भाषा में 16 विशिष्ट व्यंजन ध्वनि का प्रयोग दिखाई देता है।

बोरो भाषा में अघोष ध्वनि का प्रयोग कभी भी अपनी भाषा के मौलिक शब्दों में शब्द के अंतिम स्थान में नहीं पाया जाता, केवल अग्र और केंद्रीय स्थान में ही पाया जाता है। केंद्रीय स्थान में पाए जाने में भी एक शर्त यह है कि अघोष ध्वनियाँ शब्द के केंद्रीय स्थान में केवल अक्षर के प्रारंभ में ही पाई जाती है। जैसे– खां–खाक् (केकड़ा), थां–फा (साथ जाना) इत्यादि।

मणिपुरी

मणिपुरी का प्रचलित नाम– मैतैलोन' है। इसमें प्राचीनकाल में 12 स्वर ध्वनियाँ थीं जिनमें से छह मूल ध्वनियाँ हैं। वे हैं– अ, आ, इ, उ, ए और ओ। छह संयुक्त ध्वनियाँ हैं, जैसे– ऐ, औ, आइ ओइ, आउ तथा उइ।

मैतेलोन की लिंग संरचना हिंदी से भिन्न है। इसमें क्रियापदों पर लिंग का प्रभाव नहीं पड़ता जबकि हिंदी में क्रियापदों पर लिंग का प्रभाव पड़ता है। उदाहरण–

मैतेतिलोन	**हिंदी**
राम चत्लि	राम जाता है
सीता चत्लि	सीता जाती है
श्यास चाक चारि	श्याम खाना खा रहा है
मेम चाक चारि	मेम खाना खा रही है

इस प्रकार दोनों भाषाओं में लिंग संबंध में भिन्नता पाई जाती हैं दोनों भाषाओं में वचन दो ही होते हैं। मैतैलोन में भी हिंदी की तरह ही तीन पुरुष पाए जाते हैं–

1. उत्तम पुरुष
2. मध्यम पुरुष
2. अन्य पुरुष।

काल भी दोनों भाषाओं में तीन ही होते हैं। मैतेलोन में कारक की व्यवस्था अन्य भाषाओं से भिन्न है। कारक प्रकट करने के लिए विभक्ति या परसर्ग की आवश्यकता नहीं होती। इनके स्थान पर प्रत्ययों का प्रयोग होता है।

मराठी

मराठी भाषा में हिंदी की लगभग सभी ध्वनियाँ प्राप्त होती हैं। मराठी एवं हिंदी भाषा में जो थोड़ा पार्थक्य पाया जाता है, वह निम्नांकित है–

'ळ' मूर्धन्य ध्वनि मराठी की सभी बोलियों में प्राप्त होती है,

जैसे–कमल–कमळ, काल– काळ, बाल–बाळ।

मराठी में जो लृ एवं ॠ स्वर थे, जिनका लोप हो गया है। मराठी में 16 स्वर और 36 व्यंजन, कुल मिलाकर 52 अक्षर है। मराठी और हिंदी में कारक और उनके अर्थों में समानता है, केवल प्रत्यय भिन्न है। विश्व की बहुत सी भाषाएँ ऐसी है, जिनमें पदक्रम का वाक्य–रचना में महत्वपूर्ण स्थान है। पदक्रम–अन्विति के कुछ नियम निम्नलिखित हैं–

1. हिंदी के समान मराठी में भी प्रायः कर्ता पहले, कर्म बाद में तथा क्रिया वाक्य के अंत में आती है– कश्मीर में कई सुंदर बगीचे हैं।

कश्मीर मध्वे अनेक सुंदर बीचे आहेत (मराठी)।

2. द्विकर्मक क्रियाओं में गौण कर्म पहले और मुख्य कर्म पीछे आता है। हमने मित्र को चिट्ठी भेजी। आम्ही आमच्या मित्राला पत्र पाठविले।

मलयालम भाषा

मलयालम में 51 ध्वनियाँ है। स्वरों में ह्रस्व है– अ, इ, उ, ऋट, ए, ओ। दीर्घ स्वर– आ, ई, उ ॠ, ए + ए, ओ + ओ, ऐ, औ उनमें ऐ, औ के ह्स्व नहीं है। ॠ का ळ जो दीर्घ स्वर है वह भाषा के प्रयोग में नहीं है।

मलयालम की वर्णमाला हिंदी वर्णमाला से मिलती है। कहीं–कहीं अंतर है। स्वरों में अन्य द्रविड़ भाषाओं की भाँति मलयालम ह्रस्व 'ए' कार और 'ओ' कार मिलता है। वर्णाक्षरों में कोई अंतर नहीं है।

मलयालम में लिंग केवल आर्थी है जब कि हिंदी में व्याकरणिक होता है। मलयालम का लिंग विधान सरल है। इसमें तीन लिंग हैं– पुल्लिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग।

अस्तित्ववाचक वाक्यों में हिंदी की 'है', और 'होता है' क्रियाओं के समानांतर मलयालम में आकुन्न/उंटु' विद्यमान है किंतु संस्कृत में 'अस्ति' के लोप के समान मलयालम में भी 'अकुन्नु' का लोप हो जाता है। जैसे–

इतु पुस्तकम् (मलयालम) यह किताब है (हिंदी)

अतु एन्टे वीडु (मलयालम) वह मेरा घर है (हिंदी)

मैथिली भाषा

मैं मैथिली को 'संस्कार तिलका' कहता हूँ। यह संस्कार और संस्कृति की प्रत्यायिका हैं। इसका नाम सुनने हुए मन में एक दैवीभाव आता है। इसी रूप में इसे विद्या एवं ज्ञान की भाषा भी कहा जा सकता है।

मिथिला लिपि को 'तिरहुता' कहा जाता था। वैदेही लिपि का 'तिरहुता' नाम गुप्त–सम्राज्य काल में पड़ा, ऐसा माना जाता है।

मिथिलाक्षर में अत्यल्प परिवर्तन होने के कारण इसकी प्राचीनता अद्यपर्यंत सुरक्षित है। परिवर्तन हुआ भी, तो अत्यल्प ही– यथा– 'र' का बिंदु त्रिभुज के माध्यम से लिखा जाने लगा, जो बाद में रेखा बनकर त्रिभुज को काटने लगा।

मिथिला के विद्वान तिरहुता का उद्भव सर्वथा स्वतंत्र रूप से तांत्रिक यंत्र–त्रिकोण, बिंदु, वृत्त एवु चतुष्कोण आदि से निष्पनन मानते हैं। इसी कारणवश विशेष रूप से पूजा–पाठ में तिरहुता में लिखित ग्रंथ को मिथिला में अभी भी महत्व दिया जाता है'।

मिथिलाक्षर में 'ओ' अथवा 'औ' स्वतंत्र वर्ण है, न कि 'अ' में मात्रा लगाकर बना वर्ण।

देवनागरी की तुलना में लघु एवं दीर्घ मात्रा लगाने का चिह्न मिथिलाक्षर में सर्वथा भिन्न है।

मिथिलाक्षर का संयुक्ताक्षर भिन्न रूप की स्वतत्र वर्णमाला है, मात्रा लगाकर बनी वर्णमाला नहीं। यह विशेषता अन्य लिपि में नदीं दृष्टिगत होती। यथा– ऋ, त्र, कृ आदि हेतु अलग–अलग अक्षराकृति है।

'ण' एवं 'श' के दो–दो वर्ण मिथिलाक्षर में हैं।

मिथिलाक्षर की वर्णमाला का अंत उर्ध्वगति में होता है।

मिथिलाक्षर के प्रत्येक वर्ण का वर्णनात्मक नाम है, यथा पूर्णविराम को 'पासी' कहा जाता है।

संताली भाषा

संताली की अपनी ध्वनि संरचना है। व्याकरण है, शब्दावली है। यहाँ देवनागरी लिपि को मानकर संताली ध्वनियों पर विचार किया जा रहा है।

हिंदी की तरह संताली में भी ध्वनि–लिपि को दो वर्गों में बाँटा गया है– 1. स्वर ध्वनियाँ या स्वर वर्ण और 2. व्यंजन ध्वनि या व्यंजन वर्ण।

(i) स्वर वर्ण– उच्चारण की दृष्टि से संताली में स्वर ध्वनियाँ (वर्ण) हैं– अ, आ, ऑ, आ़, इ, ई, उ, उँ, ऊ, ए, ऐ, एँ, ओ, ओ, ओं, अः।

(ii) व्यंजन वर्ण– संताली भाषा में नागरी लिपि को पाँच श्रेणियों में बाँटा गया है–

1. स्पर्श 2. प्राणत्व 3. ध्वनि घर्षण, 4. अंतःस्थ 5. ऊष्म वर्ण।

इसके समग्र संरचनागत अध्ययन के बाद कहा जा सकता है–

संताली व्याकरण के लिए देवनागरी लिपि ही उपयुक्त है।

उच्चारण की दृष्टि से सभी देवनागरी लिपि (अक्षरों) का प्रयोग संताली में होता है। केवल 'श' 'ष' 'क्ष' और 'त्र' जैसे संयुक्ताक्षर का व्यवहार नहीं होता।

संताली भाषा में 'स' ही एक मात्र ऊष्म ध्वनि है। 'श' और 'ष' के लिए सर्वत्र 'स' का ही व्यवहार होता है।

संताली शब्द के शुरू में सयुक्त व्यंजन नहीं होता है। साथ ही 'ङ' और 'ण' ध्वनि नहीं आती। इनका प्रयोग रचतंत्ररूप से होता है।

शब्द के अंत में बड़ी ई (ी) तथा ऊ (ू) का प्रयोग होता है। जैसे– ती (हाथ), मूँ (नाक) रु (बजाना), झी (बुआ)।

मूल भारतीय आर्यभाषा के अंतर्गत वैदिक संस्कृत तथा लौकिक संस्कृत परिगणित हैं। इनकी ध्वनि–प्रक्रिया निम्नलिखित है–

ध्वनि प्रक्रिया

(क) मूल स्वर– अ, आ, अउ, इ, ई, इउ, उ, ऊ, उउ, ऋ, ॠ, ल

(ख) मिश्र स्वर – ए, ऐ, ओ, औ

(ग) स्पर्श व्यंजन अघोष अल्प. अघोष महाघोष अल्पघोष महाघोष

क वर्ग (कंठ्य / कोमलतालव्य	क ़	ख ा	ग्	घ्
च वर्ग (तालव्य / स्पर्श संघर्षी)	च्	छ्	ज ़	झ्
ट वर्ग	ट्	ठ्	ड्	ढ्

(मूर्धन्य / प्रतिवेष्टित)				(ळ ळह)
त वर्ग (दंत्य)	त्	थ्	द्	ध्
ष वर्ग (ओष्ठ्य)	प्	फ्	ब्	भ्

(अल्प = अल्प प्राण, महा = महाप्राण)

(घ) अनुनासिक ङ् ञ् ण, न् म्

(घ[1]) अंतस्थ य् र् ल् व्

(ङ) उष्म / संघर्षी श् ष् स् ह

(च) विसर्ग (:)

(छ) जिह्वामलीय (ञ)

(ज) उपध्यमानीय (ञ)

(पुनः पुनः / पुनः / पुन□ पुनः)

(झ) अनुस्वार (:) / ँ)

(ञ) ग्वुं(म >)

उपरिनिर्दिष्ट ध्वनियाँ वैदिक संस्कृत में पाई जाती है। लौकिकसंस्कृतमें(ळ, ळह), ग्वुं, :) जिह्वामूलीय एवंउपध्यमानीय ध्वनियाँ प्रयोगबाह्य हो गई हैं।

(झ, ऋ, लृ ध्वनियाँ र् ल् ध्वनियों के स्वरूप हैं)।

इन ध्वनियों का उच्चारण आजकल (रि, री, लि, की तरह) हो गया है।

'ष' का भी उच्चारण लगभग 'श' की तरह होता हैं। बिहारी संस्कृतभाषी तो 'श' का भी उच्चारण प्रायः स की तरह करते है, क्योंकि मगही, मैथिली, भोजपुरी में 'श' ध्वनि उच्चरित नहीं होती, केवल 'स' ध्वनि के उच्चारण का अभ्यास इन बोलियों के प्रयोक्ताओं को रहता है।

पूर्वी हिंदी की अवधी में भी उच्चारण की यही स्थिति है।

वर्तमान काल में संस्कृत भाषा की लिपि देवनागरी लिपि है। यह लिपि ब्राह्मी लिपि से विकसित है। सिंकदर के आक्रमण के पूर्व भारत में ब्राह्मीलिपि का प्रचलन था।

यहाँ उल्लेखनीय होगा कि क् ख् ग् ध्वनियों का उच्चारण अब कंठ्य न होकर कोमल तालव्य हो गया है।

सिंधी भाषा

लगभग 150 वर्षों से अधिक समय में सिंधी भाषा में साहित्य। सृजन एवं शिक्षा का प्रचार–प्रसार अरबी लिपि में अधिक हुआ है। अरबी सिंधी की वर्णमाला 52 वर्ण हैं। इन 52 अक्षरों को निम्न भाषाओं से लिया गया जिनको देवनागरी लिपि में निम्न प्रकार से लिखा जाता है–

संस्कृत भाषा के 16 वर्ण–

झ, छ, ञ, फ, ठ, ट, थ, भ, ण, घ, ङ, ख, ड़, ढ, ड, घ।

अरबी भाषा के 29 वर्ण–

त, बख अख ज़, स, श, स, ज़, र, अ, य, ह, व, न, म, ल, क, क् प़, ग़, ए।

फारसी भाषा के तीन वर्ण–ग, च, प।

सिंधी भाषा के निम्न 4 वर्ण– ग, द, ज, ब। सिंधी भाषा की देवनागरी लिपि में चंद्रबिंदु का प्रयोग नहीं होता। अरबी लिपि में स तीन, ज़ चार, त तथा ह दो दो है। परन्तु देवनागरी लिपि में एक ही प्रकार से लिखा जाता है। देवनागरी लिपि में श और ष ध्वनि को अरबी सिंधी लिपि में एक ही वर्ण के रूप में लिखा जाता है। हिंदी लिपि के संयुक्त अक्षर क्ष, त्र, ज्ञ, ञ, श्र तथा विसर्ग के सिंधी भाषा में स्वीकार किया जा रहा है परंतु कहीं–कहीं इनका भी सिंधीकरण कर दिया गया है।

सिंधी भाषा में अधिकांश संज्ञाएँ स्वरांत है। अन्य भाषाओं से सिंधी में अपनाए

गए व्यंजनांत शब्दों का उच्चारण भी स्वरांत किया जाता है।

वचन दो हैं– एकवचन और बहुवचन।

सिंधी में दो लिंग हैं– पुल्लिंग और स्त्रीलिंग।

लिंग विधान में सिंधी और हिंदी में कुछ भिन्नता भी है, जैसे–

किताब शब्द सिंधी में पुल्लिंग है तो हिंदी में स्त्रीलिंग है।

सिंधी भाषा में सभी अकारांत संज्ञाएँ स्त्रीलिंग हैं।

सभी ओकारांत संज्ञाएँ पुल्लिंग हैं।

इस विवेचन के बाद निम्न स्थापनाएँ स्पष्ट होती हैं–

यह अध्ययन ध्वनि संरचना के आधार पर किया गया अन्य पक्षों पर विस्तारभय के कारण विचार नहीं हो पाया। अन्य पक्षों को भी आधार बनाकर आगे कार्य करना चाहूँगा।

भारतीय जन गण मन कश्मीर से कन्याकुमारी तक एक है। सभी भारतीय भाषाओं की पारस्परिकता का साम्य अद्‌भुत है। अभी तक के अध्ययनों ने इन्हें पृथकतावादी दृष्टि से देखने का कार्य किया है। जबकि ध्वनिगत संरचना को दृष्टि में रखकर कहा जा सकता है कि 'भारतीय भाषाओं का मूल स्रोत एक ही है।

आर्य और द्रविड़ भाषाओं का विभाजन दुर्भावनापूर्ण, भ्रामक एवं अवैज्ञानिक है। जबकि दोनों भाषाओं का डी. एन. ए. एक है।

आर्य और द्रविड़ भाषाओं का वर्गीकरण विदेशी विद्‌वानों ने किया है किंतु तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो इन दोनों परिवारों की भाषाएँ सम–संरचनात्मक और सम–सांस्कृतिक हैं। इन्हें पारिवारिक रूप से अलगाया नहीं जा सकता है।

डॉ. पद्‌मजा देवी (तिरुपति)

कुछ रूसी एवं फिन्निश विद्‌वानों के अनुसार द्रविड़ और आर्य परिवार मूल रूप से एक ही परिवार की भाषाएँ हैं जिसे वे नोस्ट्राटिक परिवार कहते हैं। (प्रो. जी. गोपीनाथ)

आर्य द्रविड़ भेदमात्र भ्रम जाल है और हिंदी और तमिल तथा इस दृष्टि से बांग्ला और मलायलम या तेलुगु और गुजराती का मूल उत्स एक है

(डॉ. बालसुब्रहमण्य)

महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव के साहित्य और नाटकों में ब्रजावली का प्रयोग मिलता है जिससे इस बात का प्रमाण मिलता है कि उस काल में भी उत्तर–पूर्वांचल में हिंदी बोली और समझी जाती थी। नागालैंड की जनसंपर्क भाषा नागामीज है जिसमें लगभग 65 प्रतिशत हिंदी के शब्द मिलते हैं। इसीलिए यहाँ आपको प्रति दस लोगों में कोई न कोई हिंदी जानने वाला जरूर मिल जाएगा हिंदी यहाँ (त्रिपुरा) की जन संपर्क भाषा है

(के. फ्योखामो लो था (नागालैंड))।

❑❑❑

हिंदी एवं बांग्ला के 'से' परसर्ग का तुलनात्मक अध्ययन

अनीता गांगुली

हिंदी में करण कारक एवं अपादान कारक के लिए 'से' परसर्ग का प्रयोग होता है। बांग्ला में दोनों कारकों के लिए अलग–अलग कारक चिह्न या परसर्ग हैं। कर्ता जिसके द्वारा क्रिया संपादित करता है उसको करण कारक कहते हैं। बांग्ला में करण कारक को द्योतित करने वाले कारक चिह्न (विभक्ति) या परसर्ग सात प्रकार के हैं। जैसे– ए, य, ते (एते) द्वारा, दिए, कृतक, कोरे आदि।

(i) तोमारे कोरिब बन्दी सोनार कांगोने (तुमको बंदी करूँगा सोने के कंगन से) इस प्रकार के प्रयोग कविता में पाए जाते हैं।
(ii) टाकाय सब किछू पाउया जाय (पैसे से सब कुछ प्राप्त होता है)
(iii) टैक्षीते एलाम बासे जा भीड़ (टैक्सी से आया, बस में बहुत भीड़ थी)
(iv) एइकाज आमार द्वारा हॉबे ना (यह काम मुझसे नहीं होगा)
(v) लोक दिए छेलेके टाका पाठालाम (आदमी से लड़के को पैसे भेजे)
(vi) रामकृतक काज कॉरा हॉलो (राम द्वारा यह काम हुआ)
(vii) पालकी कॉरे बोऊ एलो (पालकी से बहू आई)

बांग्ला में अपादान कारक को इस प्रकार स्पष्ट किया जाता है – ''जिससे कोई व्यक्ति या वस्तु चालित, पतित, भीत, मुक्त, उत्पन्न, रक्षित, गृहीत आदि हो उसे अपादान कहते हैं। सामान्यतः इसमें थेके, हॉइते, चेये परसर्ग का प्रयोग होता है। बांग्ला में परसर्ग को अनुसर्ग कहते हैं। इसके उदाहरण इस प्रकार हैं–

(i) मॉहादेवेर जाँटा हॉइते गंगा नदी असियाछे (महादेव की जटा से गंगा आई)
(ii) गाछ थेके फूल झोड़े (पेड़ से फूल झड़ते हैं)
(iii) गाछ थेके पाता पोड़लो (पेड़ से पत्ता गिरा)
(iv) सीता गीतार चेये बेशि सुंदर (सीता गीता से ज्यादा सुंदर है)

बांग्ला में इसका संरचनात्मक प्रयोग इस प्रकार है –

1. कर्मवाच्य में से परसर्ग

(i) पुलिस कृतक चोर धृत हॉइलो (पुलिस द्वारा चोर पकड़ा गया)
(ii) आमार द्वारा चॉन्द्रो के मॉलिन देखाय (मेरे द्वारा चंद्रमा मलिन दिखता है)

बांग्ला में भाववाच्य में न तो निषेध का प्रयोग होता है और न ही 'से' परसर्ग का। जैसे –

(i) ऑति कॉष्टे पथ चला जाए (अति कष्ट से या कष्टपूर्वक रास्ते में चला जाता है)
(ii) मॉहाशोयेर कोथा थाका हॉय (महाशय का कहाँ रहना होता है)

2. गौण कर्म के साथ

(i) से गेलासे कॉरे जॉल खाय (वह गिलास से पानी पीता है)

(ii) आमि बोतोले कॉरे जॉल खाई (मैं बोतल से पानी पीता हूँ)

नोटः अकारांत शब्द के बाद कॉरे आने पर उस शब्द के साथ– 'ए' विभक्ति आती है। इस प्रकार–ए तथा कॉरे परसर्ग (दोनों) 'से' के अर्थ में आते हैं। इन वाक्यों को इस प्रकार भी कह सकते हैं–

(i) से गेलासे जॉल खाय।

(ii) आमि बोतोले जॉल खाई।

3. गौण कर्म प्राणीवाचक होने पर बांग्ला में हिंदी से भिन्न प्रयोग होता है। उसमें असमानता दिखाई देती है –

(i) हिंदी–अध्यापक ने छात्र से पूछा।
बांग्ला–ऑध्यापक छात्रॉ के जिज्ञासा कॉरलो।

(ii) हिंदी – माँ ने पुत्र से कहा।
बांग्ला– माँ छेलेके बॉललो।
बांग्ला में यहाँ पर 'को' परसर्ग आया है। जैसे –

(iii) अध्यापक ने छात्र को पूछा।

(iv) माँ ने पुत्र को कहा।

4. हिंदी में जहाँ 'से' का प्रयोग माँगना के साथ होता है वहाँ बांग्ला में इस प्रकार कहते हैं –

(i) छेले बाबार काछ थेके मोबाइल फोन चाइलो (लड़के ने पिताजी से मोबाइल फोन माँगा) थेके के साथ काछ शब्द का प्रयोग व्यक्तिवाचक कर्म के लिए ही होता है। उक्त वाक्य का अनुवाद इस प्रकार होगा – 'लड़के ने पिताजी के पास से मोबाइल फोन माँगा।'' वैसे 'काछ' शब्द का स्वतंत्र अर्थ 'के पास' है जो संबंध कारक के साथ प्रयुक्त होता है। जैसा कि हिंदी में भी है।

आर्थी प्रयोग– दोनों भाषाओं में से परसर्ग का प्रयोग निम्नलिखित अर्थों में होता है–

(1) साधन के रूप में– करण कारक के साथ 'से' का प्रयोग साधन के रूप में होता है –

	हिंदी	**बांग्ला**
(i)	मैं चाकू से फल – काटता हूँ।	आमि चाकू दिए फॉल काटि।
(ii)	मैं मुँह से बोलता हूँ।	आमि मुख दिए बोली।
(iii)	वह पेन से लिखता। है	से पेन दिए लेखे।

(2) कारक के अर्थ में

(i) आपके आने से बड़ी खुशी हुई।

(ii) अधिक वर्षा से बाढ़ आ गई।

(iii) वह भूख से मरा।

(iv) वह बुखार से पीड़ित है।

(v) धूप से पेड़ सूख गया।

हिंदी में क्रियार्थक संज्ञा, भूख, प्यास गर्मी, धूप, बुखार, हैजा आदि के साथ 'से' का प्रयोग होता है।

बांग्ला में उपर्युक्त वाक्यों में प्रथम दो के साथ – ते विभक्ति तथा शेष तीन के साथ य, ए (करण) का प्रयोग होता है। जैसे–

(i) आपनार आसाते ऑनेक आनंदॉ हॉलॉ।

(ii) बेशि बृष्टिते बर्णा एलो।

(iii) से खिदेय मारा गेलॉ।

(iv) से ज्वरे भूगछे।

(v) रोद्दूरे गाछ सूकिए गेछे।

	हिंदी	**बांग्ला**
(i)	वह भाषा से मराठी लगता है।	भाषाय से माराठी बूझाय/लगा।
(ii)	वेशभूषा से वह राजस्थानी लगता है।	वेशभूषाय से राजस्थानी बूझाय/लागे।

(3) पहचान के अर्थ मे–

हिंदी		बांग्ला
(i) वह भाषा से मराठी लगता है	–	भाषाय से माराठी बुझरस/लागे
(ii) वेशभूषा से वह राजस्थानी लगता है	–	वेशभूषाय से राजस्थानी बूझाय/लागे
(iii) ह्रदय से कोमल	–	ह्रदय कोम

(4) प्रकृति स्थिति या स्वभाव बताने के लिए 'से' का प्रयोग–

हिंदी	बांग्ला
(i) शरीर से मोटा	शॉरीरे मोटा
(ii) स्वभाव से उदार	स्वभावे उदार
(iii) ह्रदय से कोमल	ह्रदये कोमल

बांग्ला में व्यावहारिक रूप से इस प्रकार का प्रयोग बहुत कम या न के बराबर है।

(5). रीति के अर्थ में–

हिंदी	बांग्ला
(i) बच्चे पहले से बैठे हैं।	बाच्चारा आगेर थेके बॉसे आछे।
(ii) लड़का तेजी से भागा।	छेलेटा द्रुतगॉति ते पालालॉ। (यहाँ 'थेके' या 'दिए' नहीं आएगा)
(iii) ध्यान से सुनो।	ध्यान दिए सुनो। (इसमें 'दिए' ही आएगा दूसरा विकल्प नहीं है)
(iv) मैं बड़ी कठिनाई से तिरुमला चढ़ी।	आमि ऑनेक कॉष्टेतिरूमला उठलाम।
(v) यह काम सरलता से हो जाएगा।	एइ काजटा सॉहॉजे हॉये जाबे। ('–ए' विभक्ति)

उपर्युक्त वाक्यों में बांग्ला में 'से विभिन्न रूपों में आया है।

(6). भय के अर्थ में–

हिंदी	बांग्ला
उसे बिल्ली से डर लगता है।	से बेडाल थेके भॉय पाय।

दोनों वाक्यों के लिए बांग्ला में एक ही वाक्य है। बांग्ला में इसे 'को' परसर्ग के माध्यम से भी व्यक्त कर सकते हैं जो कि ज्यादा व्यावहारिक है। जैसे –

(i) से बेडाल के भॉय पाय।

(ii) से कुकुर के भॉय पाय।

(7) उत्पत्ति/उद्गम/स्रोत के अर्थ में

हिंदी	बांग्ला
(i) दही से मक्खन बनता है।	दॉई थेके माखोन हॉय।
(ii) नर्मदा अमरकंटक से निकलती है।	नॉर्मोदा ऑमॉरकॉन्टॉक थेके बेरोय।
(iii) तिल से तेल निकलता है।	तिल थेके तेल हॉय।
(iv) बीज से पेड़ बनता है।	बीजे गाछ हॉय/बीज थेके गाछ हॉय।

कभी–कभी बांग्ला में अपादान कारक में 'दिया' परसर्ग आता है। जैसे –

चॉक्खू दिया अश्रु निर्गत हॉइलॉ–आँखों से अश्रुधारा निकलने लगी। इसके अलावा –ए, –ते विभक्ति भी अपादान को द्योतित करती है। जैसे–

(i) कालो मेघे वृष्टि हॉय – काले बादलों से बारिश होती है।
(ii) हासिते तार मुक्ता झॉरे – उसकी हँसी से मोती झड़ते हैं।
(iii) दूधेते छाना हॉय – दूध से पनीर बनता है।

अतः यह स्पष्ट दिखाई देता है कि बांग्ला 'से' प्रत्यय के रूपों में विभिन्नता है।

(8). दूरी/निकटता के अर्थ में–

	हिंदी	**बांग्ला**
(i)	नदी शहर से दूर है।	नॉदी शॉहॉर थेके दूरे।
(ii)	घर से स्कूल निकट है।	घॉर थेके स्कूल काछे।
(iii)	हैदराबाद से दिल्ली 2000 कि.मी. है।	हायद्राबाद थेके दिल्ली 2000 कि.मी.।
(iv)	वर्धमान से हावड़ा 70 कि.मी. है।	बोर्धमान थेके हाउड़ा 70 कि.मी.।
(v)	गोलकुंडा किला हैदराबाद शहर से 9 कि.मी. दूर है।	गोलंकुडा केल्ला हायद्राबाद थेके 9 कि.मी. दूर।

(9). युक्तता के अर्थ में–

	हिंदी	**बांग्ला**
(i)	समुद्र रत्नों से भरा है।	सॉमुद्रॉ रॉत्नो दिए भॉरा।
(ii)	नदियाँ मछलियों से भरी हैं।	नॉदी माछ दिए भॉरा।
(iii)	वृक्ष फलों से भरे हैं।	गाछ फॉल दिए भॉरा।

(10). संसर्ग एवं विरोध के अर्थ में–

	हिंदी	**बांग्ला**
(i)	लोग मंत्री से मिले।	लोकेरा मंत्रीर साथे देखा कॉरलॉ।
(ii)	सीता गीता से लड़ी।	सीता गीतार साथे लॉडाई कॉरलॉ।
(iii)	भाई से मत झगड़ो।	भाइयेर साथे झॉगड़ा कॉरोना।
(iv)	मुझसे बात मत करो।	आमार साथे कॉथा बॉलॉ ना।

टिप्पणी –बांग्ला में उपर्युक्त वाक्यों में 'से' परसर्ग का प्रयोग नहीं होता बल्कि 'के साथ' का प्रयोग होता है। जैसे–

लोग मंत्री के साथ मिले	रावण राम के साथ लड़ा

(11). अलगाव/पृथक होने के अर्थ में–

	हिंदी	**बांग्ला**
(i)	पेड़ से पत्ता गिरा।	गाछ थेके पाता पॉडलॉ।
(ii)	वह शहर से चला।	से शॉहॉर थेके चॉललॉ।
(iii)	मूर्खों से बचो।	मूर्खोंदेर थेके बेचे थाको।
(iv)	स्टेशन से गाड़ी छूटी।	स्टेशन थेके गाड़ी छाड़लॉ।
(v)	छत से पानी टपक रहा।	छाद दिए जॉल पॉडछे।

दोनों भाषाओं में बिल्कुल समानता है तथा अपादान कारक का अर्थ दर्शाता है। बांग्ला में इसे आधार या स्थानवाचक अपादान कहते हैं।

(12). तुलना के अर्थ में दोनों भाषाओं में प्रयुक्त होता है–

	हिंदी	**बांग्ला**
(i)	मैं सबसे बड़ा हूँ।	आमि सॉब चेये बॉड़ॉ।

(ii)	निखिल अखिल से छोटा है।	निखिल ऑखिल चेये छॉटो।
(iii)	यह सबसे ठंडा कमरा है।	एइटा सब चेये ठांडा घॉर।

(13). कालावधि / समय / दिन के अर्थ में दोनों में समानता है–

	हिंदी	बांग्ला
(i)	वह चार साल से यहाँ है।	से चार बोछोर थेके एखाने आछे।
(ii)	माताजी को कल से बुखार है।	मायेर काल थेके ज्वॅर।
(iii)	वह सात बजे से दिख नहीं रहा।	ताके सातटार थेके देखा जाच्छे ना।
(iv)	वह रविवार से नहीं आया।	से रॉविवार थेके आसेनि।
(v)	अगले महीने से परीक्षा होगी।	आगामी मास थेके पॉरीक्खा हॉबे।
(vi)	सुबह से बारिश हो रही है।	शॉकाल थेके वृष्टि पॉड़छे।
(vii)	बचपन से व्यायाम करना चाहिए।	छोटो बेला थेकेई व्यायाम कॉरते हॉय।

(14). प्रयोजन के अर्थ में – दोनों भाषाओं में समानता है –

	हिंदी	बांग्ला
(i)	श्याम काम से आया।	श्याम काजे एसेछे।
(ii)	वह मतलब से आता है।	से मॉतलॉबे आसे।

(15). हेतु के अर्थ में – दोनों भाषाओं में समानता है –

	हिंदी	बांग्ला
(i)	सुनामी से लाखों लोग मर गए।	सुनामी ते लोक्खो लोक मॉरे गेछे।
(ii)	बाढ़ से फसल नष्ट हो गई।	बॉर्ना ते फोसोल नॉष्टॉ हॉये गेछे।

बांग्ला में बिना परसर्ग के भी ऐसे वाक्यों का प्रयोग करते हैं जिसमें 'के लिए' (जॉन्यॉ) का अर्थ निकलता है।

जैसे–कोरोनार जॉन्यॉ ऑनेक लोक मारा गेछे–कोरोना के कारण अनेक लोग मारे गए

(16). दिशा के अर्थ में – दोनों भाषाओं में समानता है –

	हिंदी	बांग्ला
(i)	इस सड़क से सीधे जाइए।	एइरास्ता दिए सोजा जान।
(ii)	उस तरफ से जाइए।	ओइ दिक दिए जान।

(17). अंगविकार / विकलांगता के अर्थ में

वह बाएँ पैर से लंगड़ा है। वह एक आँख से काना है।

बांग्ला में ऐसे प्रयोग नहीं मिलते।

(18). आवागमन का माध्यम –

	हिंदी	बांग्ला
(i)	वह बस से स्कूल जाता है।	से बासे स्कूले जाए।
(ii)	मैं मैट्रो से आया।	आमि मैट्रोय एलाम।
(iii)	वह नाव से नदी पार होता है।	से नौकाय नॉदी पार हॉय।
(iv)	मैं गाड़ी से आया	आमि गाड़िते एसछि।

बांग्ला में माध्यम के अर्थ में बासे कॉरे, मैट्रो कॉरे, नौका कॉरे, गाड़ी कॉरे आदि का प्रयोग भी बहुप्रचलित है।

(19). साहचर्य/के साथ के अर्थ में– दोनों भाषाओं में समानता है–

	हिंदी	**बांग्ला**
(i)	बच्चे मक्खन से रोटी खाते हैं	बाच्चारा माखॉन दिए रुटी खाय।
(ii)	खिचड़ी दही से खाओ	खिचूड़ी दोई दिए खाओ।
(iii)	केले से ब्रेड खाओ	कॅला दिए ब्रेड खाओ।

(20).संबंध के अर्थ में

(i) रीना ने राजू से शादी की।

(ii) राम का विवाह सीता से हुआ।

बांग्ला में ऐसे प्रयोग नहीं हैं। इन वाक्यों को बांग्ला में इस प्रकार कहेंगे–

(i) रीना राजू के बिये कॉरलॉ (रीना ने राजू से शादी की)

(ii)रामेर बिये सीतार साथे हॉलॉ (राम की शादी सीता के साथ हुई)

(21).मनोभाव के आलंबन के रूप में–

(i) वरूण को शशि से प्रेम है।

(ii) माता को अपने बच्चों से प्यार है।

(iii) दादी को पोतों से स्नेह है।

इन वाक्यों में बांग्ला 'को' का प्रयोग करती है। उदाहरण –

(i) बॉरूण शॉशि के भालॉ बासे – वरूण शशि को प्यार करता है।

(ii) मॉ निजेर बाच्चादेर के भालॉ बासे – माँ अपने बच्चों को प्यार करती है।

(iii) ठाकूमा पूतीदेर के स्नहॉ कॉरे – दादी पोतों को स्नेह करती है।

(22). आधार/मूल सामग्री के अर्थ में– दोनों भाषाओं में समानता है –

	हिंदी	**बांग्ला**
(i)	पहले घर पत्थरों से बनते थे।	आगे घॉर पाथोर दिए तौयरी हॉतॉ।
(ii)	गहने सोने से बने हैं।	गोयना सोना ईंट दिए तौयरी।
(iii)	यह मकान ईंटों बना है।	एई बाड़ीटा ईंट दिए तौयरी।

(23). दर के अर्थ में

	हिंदी	**बांग्ला**
i	आम किस भाव से बिक रहे हैं?	आम कॉतॉ कॉरे बिक्री हॉच्छे।
ii	बैंक में ब्याज किस दर से है?	बैंके सूद कॉतॉ कॉरे?

यहाँ पर बांग्ला में 'से' के स्थान पर 'कॉतॉ कॉरे' का प्रयोग होता है जिसका अर्थ हुआ 'कितने से' या 'कितने का'

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदी की अपेक्षा बांग्ला में 'से' परसर्ग का प्रयोग अधिक जटिल है। उसमें परसर्ग/विभक्ति प्रत्ययों की संख्या भी ज्यादा है। अतः हिंदी का 'से' परसर्ग सीखना–सिखाना बांग्ला की तुलना में सरल एवं सहज है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. प्रो. मिश्र, प्रो. शर्मा एवं डॉ. पांडे, हिंदीः स्वरूप और प्रयोग, भोपाल, मध्यप्रदेश ग्रंथ अकादमी प्रकाशन, 1986

2. गुरु, कामता प्रसाद, हिंदी व्याकरण, दिल्ली, पराग प्रकाशन, 2014

3. केंद्रीय हिंदी संस्थान, व्यावहारिक हिंदी संरचना एवं अभ्यास, आगरा, संस्थान प्रकाशन, 2011

4. विधु भूषण दास गुप्त, लर्न बांग्ला योरसेल्फ, कलकत्ता, दासगुप्त प्रकाशन, 1990

5. श्री रवींद्रनाथ पालधि एवं सहलेखक, आधुनिक बांग्ला व्याकरण ओ रचना, कलकत्ता, प्रकाशन. प्रेसिडेंसी लाइब्रेरी, 2011

6. ई दिमाक, एस. भट्टाचार्जी चटर्जी इंट्रॉडक्शन टू बैंग्गाली पार्ट–1, नई दिल्ली, मनोहर पब्लिकेशन, 1991

❑❑❑

मलयालम भाषा, साहित्य एवं संस्कृति

पी. ए. राधाकृष्णन

केरल भारत का एक प्रांत है। मलयालम यहाँ की मुख्य भाषा है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व केरल में राजाओं की रियासत थी। ''ईश्वर की भूमि'' के नाम से विख्यात केरल प्रांत के सर्वाधिक नागरिक आजकल शिक्षित माने जाते हैं। गत 65 साल से वहाँ के स्कूलों में पढ़नेवाला प्रत्येक छात्र राष्ट्रभाषा का जानकार है। यह परिवर्तन कैसे संभव हुआ? 19 वीं शताब्दी के अंतिम दशक में स्वामी विवेकानंद ने केरल भूमि का भ्रमण किया। उन्होंनें कहा– केरल पागलों से भरा है। वहाँ का पागलपन आज गायब है। श्री नारायण गुरु, विवेकानंद, महात्मा गांधी जैसी महान विभूतियों के वैचारिक प्रचार के कारण यह परिवर्तन संभव हो सका।

मलयालम केरल और लक्षद्वीप समूह की मूल भाषा है। मलयालम भारत की 4% आबादी द्वारा बोली जाती है। मलयालम द्राविड भाषाओं के दक्षिणी समूह से संबंधित है और द्राविड परिवार में इसे बच्चे के रूप में माना जाता है।

मलयालम एक ऐसी भाषा है जो अन्य भाषाओं जैसे संस्कृत्, तमिल आदि से उधार ली गई है। यूरोपीय भाषाओं के आगमन ने मलयालम भाषा में प्रवेश किया और इसके संवर्धन में इजाफा हुआ। इस भाषा ने अंग्रेजी, पुर्तगाली और डच से कई शब्दों और मुहावरों को ग्रहण किया। KOLE EZUTHUदक्षिण भारत की सबसे पुरानी लेखन प्रणालियों में से एक है, जो प्राचीन ग्रंथ लिपि से ली गई है। मलयालम में मूल रूप से 37 व्यंजन और 16 स्वर शामिल थे। सन् 1981 में वर्णमाला में वर्णों की संख्या समाप्त करके एक नई स्क्रिप्ट पेश की गई थी।

राजनीति, जलवायु, ईसाई धर्म और इस्लाम का प्रचार, नंबूतिरी ब्राह्मणों का आगमन, सभी ने स्थानीय बोली, मलयालम के उद्भव के लिए अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण किया। नंबूतिरी ने स्थानीय बोली पर संस्कृत भाषा का अच्छा उपयोग करने में भूमिका निभाई। पहली बार धार्मिक गीतों को रचना हुई। साथ ही साथ तमिल भाषा का प्रभाव मलयालम पर पड़ा।

उत्सव और त्योहार

केरलीय जीवन की छवि यहाँ मनाए जाने वाले उत्सवों में दिखाई देती है। केरल में अनेक उत्सव मनाए जाते हैं जो सामाजिक मेलमिलाप और आदान–प्रदान की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। केरलीय कलाओं का विकास यहाँ मनाए जानेवाले उत्सवों पर आधारित हैं। उन उत्सवों में कई का संबंध देवालयों से है, अर्थात् ये धर्माश्रित हैं तो अन्य कई उत्सव धर्मनिरपेक्ष हैं। 'ओणम' केरल का राज्योत्सव है। मुख्य हिंदु त्योहार हैं– विषु, नवरात्रि, शिवरात्रि, तिरुवातिरा आदि। मुसलमानों के त्योहार हैं–रमजान, बकरीद, मुहर्रम, मिलाद–ए–शरीफ। ईसाई– क्रिसमस, ईस्टर आदि मनाते हैं।

कला व संस्कृति

केरल की कला और उसकी सांस्कृतिक परंपराएँ सदियों पुरानी हैं। केरल के सांस्कृतिक जीवन में महत्वपूर्ण

योगदान देनेवाले कला रूपों में लोक कलाओं, अनुष्ठान कलाओं और मंदिर–कलाओं से लेकर आधुनिक कलारूपों तक की भूमिका उल्लेखनीय है।

भाषा

केरल की भाषा मलयालम के उद्‌गम के बारे में एक मत यह है कि भौगोलिक कारणों से द्राविड भाषा से मलयालम एक स्वतंत्र भाषा के रूप में विकसित हुई। इसके विपरित दूसरा मत है कि मलयालम तमिल से उत्पन्न भाषा है। तमिल और संस्कृत दोनों भाषाओं के साथ मलयालम के गहरे संबंध हैं। मलयालम का साहित्य मौखिक रूप से शताब्दियों पुराना है। परंतु साहित्यिक भाषा के रूप में उसका विकास 13वीं शताब्दी से हुआ था। इस काल में लिखित मलयालम का आदि काव्य है ''रामचरितम''।

साहित्य

मलयालम का साहित्य आठ शताब्दियों से अधिक पुराना है। किंतु आज तक साहित्यिक प्रारंभिक दशा पर प्रकाश डालनेवाला कोई ग्रंथ अप्राप्त है। प्रारंभिक काल में लोक साहित्य का प्रचलन रहा होगा। केरलीय साहित्य से मलयालम साहित्य अर्थ लिया जाता है। लेकिन मलयालम साहित्य पर तमिल संस्कृत साहित्य का प्रभाव पड़ा।

19वीं शताब्दी के अंतिम चरण तक मलयालम साहित्य के इतिहास में मुख्यतः कविता की प्रधानता है। 13 वीं शताब्दी में लिखा गया 'रामचरितम' काव्य प्रारंभिक काव्य है। तमिल के आदिकालीन साहित्य संगम कृतियों का प्रभाव मलयालम साहित्य पर देखा जा सकता है। केरल के प्राचीन चेर साम्राज्य काल में संगम कृतियों की रचना हुई है। संगमकालीन साहित्यकारों में अनेक केरलीय साहित्यकार हैं।

गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद, वास्तुकला, धातु–विज्ञान आदि क्षेत्रों में केरलियों ने उल्लेखनीय योगदान किया है। पुराने काल में ज्योतिष, मंत्र–तंत्र आदि विज्ञान के रूप में विकसित हुए थे। मलयालम का वैज्ञानिक साहित्य भी अत्यंत समृद्‌ध है।

मलयालम में सबसे पहले ज्ञात साहित्य कार्य है–'रामचरित्‌म'। यह महाकाव्य सन् 1198 में लिखा गया है। यह राजा चेरमान द्‌वारा लिखित है। बाद की सदियों में पाट्‌टू साहित्य, मणिप्रवालम कविता, चंपू आदि प्रचलित थी। कवियों में मुख्य हैं– चेरुशेरी, मुहिद्‌दीन माला, एज्हुथाच्चन आदि।

मलयालम साहित्य में आधुनिक साहित्यिक आंदोलनों की शुरुआत 19वीं सदी के अंत में हुई। जिसमें मुख्य आधुनिक कवि हैं कुमारन आशान, उल्लूर परमेश्वर अय्यर, वल्लथोल नारायण मेनोन।

प्रारंभिक साहित्य – पाट्‌टू साहित्य

मलयालम के प्रारंभिक चरण का साहित्य है–पाट्‌टू साहित्य। इसमें मलयालम साहित्य के मुख्य रूप के विभिन्न शैलियों के गीत शामिल थे। देवी–देवताओं की प्रशंसा गीत थे, बहादुर योद्‌धाओं के गाथा गीत, एक जाति विशेष के गीत आदि देख सकते हैं। भद्रकाली पाट्‌टू, थोट्‌टम पाट्‌टू, मापिला पाट्‌टू आदि मुख्य पाट्‌टू हैं।

रामचरितम्

यह काव्य–संग्रह मलयालम की सबसे पुरानी पुस्तक हैं। संग्रह में 1814 कविताएँ हैं। 'रामचरितम्' मुख्य रूप से युद्‌ध कांड की कहानियाँ है। इस पुस्तक की पांडुलिपि उत्तर केरल के नीलेश्वरम् से बरामद की गई थी। कुछ विशेषज्ञ इसे तमिल

साहित्यिक कृति मानते हैं। मलयालम प्राचीन तमिल से उत्पन्न हुई है। हरमन गुंडरट ने मलयालम भाषा का पहला शब्दकोश संकलित किया। 'रामचरितम्' मलयालम भाषा की प्राचीन शैली में है।

मणिप्रवालम्

मणिप्रवालम् संस्कृत और मलयालम भाषा के मिश्रण से बना था। इसमें मणि–माणिक (मलयालम) और प्रवालम(मूँगा) मतलब संस्कृत के नियमों का पालन किया जाता है। यह काव्य मंदिर के कूटांबलम में उच्चवर्ग के नंबूतिरी द्वारा चलाए जाते हैं। मुख्य काव्य है लिला तिलकम्, आचि चरितम् संदेश काव्य, मेघदूत आदि। दूसरी मुख्य रचना है– उन्नीनीलि संदेशम, जो 14 वीं अमृत लक्ष्मी द्वारा लिखा हुआ काव्य है। 'मणि प्रवालम' में हम व्याकरण बयानबाजी के कई नियमों के चित्रण को देख सकते हैं।

चंपू और कृष्णगाथा

15वीं सदी में मलयालम में देखे गए रूप है– चंपू। यह नियमित रूप से लिखा गया है। मुख्य कवि हैं– नारायण नंबूतिरी।

मध्यकालीन साहित्य 16वीं से 19वीं तक

भक्तियुग

15वीं और 16वीं शताब्दी में मलयालम साहित्य के विकास में चेरुशेरी की कृष्णगाथा का मुख्य स्थान है। उस समय के अन्य मुख्य कवियों में मेलपथूर नारायण भट्टतिरी (1559–1665) ने नारायणिम् लिखी। बाद में थुचंत्थु रामानुजन एझुथाचन ने रामायणम काव्य संग्रह की रचना की। उन्होंने मलयालम शैली को परिष्कृत किया। किलिपाट्ट ने रामचरित मानस की सृष्टि की। थुंचत्थु भक्ति आंदोलन के कवि हैं। अन्य मुख्य कवि हैं– अयप्प पणिक्कर, पून्तानम नंबूतिरी।

प्रदर्शन कला

16वीं सदी में मलयालम नाटक का आरंभ हुआ। मणिप्रवालम्, भरतवाक्यम आदि मंच पर आए नाटक हैं। उस समय आट्टा कथा साहित्य का आरंभ हुआ। मुख्य रचनाकार है– कोट्टायथु तम्पुरान। बकवधम्, कल्याण सौगांधिकम् आदि मुख्य आटाकथा है। सन् 1783–1863 में ईसाई का मनोरंजन काव्यरूप (मारगमकली) आया है। रामपुरूथ वारियर ने वंचि पाट्टु, कुंच्चन नंबियार ने थुलल्ल, चाकियार कूथू, कथकली आदि की सृष्टि की। इसमें कलाकार की वेशभूषा और प्रस्तुतीकरण की तीन प्रकार के थुल्लल को प्रतिष्ठित किया गया है।

गद्य साहित्य

15वीं शताब्दी में मलयालम गद्य का प्रतिनिधित्व पाया जाता है। पहला गद्य साहित्य है– ब्रह्मांड पुराणम, संस्कृत में मूल का सारांश। 16वीं शताब्दी में ईसाई मिशनरियों द्वारा पहली प्रिटिंग प्रेस की शुरुआत के साथ गद्य साहित्य को काफी बढ़ावा मिला। पॉलिनोस पाटरी ने मलयालम साहित्य में विषयों और विषय की एक विस्तृत श्रृंखला का नेतृत्व किया।

इस समय के मुख्य साहित्यकार हैं– वेनमणि अचन नंबूतिरीपाट्टु, वेनमणि महान नंबूतिरीपाट्टू, पूर्णात्म अचन नंबूतिरी, कोडुंग्ल्लूर कुंजिकुटन तंपुरान, कोविलकन, केशवन वैद्यर आदि। मलयालम साहित्य को आम आदमी आसानी से समझ गया था। इस कार्य को हास्य, बुद्धि और गेय के मीटर के लिए जाना जाता था।

आधुनिक साहित्य

अंग्रेजी शिक्षा प्रदान करने के लिए कॉलेजों की स्थापना, बाइबल और अन्य धार्मिक कार्यों का अनुवाद, शब्दकोशों और

व्याकरण का संकलन, पाठ्य–पुस्तक, प्रेस, समाचार पत्र की शुरुआत, विज्ञान, प्रोद्यौगिकी, औद्योगीकरण, सामाजिक, राजनीतिक चेतना का जागरण; ये आधुनिकीकरण के चिह्न हैं। उस समय के तिरुवितानकुर महाराजों का योगदान मुख्य है। साथ ही अन्य अंग्रेजी लेखक, जिन्होंने भारत आकर मलयालम के पहला मलयालम अंग्रेजी शब्दकोश और मलयालम व्याकरण का निर्माण किया, को भुलाया नहीं जा सकता।

सन् 1881 में पहले पहल गोविंद पिल्ले ने मलयालम साहित्य के पहले इतिहास का प्रकाशन किया। केरल वर्मा ने मथ्युरा संदेशम, अभिज्ञान शाकुंतलम नाटक लिखा। मलयालम में प्रकाशित पहला उपन्यास था–कुंडलता। अन्य उपन्यास हैं– इंदुलेखा, मार्तंड वर्मा आदि। मुख्य साहित्यकार हैं–केशवदेव, तकषी, ऊरोब, पोट्टकाट, वैक्कम, वासुदेवन नायर, कुमारन आशान, विजयन आदि। इन साहित्यकारों द्वारा मलयालम गद्य साहित्य (नाटक, उपन्यास, कहानी, एकांकी आदि) की बहुत उन्नति हुई।

संस्कृति

केरल की कला और उसकी सांस्कृतिक परंपराएँ सदियों पुरानी हैं। केरल के सांस्कृतिक जीवन में महत्वपूर्ण योगदान देने वाले कलारूपों में लोक कलाओं और मंदिर कलाओं से लेकर आधुनिक कलारूपों तक की भूमिका उल्लेखनीय है।

केरल प्राचीन काल से ही एक विशिष्ट सांस्कृतिक क्षेत्र के रूप में रहा है। इसकी विरासत शताब्दियों पुरानी है। केरल में सबका निर्माण तचुशास्त्र के अनुसार किया गया था। यहाँ स्थापत्य शैली में निर्मित विशिष्ट मंदिरों को देख सकते हैं।

मलयालम सिनेमा भारतीय सिनेमा के सबसे मजबूत स्तंभों में से एक है। केरल में पहला सिनेमा कोषिक्कोड में 1906 में दिखाया गया था। केरल का मुख्य भोजन चावल है। केरल की पाक कला में अमूमन भात की प्रधानता होती है। चावल, नारियल और मछलियाँ भोजन के मुख्य आधार हैं।

केरल के जीवन की संपूर्ण छटा यहाँ के त्योहारों में हैं। ये त्योहार धार्मिक और उपासना स्थलों से जुड़े होते हैं और साथ ही उसमें धर्मनिरपेक्षिता भी होती है। ओणम केरल का राजकीय त्योहार है। कलरिपयट्ट केरल में विकसित मार्शल आर्ट है। देश में सबसे अधिक साक्षरता वाला राज्य केरल है। यह राज्य सबके लिए स्वास्थ्य शिक्षा के मानकों पर अव्वल है। विकास के अत्यंत सराहनीय केरल मॉडल के पास ये विशिष्ट खूबियाँ आधारभूत रूप में हैं।

यदि हम सदियों में पनपे किसी साहित्य के इतिहास की परख करें तो उनमें कई तरह के उतार–चढ़ाव और विफलता–प्रभावहीनता के बीच फलवत्ता एवं प्राणवत्ता की झलक मिलेगी। प्रगति निरंतर एक सीध में नहीं होती क्योंकि विकास और विघटन की अवधि बदलती रहती है; मलयालम साहित्य भी इस नियम का अपवाद नहीं है।

❑❑❑

रघुवीर सहाय का हिंदी चिंतन

अमिय कुमार साहु

रघुवीर सहाय बीसवीं सदी के महान साहित्यकारों में से एक हैं। किसी साहित्यकार की महानता इस बात पर निर्भर करती है कि वह पूरे के पूरे जीवन को कितनी सूक्ष्मता से समझ पाया है और उसे कितनी विधाओं में उकेर पाया है। महानता की दूसरी शर्त यह भी हो सकती है कि वह अपने जीवन के कितने समय साहित्य को समर्पित कर पाया है। इन मायनों में रघुवीर सहाय की लेखनी महानता के शीर्ष को छूती हुई दिखती है। रघुवीर सहाय ने लगभग पचास सालों तक लेखनी चलाई है और साहित्य की हर विधा को अपनी लेखनी का माध्यम बनाया है। यद्यपि एक कवि के रूप में उन्होंने हिंदी साहित्य में एक गहरी छाप छोड़ी है, तथापि कहानी, निबंध, नाटक, स्तंभ–लेखन आदि हर विधाओं में महारत हासिल की है। एक पत्रकार और एक सजग, स्वतंत्र चिंतक के रूप में उनका हिंदी भाषा–चिंतन; तर्कसंगत, यथार्थपरक, अनोखा और बेबाकी से ओतप्रोत है, जो हिंदी भाषाप्रेमी को आत्ममंथन के लिए मजबूर कर देता है। रघुवीर सहाय के हिंदी भाषा–चिंतन के कुछ पहलुओं को आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

अंग्रेजी बनाम हिंदी : मौलिकता का प्रश्न

स्वाधीनता प्राप्ति से लेकर आज तक प्रांतीय भाषा का प्रश्न, दक्षिण का हिंदी विरोध, उर्दू का स्थान जैसे मसलों के पीछे छुपे हुए भारत के तथाकथित चिंतक, स्वाधीनता संग्राम की भाषा हिंदी को दरकिनार कर अंग्रेजी के प्रयोग को तर्कसंगत मानते आ रहे हैं। हिंदी हमारी राजभाषा होने के बावजूद, अपना सही हक न पाकर अंग्रेजी की पिछलग्गू और अनुवाद की भाषा बनकर रह गई है। रघुवीर सहाय ने अपनी लेखनी में इन समस्याओं को बड़ी बेबाकी से उठाने की कोशिश की है और हिंदी की स्थिति को हमारी दास मनोवृत्ति का परिणाम माना है। विभिन्न कार्यालयों में, विभिन्न सार्वजनिक जगहों पर हिंदी में लिखे विज्ञापनों को देखकर वे कहते हैं–"अपनी दास मनोवृत्ति से वह दास–अनुवाद करता है, स्वतंत्र लेखन नहीं"।

इसको प्रमाणित करते हुए वे सार्वजनिक परिवहनों पर लिखे हुए कुछ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं–

1. कृपया दिए गए भाड़े के बदले टिकट अवश्य प्राप्त कीजिए
2. मध्यम रोशनी से जलाइए

क्या हिंदी भाषा बोलने वाला एक सभ्य व्यक्ति इस तरह की हिंदी का प्रयोग कर सकता है! हिंदी भाषा की सही समझ रखने वाला व्यक्ति इस तरह की भाषा का प्रयोग कतई नहीं कर सकता। क्योंकि यह मौलिक हिंदी नहीं, दासता की हिंदी है; अनुवाद की हिंदी है। इसके प्रति रोष प्रकट करते हुए रघुवीर सहाय लिखते हैं "यदि उसे स्वतंत्र भाव से अपनी भाषा का प्रयोग करने को मिलता तो वह हिज्जे की गलतियाँ भले उतनी ही करता जितनी अभी करता है,

मगर मूर्ख की भाँति ऐसा कोई वाक्य नहीं लिखता जिसका अर्थ कुछ नहीं हो, या जो कहना है उससे कुछ और हो।"

रघुवीर सहाय अंग्रेजी की बढ़ती संस्कृति के प्रभाव का विरोध नहीं कर रहे हैं, वे अपनी भाषा में मौलिक लेखन की संस्कृति को बढ़ावा देने की बात कर रहे हैं। किसी भी भाषा को बढ़ावा देने के लिए किसी दूसरी भाषा का विरोध करना जरूरी नहीं है। हिंदी के लिए अंग्रेजी का विरोध करना जरूरी नहीं है; हिंदी को अंग्रेजी की जगह लेने की कोई जरूरत नहीं है; हिंदी को अपनी जगह खुद बनाने की जरूरत है। क्योंकि किसी भाषा का अंधाधुंध विरोध करना अपनी हीन भावना को प्रकट करना होता है। वे अपना रोष प्रकट करते हुए कहते हैं "हिंदी का प्रयोग सरकारी कामों में करना एक खानापूरी क्यों समझा जा रहा है? जनता की अपनी भाषा में जनता के सेवक सरकारी कर्मचारी क्यों नहीं सोचते और लिखते?" भाषा की मौलिकता और वाक्यों का स्वाभाविक विन्यास ही हिंदी को आगे लेकर चल सकता है, जिससे हिंदी को अपनी जगह बनाने में आसानी होगी।

राजभाषा, जनभाषा : कौन सी हिंदी?

हिंदी को राजभाषा बनते इतने साल होने के बाद भी यह सवाल जस का तस है कि क्या हिंदी राजभाषा बनकर अपनी कुछ उन्नति कर पाई है? या इसने स्वतः विकसित होकर जनभाषा का रूप ले लिया है। यह सवाल भी है कि क्या हमने राजभाषा हिंदी और जनभाषा हिंदी को आपस में लड़ा दिया है?

रघुवीर सहाय किसी भी भाषा की अंध पूजा के पक्ष में नहीं दिखते। राजभाषा की अंध पूजा भी एक तरह से हिंदी को अंग्रेजी बना देने के समान है और यह हिंदी को जनभाषा में बदलने से रोकने जैसा है। उनका मानना है कि "भाषा के ठेकेदार, जो अंग्रेजी की जगह, ठीक उसी तरह, उसी जगह हिंदी की प्रतिष्ठा करना चाहते हैं ताकि हिंदी भी एक तरह अंग्रेजी बन जाए। जो अंग्रेजी और हिंदी को साथ–साथ बनाए रखना चाहते हैं ताकि एक राजभाषा और दूसरी सह–राजभाषा रहे ताकि एक जनभाषा हिंदी कभी राजभाषा न हो जाए, ताकि जब हिंदी राजभाषा हो भी तो वह जनभाषा न हो सके।"

राजभाषा और जनभाषा की दूरी को मिटाने से हिंदी की प्रगति संभव है। यह दूरी तभी मिट सकती है जब भाषा पर सत्ता का हस्तक्षेप बंद हो। सत्ताश्रित भाषा के जो रूप हैं, उससे अलग भाषा के भी बहुत रूप हैं। इन रूपों को स्वीकार करना और सत्ताश्रित रूपों के साथ इसको एकमेक करने से ही भाषा के व्यवधान मिट सकते हैं और सह–जनभाषा का विकास हो सकता है। रघुवीर सहाय साहित्यिक भाषा को सत्ता से इतर भाषा का उदाहरण मानते हुए लिखते हैं "हिंदी में आधुनिक साहित्य ने बहुत बड़ी जमीन तोड़ी है और एक ऐसे बंजर में जहाँ राजभाषा की नहर का पानी बिल्कुल नहीं पहुँचता, हरियाली पैदा की है। उस साहित्य की भाषा में दास हिंदी की अनुवाद की प्रक्रिया में जड़ हो गए शब्दों को नए अर्थ देने की छटपटाहट है लेकिन क्यों यह छटपटाहट ही महत्वपूर्ण मानी जाए और क्यों न ऐसी एक परिस्थिति की कल्पना की जाए जिसमें सामान्यजन की प्रतिभा का मैत्री भाव से प्रस्फुटन होने से अनेकानेक एकदम नई और अभी तक अनजानी संभावनाएँ रचनात्मक मन में उत्पन्न होती हों। "भाषा की यही नई संभावनाएँ जनभाषा और सत्ता की

भाषा–राजभाषा के बीच टकराव न होने से ही पैदा हो सकती है और भाषा को विकसित कर समृद्ध बना सकती है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि राजभाषा और जनभाषा का टकराव बेमानी है; जिस दिन इनके अंतर को खत्म करने की कोशिश की जाएगी, तब हिंदी एक नई ऊर्जा के साथ अग्रसित होकर जन की भाषा बन जाएगी।

हिंदी प्रेमियों की असहिष्णुता और भारतीय भाषाएँ

किसी भी भाषा का विकास उसके आत्मसात होने की शक्ति पर निर्भर करता है। अगर कोई भी भाषा अपने बहाव को रोक दें; यह कहकर कि हमारी भाषा इतनी समृद्ध है कि हमें दूसरे से कुछ ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है तो यह अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारने जैसा है। इस बात से भाषा का रुक जाना और समय के साथ साथ विलुप्त हो जाना स्वाभाविक है। इतिहास साक्षी है कि जब–जब हमने किसी भाषा को जाति, धर्म, खंड, प्रांत में बांधने की कोशिश की है तब–तब या तो वह भाषा विलुप्त हो गई है या एक मृतप्राय भाषा बनकर रह गई है। क्या यह सब हिंदी के साथ भी हो रहा है? क्या हम हिंदी प्रेम के नाम पर दूसरी भाषाओं को नीचता की दृष्टि से देखते हैं? क्या भारत के कुछ प्रांतों का हिंदी विरोध इसी का परिणाम है? इसमें कोई दो राय नहीं है कि भारत में भाषाओं के बीच का यह द्वंद्व हिंदी प्रेमियों का अन्य भाषा के प्रति असहिष्णुता का ही परिणाम है। रघुवीर सहाय जी कहते हैं "पहली चीज तो अक्सर सोचने को बाध्य करती है कि उस विशेष हिंदी प्रेमी का व्यवहार है जो अपने को हिंदी का इतना प्रेमी समझता है कि अपने ज्ञान को ही हिंदी और अपने विचारों को ही राष्ट्र समझने लगता है। राष्ट्रीयता, राष्ट्रप्रेम उसके लिए हिंदी और हिंदी प्रेम के अतिरिक्त कुछ नहीं है। यह कहना उसके साथ अन्याय करना न होगा कि वह बहुत हद तक देश की बाकी सब भाषाओं के प्रति असहिष्णु है"। रघुवीर सहाय का कहना है कि सिर्फ हिंदी से प्रेम करना ही राष्ट्रभक्ति नहीं है; राष्ट्रभक्ति इनसे कहीं बढ़कर है। राष्ट्र की परिकल्पना सिर्फ एक भाषा और एक समुदाय क्षेत्र का विषय नहीं हो सकता, किसी एक भाषा, एक समुदाय, एक क्षेत्र से प्यार राष्ट्रीयता नहीं हो सकती। इसमें समग्रता, समावेश की भावना की आवश्यकता है।

हिंदी प्रेमियों में इन चीजों का अभाव देखकर रघुवीर सहाय कहते हैं "उसने संविधान के स्वीकृत होने से लेकर अब तक हिंदी के विकास में क्या योगदान दिया है, यह तो बाद में पूछा जाएगा, पहले तो उससे यही पूछा जा सकता है कि अन्य भाषाओं के लिए उसने क्या किया है।"आगे रघुवीर सहाय एक ऐसे हिंदीप्रेमी का उदाहरण देते हैं जो रेडियो में प्रसारित होने वाले मद्रासी संगीत को लेकर अपनी नाराजगी व्यक्त करते हैं। ऐसे लोगों को आड़े हाथ लेते हुए रघुवीर सहाय कहते हैं "क्या हिंदीभाषी सचमुच इतना असहिष्णु है? और क्या वे यह नहीं देख पाते कि जिस भारतीय एकता के धार्मिक सूत्र की वह अक्सर दुहाई देते हैं, उसीके यथार्थ को स्वीकार करने में 'बोर' हो रहे हैं? ऐसे लोगों से हिंदी के लिए भविष्य में खतरा ही है– उस भविष्य की बात कर रहा हूँ जिसमें कभी अन्य भाषाभाषी हिंदी सीख कर अपनी–अपनी भाषाओं के संस्कार हिंदी में लाएंगे।"हिंदी भाषियों की असहिष्णुता का

दूसरा रूप त्रिभाषा–सूत्र का ठीक से लागू नहीं हो पाना भी है। रघुवीर सहाय के अनुसार "मद्रास जैसे राज्यों का हिंदी विरोध के पीछे यह भी एक कारण है। स्कूलों में तीन भाषाएँ– मातृभाषा, हिंदी और अंग्रेजी पढ़ाने की योजना आज भी सब जगह एक ढंग से लागू नहीं हो पा रही है, उसका मुख्य कारण उत्तर भारत के राज्यों की;जिनमें हिंदी की मातृभाषा होने के कारण एक अन्य भाषा पढ़ाने की प्रस्तावना की गई है, वह भाषा न पढ़ाने की असमर्थता है। मद्रास राज्य ने शायद इसी की प्रतिक्रिया में हिंदी पढ़ना बंद तो नहीं किया पर हिंदी की परीक्षा का नंबर परीक्षाफल विचारते समय न जोड़ने का निर्णय किया था।"रघुवीर सहाय हिंदी भाषा के विकास में बाधा के रूप में हिंदी प्रेमियों की दूसरी भाषाओं के प्रति असहिष्णुता को एक बड़ा कारण मानते हैं। अतः हिंदी भाषाभाषी क्षेत्रों के लोगों को, अन्य भाषाभाषी क्षेत्रों के लोगों की तरह सहिष्णु होकर अन्य भाषा को भी सम्मान देना होगा तभी जाकर हिंदी के विकास का रास्ता प्रशस्त हो सकता है।

साहित्यकार का धंधा और हिंदी का विकास मंदा

किसी भी भाषा के सर्वांगीण विकास का आधार उसके सभी रूपों को बिना किसी संकोच के ग्रहण करने में है। भाषा में भी हिंदूवादी जाति ढूँढ़ने का प्रयास भाषा को कमजोर करना ही माना जाएगा। हिंदी के अनेक रूप हैं– साहित्यिक हिंदी, अखबारी हिंदी, रेडियो की हिंदी, मंचीय हिंदी और अलग–अलग प्रांतों में अलग–अलग तरह से बोली जाने वाली हिंदी। क्या हम इस जातिवादी मानसिकता से ऊपर उठ पाए हैं कि हम किसी को श्रेष्ठ और किसी को नीचता की दृष्टि से देखना बंद कर दें। ऐसा नहीं लगता कि हम हिंदी के सभी रूपों को एक ही नजर से देख पा रहे हैं। टीवी, रेडियो, मंचीय हिंदी को हमारे साहित्यकार और राजभाषा को पूजने वाले सरकारी कर्मचारी, स्वीकार नहीं करते और उन्हें नकार देते हैं। रघुवीर सहाय इस सोच को नकारते हुए कहते हैं "भाषा को ठाकुर और साहित्य को मंदिर तथा सरकार को पुजारी मानकर चलने में सबसे बड़ी क्षति भाषाई पेशों की हुई है– रेडियो, अखबार, शायद अध्यापन भी इसके अच्छे दृष्टांत हैं।बहुत कम, बहुत ही कम हिंदी साहित्यकारों ने पिछले वर्षों में इन माध्यमों की अपनी श्रेष्ठता को स्वीकार किया है और इनमें कुछ दक्षता प्राप्त करने को अपनी साहित्यिक गरिमा के प्रतिकूल नहीं माना।"

भाषा के अनेक रूप और शिल्प हैं। अगर हम इसमें भी वर्णव्यवस्था लागू कर किसी को ब्राह्मण और किसी को शूद्र घोषित कर अपने साहित्यिक ब्राह्मण होने पर इतराते हुए दूसरों के शिल्पगत रूपों को नकारते रहे तो यह हमारा ओछापन और घटियापन ही कहा जाएगा और हम अपने ही पसंदीदा रूप को चमकाने के धंधे में हिंदी भाषा के विकास को मंदा करने के जिम्मेदार माने जाएँगे। हिंदी साहित्यकार अगर अपने पसंदीदा शिल्प की वाहवाही की ठेकेदारी बंद कर सभी रूपों को स्वीकार करें, तो हिंदी के विकास में सहायक सिद्ध होंगे और तभी वे हिंदी के शुभचिंतक माने जा सकते हैं।

भाषा की मृत्यु और हिंदी

मृत्यु से सबको डर लगता है और भाषा की मृत्यु हो, यह तो बहुत ही डरावनी चीज है। क्योंकि 'एक भाषा का अंत एक

संस्कृति का अंत है'। भाषा का संरक्षण बहुत ही जरूरी है– खासकर संस्कृति की भाषा का, कार्य करने की संस्कृति की भाषा का, बोलचाल की संस्कृति की भाषा का,हर तरह के शिल्पगत संस्कृति की भाषा का। संरक्षण का मतलब इसे बंद अलमारी में रखना नहीं है; संरक्षण का अर्थ है उसके प्रवाह को जारी रखना, आदान–प्रदान को सतत तौर पर जारी रखना है; "अब तो बैंक कहूँगा जिसे आप देते हैं, जहाँ से आप लेते हैं और उसकी वृद्धि करते हैं और जो सभी के लिए होता है। भाषा नदी है जिसका प्रवाह जारी रहता है। कभी–कभी ऐसा प्रतीत होता है कि नदी का प्रवाह रुके, उसका उपयोग न हो, तब उसमें गंदगी बढ़ जाती है."।

हिंदी का प्रवाह तभी जारी रह सकता है जब हम भाषा की ठेकेदारी को बंद कर दें; इसे वर्ण व्यवस्था में न बाँधे; सभी सहित्यिक शिल्प को एक ही नजर से देखें; अन्य भाषाओं से कुछ न कुछ ग्रहण करने की इच्छाशक्ति को विकसित करें; भाषा की अंधपूजा से बचें; भाषा को अनुवाद के बंधन से मुक्त कर दें; दूसरी भाषा के प्रति सहिष्णु आचरण करें; राजभाषा में जनभाषा को भी स्थान दें। हिंदी भाषा का भविष्य उज्ज्वल है; बस अपना आचरण बदलने की जरूरत है।

❑❑❑

शताब्दी वर्ष के बहाने 'पुष्प की अभिलाषा' का पुनर्पाठ

धर्मेंद्र प्रताप सिंह

हिंदी साहित्य के लोकप्रिय कवियों में माखनलाल चतुर्वेदी का अन्यतम स्थान है। द्विवेदी युग और छायावाद युग से वे अपनी रचनात्मक यात्रा आरंभ करते हुए आधुनिक हिंदी कविता की राष्ट्रीय–सांस्कृतिक धारा के प्रमुख स्तंभ के रूप में स्थापित होते हैं। साहित्यकार के अतिरिक्त स्वतंत्रता–संग्राम को धार देने वाले एक महत्वपूर्ण सेनानी के तौर पर भी इनकी प्रतिष्ठा है। इनकी कविताओं ने स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान लाखों युवाओं को अंग्रेजी शासन की गुलामी से मुक्ति हेतु न केवल जागरूक किया बल्कि स्वाधीनता आंदोलन के महानायक महात्मा गांधी के नेतृत्व में अपना सर्वस्व न्यौछावर करने हेतु प्रेरित भी किया। लोकमान्य तिलक के 'आज़ादी हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' संकल्प से अभिभूत होकर माखनलाल आजीवन देश के प्रति समर्पित रहे। राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने की प्रेरणा इन्हें गणेश शंकर विद्यार्थी से मिली। राष्ट्रीय आंदोलन, साहित्य–लेखन और पत्रकारिता में पूरी निष्ठा से समर्पित माखनलाल में लोकमान्य तिलक की ओजस्विता एवं महात्मा गांधी के अहिंसक प्रतिरोध व सत्याग्रह का अनोखा सम्मिश्रण मिलता है। वे सरस्वती के ऐसे अमरसाधक हैं जिनकी रचनाएँ भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्रगौरव से अनुप्राणित हैं।

कविता में राष्ट्रीयधारा के जनक एवं पोषक माखनलाल की कविताओं का मूल कलेवर राष्ट्रीयता है।[1] राष्ट्रवादी पत्रकारिता से उनके साहित्यिक जीवन की शुरुआत होती है। राष्ट्रीय भावनाओं पर आधारित इनकी रचनाओं में सर्वत्र त्याग, बलिदान और कर्तव्य के भाव विद्यमान हैं। ब्रिटिश साम्राज्यवाद से उत्पन्न अत्याचारों के विरोध में प्रेरणा, हुंकार, प्रताड़ना और उद्बोधन के द्वारा इन्होंने भारतीय जनता की सुप्त चेतना को जगाने का साहसिक कार्य किया। बलि–भावना माखनलाल के राष्ट्रीय–काव्य का प्राण है।[2] राष्ट्रनिर्माण हेतु त्याग और बलिदान का संदेश देते हुए मानवता के प्रति करुणा जगाना ही इनका आजीवन लक्ष्य रहा।

1913 में माखनलाल मासिक पत्रिका 'प्रभा' के संपादक नियुक्त हुए। इसी वर्ष इन्होंने अध्यापक की नौकरी छोड़कर पूर्ण रूप से पत्रकारिता, साहित्य और राष्ट्र की सेवा में समर्पित होने का निर्णय लिया। पत्रकारिता के कारण इनकी गणेशशंकर विद्यार्थी से मित्रता हुई और 1916 में लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन में मैथिलीशरण गुप्त तथा महात्मा गांधी से मुलाकात हुई। 1919 में जबलपुर से 'कर्मवीर' का प्रकाशन माखनलाल के संपादन में आरंभ हुआ और 1924 में जब गणेशशंकर विद्यार्थी की गिरफ़्तारी हुई तब 'प्रताप' के संपादन का कार्यभार भी इन्हीं के कंधों पर आ पड़ा। निडरता, साहस व उत्कृष्ट पत्रकारिता का परिचय देते हुए इन्होंने अपने समय की

महत्त्वपूर्ण आवाज बनने वाली इन तीनों पत्रिकाओं का कुशलतापूर्वक संपादन किया।

पत्रकारिता, साहित्यिक रचनाएं और व्याख्यान एवं अभिभाषण माखनलाल के रचना–संसार के तीन प्रमुख आयाम हैं। इनके समग्र मेल से ही माखनलाल के पत्रकार, साहित्यकार, स्वतंत्रता सेनानी और सर्वाधिक महत्वपूर्ण करुणामयी व्यक्तित्व की निर्मिती होती है। इनकी प्रमुख साहित्यिक रचनाएँ–काव्यःधूम्रवलय(1919), हिमकिरीटिनी (1943), हिमतरंगिणी (1949), माता (1951), समर्पण (1956), युगचरण (1956), वेणु लो गूंजे धरा (1960), मरण ज्वार (1963), बिजुरी काजर आज रही (1964); नाटक : कृष्णार्जुन–युद्ध (1918); निबंध : साहित्य देवता (1943), अमीर इरादे–गरीब इरादे (1960), समय के पाँव (1962), चिंतक की लाचारी (1963), रंगों की बोली (1982); कहानी संग्रह : कला का अनुवाद (1954) आदि हैं। उनकी पहली रचना 'रसिक मित्र' ब्रजभाषा में प्रकाशित हुई थी। आरंभिक रचनाओं में संस्कारजन्य भक्ति की प्रधानता है तो आध्यात्मिक भावों से युक्त कविताओं में छायावादी शिल्प की छाया मौजूद है। राष्ट्र हेतु समर्पण की सामूहिक चेतना की भावभूमि आंतरिक लय की तरह उनकी रचनाओं में प्रवाहित होती है।

1927 में माखनलाल संपादक सम्मेलन के अध्यक्ष तो 1943 में हिंदी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। 1943 में हिंदी का 'देव पुरस्कार' उन्हें 'हिमकिरीटिनी' हेतु प्रदान किया गया। उनकी कालजयी रचना 'हिमतरंगिणी' हेतु उन्हें 1955 में हिंदी के पहले 'साहित्य अकादेमी पुरस्कार' से नवाजा गया। 1963 में इनकी अमूल्य सेवाओं व राष्ट्र तथा समाज के प्रति निःस्वार्थ समर्पण–भावना को दृष्टिगत रखते हुए भारत सरकार ने 'पद्मभूषण' से सम्मानित किया। सागर विश्वविद्यालय ने देशभक्तिपूर्ण काव्यरचना हेतु इन्हें डी.लिट. की मानद उपाधि प्रदान की।

12 मार्च 1921 को बिलासपुर के प्रांतीय सम्मेलन में शहर के शनिचरी बाजार के एक मंच से माखनलाल ने अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ जबरदस्त भाषण दिया। अंग्रेजों की जड़ें उखाड़ फेंकने की दृष्टि से इस भाषण ने लोगों में एक नई ऊर्जा का संचार किया। अंग्रेजों को यह भाषण रास नहीं आया और माखनलाल को देशद्रोही ठहराते हुए 12 मई 1921 को जबलपुर से गिरफ्तार कर लिया गया।[3]गुलामी के अंधकार में डूबे देश को स्वतंत्र कराने की लहर पूरे देश में दौड़ चली। ऐसे कठिन समय में भी माखनलाल की रचनात्मकता स्वतंत्रता आंदोलन को नया आकार दे रही थी। यह महान राष्ट्रभक्त अपनी ओजस्वी कविताओं के द्वारा लोगों में आजादी की अलख जगाने के कार्य में संलग्न था। जेल की चार दीवारियों के बीच अपने कवित्व को जिंदा रखते हुए उन्होंने राष्ट्रभक्ति से ओतप्रोत अनेक कविताएं लिखीं, जिनमें 'पूरी नहीं सुनोगे तान', 'पर्वत की अभिलाषा' और उस दौर के आजादी के दीवानों की कहानी कहती 'पुष्प की अभिलाषा' प्रमुख है।[4]

'पुष्प की अभिलाषा' कविता 'युगचरण' नामक काव्य–संग्रह में संकलित है। इस कविता के माध्यम से कवि देश के प्रति समर्पित होने का संदेश देता है। सूचना और तकनीक के इस आधुनिक दौर में भी यह कविता सौ वर्ष बीत जाने के बाद भी न केवल लोक–स्मृति में जीवित है बल्कि देश के मानस पटल पर इसकी अनुगूंज आज भी सुनाई देती है। परतंत्रता के दिनों में अंग्रेजों के खिलाफ देश को लामबंद कर

राष्ट्रीय मूल्यों का जज्बा जगाने हेतु उनकी यह कविता आग की तरह फैलती गई। जेल में अस्त्र के रूप में उनके पास केवल शब्द थे। उनके देश–प्रेमी मन से कविता आजादी के अमृत मंत्र की तरह फूटी, जिसे गणेश शंकर विद्यार्थी ने अपने अख़बार के मुखपृष्ठ पर प्रकाशित किया। विषय, भाव और शिल्प से संपन्न इस कविता का जादू ऐसा था कि वैदिक मंत्रों की भांति यह लोगों की जिह्वा पर चढ़कर स्मृति में कंठस्थ हो गई। जेल के गर्भ से निकली यह कविता उस दौर के क्रांतिकारियों में ऊर्जा का तीव्र संचरण करने में सफल रही।

आजाद भारत की संकल्पना को साकार करने में वैचारिक क्रांतियों का अहम योगदान रहा है। सत्याग्रही के तौर पर साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से राष्ट्रप्रेम का अलख जगाया। बिलासपुर की सेंट्रल जेल भी राष्ट्रकवि माखनलाल की अमर वैचारिक क्रांति की साक्षी बनी। इस दौर में अंग्रेजों के शोषण के खिलाफ देश मुखर हो रहा था। आजाद भारत के लिए जंग निर्णायक बढ़त ले रही थी। इससे डरकर अंग्रेजों ने देशभर के आंदोलनकारियों को जेल में बंद करना शुरू कर दिया। लेकिन जेल के अंदर भी अंग्रेजी हुकूमत माँ भारती के वीर सपूतों के हौंसलों को डिगा न सकी और जेल के अंदर से ही ब्रितानी हुकूमत के खिलाफ क्रांति की शुरुआत हो गई।

'पुष्प की अभिलाषा' में 'पुष्प' देश के सैनिकों की इच्छाओं का प्रतीक है। इस प्रतीक के भीतर अर्थ की अनेक परतें हैं। पुष्प के माध्यम से कवि देश पर बलिदान होने के लिए सदैव तत्पर रहने की बात करता है[5] और देशभक्त सैनिकों को श्रद्धांजलि देते हुए उन्हें सर्वोपरि बताता है। पुष्प कहता है कि यद्यपि वह संसार के सौंदर्य को महत्व देता है परंतु वह सुंदरता के प्रभाव से प्रभावित नहीं है। पुष्प ऐश्वर्य और शक्ति से भी प्रभावित नहीं है। वह कहता है कि मेरी बिल्कुल इच्छा नहीं है कि मैं किसी अप्सरा के शरीर पर गहनों के रूप में स्थान पाऊँ। यद्यपि इसमें अप्सरा के रूप सौंदर्य के साथ मेरी भी प्रशंसा होगी। परंतु मेरी इच्छा किसी प्रेमी की माला में जगह पाने की नहीं है जिसे देखकर प्रेमिका का हृदय ललचा उठे –

"चाह नहीं, मैं सुरबाला के
गहनों में गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं प्रेमी–माला में
बिंध प्यारी को ललचाऊँ,"[6]

पुष्प मानता है कि यद्यपि इसमें भी मेरे सौंदर्य का ही मान बढ़ेगा। परंतु हे ईश्वर! मेरी चाह बड़े–बड़े सम्राटों के पार्थिव शरीर की गरिमा बढ़ाने की भी नहीं है। इतना ही नहीं, मेरी इच्छा तो यह भी नहीं है कि मैं देवताओं के सिर पर चढ़ाया जाऊँ और यह बात सोचकर अपने भाग्य पर गर्व करूँ कि मैं कितना महत्वपूर्ण हूँ कि मुझे देवताओं के सिर पर स्थान मिला है –

चाह नहीं सम्राटों के शव पर
हे हरि डाला जाऊँ,
चाह नहीं देवों के सिर पर
चढ़ूँ भाग्य पर इठलाऊँ,"[7]

पुनः माली को संबोधित करते हुए पुष्प कहता है कि वह स्वयं को भाग्यशाली तभी समझेगा जब उसे मातृभूमि की रक्षा हेतु जाने वाले सैनिकों के रास्ते में डाला जाएगा। वह अनुरोध करता है कि हे माली! मेरी इच्छा है कि तुम मुझे तोड़कर उस रास्ते पर फेंक देना जिस रास्ते देश के सैनिक मातृभूमि की रक्षा के लिए युद्ध

करने जा रहे हों। उनके पैरों के नीचे पड़कर भी मैं इतना अधिक गौरव की अनुभूति करूँगा जितना कि पहले बताई गई किसी भी स्थिति में मुझे नहीं होगी–

"मुझे तोड़ देना वनमाली!
उस पथ में देना तुम फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने,
जिस पथ जावें, वीर अनेक।"[8]

पुष्प के माध्यम से कवि यह प्रस्तावित करता है कि व्यक्ति के अपने निजी स्वार्थों की अपेक्षा देशहित सबसे ऊपर है। फूल देवकन्या के गहनों में, प्रेमी की माला में गुंथने को अच्छा नहीं समझता। वह सम्राटों के शवों अथवा देवताओं के सिरों पर भी नहीं चढ़ाया जाना चाहता है। वह तो उस रास्ते पर फेंका दिया जाना पसंद करेगा, जहाँ से मातृभूमि की रक्षा हेतु बलिदान देने वीर जाते हैं। फूल अपना कल्याण करने के स्थान पर देश पर बलिदान देने वालों पर न्यौछावर होकर हमें यह संदेश देता है कि अपना हित साधने की अपेक्षा देशहित का ध्यान रखना चाहिए। यह छोटी–सी कविता देशप्रेमियों के लिए इसलिए भी प्रेरणास्रोत रही है क्योंकि इसमें राष्ट्रीय–भावना अपनी बहुविध छवियों के साथ प्रकट होती है। राष्ट्रहित व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर है। ऐसी स्थिति में व्यक्तिगत स्वार्थ के स्थान पर हमें राष्ट्रहित का चुनाव करना चाहिए क्योंकि राष्ट्र के हित में ही हम सबका कल्याण है। राष्ट्र यदि खुशहाल होगा तो हमारा जीवन भी सुखी होगा। राष्ट्र की सुरक्षा में ही हमारी सुरक्षा है। राष्ट्र है तो हम हैं, राष्ट्र नहीं होगा तो हम भी नहीं रहेंगे। इसलिए व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर राष्ट्रहित होना चाहिए। हमें अपने स्वार्थों को पूरा करने हेतु गलत कार्य नहीं करना चाहिए। देश की उन्नति के लिए हमें ईमानदारी से अपना कार्य करते रहना चाहिए। अपने अधिकारों–कर्तव्यों का पालन करते हुए देश के विकास में योगदान देते रहना चाहिए। अनुशासित राष्ट्र उन्नत होता है, इसलिए हमें स्वयं अनुशासन का पालन करते हुए दूसरों को भी अनुशासित करना चाहिए।

कवि प्रतीक के रूप में 'पुष्प' इसलिए चुनता है क्योंकि जिस प्रकार पुष्प का जीवन लोगों की प्रसन्नता के लिए समर्पित होता है, उसी प्रकार एक सैनिक का जीवन भी देशवासियों की सुरक्षा के लिए समर्पित होता है। पुष्प को प्रतीक बनाकर रची गई यह कविता राष्ट्रभक्ति का वह सुंदर प्रयोग है, जिसमें आत्मोत्सर्ग का भाव प्रमुख है। 'उनके काव्य में बलि का जितना आग्रह है, प्राणोत्सर्ग करने की जितनी आकुल पुकार है तथा राष्ट्र के यज्ञ में, जीवन की समिधा अर्पित करने का जो उद्घोष है, वैसा संभवतः हिंदी के किसी अन्य कवि के काव्य में नहीं है। बलिदान की कामना उनके काव्य का मूल स्वर है, केंद्रबिंदु है।'[9] पुष्प का संसार इतना व्यापक है कि वह उस वीर, पराक्रमी और देश के लिए मर–मिटने वाले जवानों के कदमों में बिछ जाने की मंशा जाहिर करता है ताकि उसका जीवन सार्थक हो सके। पुष्प की यह चाहत हर भारतीय की चाहत होनी चाहिए, अपने राष्ट्र के लिए सर्वस्व स्वाहा करने वाली। पुष्प को आधार बनाकर राष्ट्रभक्ति का ऐसा अप्रतिम मानक गढ़ने का कार्य माखनलाल ही कर सकते थे। उनके रचनाकर्म की राष्ट्रीय–चेतना इसका प्रमाण है।

शब्द और संगीत के भीतरी संयोग से यह कविता सैनिकों के महत्व का प्रामाणिक पाठ प्रस्तुत करती है। छह से आठ पंक्तियों के छंद में बंधी इस कविता का अंतर्लय अर्थ की अनेक परतें खोलता है। आज़ादी

की पचहत्तरवीं वर्षगांठ पर सौ बरस पुरानी इस कविता का पुनर्पाठ किया जाना चाहिए। स्वाधीनता संग्राम की स्मृतियों के आलोक में यह कविता हमारे गौरवमय अतीत के प्रति स्वाभिमान जगाती है। यह कविता अपने आप में प्रमाण है कि मातृभूमि की लड़ाई बारूद उगलने वाले शस्त्रों से नहीं, मन कुरेदने वाले शब्द–अस्त्रों से भी लड़ी जा सकती है। इस कविता में कवि ने किसी देश का उल्लेख किए बिना ही मातृभूमि के लिए फर्ज़ अदायगी का पवित्र संदेश दिया है। आमतौर पर पुष्प का प्रयोग स्त्री सौंदर्य को बढ़ाने वाले प्रसाधन अथवा पूजा, प्रार्थना, शृंगार और प्रेम निवेदन जैसे अनेक कार्यों के लिए किया जाता है। लेकिन इस कविता में मानवीय भावों के आरोपण से पुष्प जीवन का प्रतीक बनकर उभरा है। पुष्प न केवल ऐहिक, क्षणिक और नश्वर सौंदर्य के प्रलोभन से बचना चाहता है बल्कि सौंदर्य प्रसाधन के रूप में वह अपने अस्तित्व की इति से भी मुक्त होना चाहता है। इन पारंपरिक संदर्भों से अलग वह अपने प्रयोग की सार्थकता ढूंढ़ता है और इसी नई सार्थकता को वरिष्ठ आलोचक कृष्णदत्त पालीवाल पारंपरिक रीतिवादी परिपाटी के विरोध के रूप में रेखांकित करते हैं–'पुष्प की अभिलाषा' मात्र राष्ट्रीय–भावधारा की अभिव्यक्ति नहीं है जैसा कि साहित्य के आलोचक लंबे समय से राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा के अंतर्गत समझाते रहे हैं। बल्कि देखा जाए तो यह कविता सच्चे अर्थों में प्रचलित विकृत रीतिवादी परिपाटी के खिलाफ एक नई क्रांति का भावकोष रचती है।"[10] यहाँ पुष्प परंपरागत प्रतीक के रूप में पहचाने जाने की बजाए किसी का सौंदर्य बढ़ाने, किसी के प्रेम का प्रतीक बनने, किसी की श्रद्धा अथवा भक्ति का रूप पाने के प्रति अपनी अनिच्छा प्रकट करता है। ऐसी परंपरागत रीतिवादी काव्य–प्रवृत्ति पर प्रहार करते हुए कवि पुष्प द्वारा देश के लिए बलिदान हो जाने में मनुष्य जीवन की सार्थकता को गहरे रूप में उद्घाटित करता है।

यह संयोग ही है कि स्वाधीनता के अमृत महोत्सव के बीच 'पुष्प की अभिलाषा' अपने रचे जाने का शताब्दी वर्ष मना रही है। हिंदी साहित्य के पन्नों में अनेक ऐसी कविताएं हैं जिन्हें आप कालजयी रचना की श्रेणी में रख सकते हैं। लेकिन 'पुष्प की अभिलाषा' उन सबसे इस अर्थ में भिन्न है कि इसकी रचना सामान्य परिस्थितियों में कवि की भावनाओं का प्रस्फुटन न होकर जेल की काल–कोठरी में हुई थी। माखनलाल को यह काल–कोठरी स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय होने की सजा के तौर पर मिली। लेकिन आजादी के दीवानों को भला कौन कैद कर सकता है, यह कविता इस बात की गवाही देती है। शरीर से वे जरूर अंग्रेजों के बंधक थे लेकिन मन में देशप्रेम के भाव को कुचलने में अंग्रेजी शासक नाकाम रहे। तमाम कोशिशों और अन्याय के बावजूद माखनलाल की कलम की यात्रा अनवरत जारी रही। यद्यपि इस बीच कई पीढ़ियाँ गुजर गईं। आज की पीढ़ी इस बात से अनजान है कि व्यक्ति से ऊपर परिवार, परिवार से ऊपर समाज और समाज से ऊपर राष्ट्र होता है। ऐसे में यह कविता आधुनिक पीढ़ी को राष्ट्रसेवा का एक जरूरी पाठ भी पढ़ाती है।

'पुष्प की अभिलाषा' की भाषा सरल, ओजपूर्ण और पौरुष से परिपूर्ण है। इसमें खड़ीबोली के बहुतायत शब्द भी हैं। माखनलाल की कविताओं में सामान्यतः बोलचाल में प्रयुक्त होने वाले सहज शब्दों

के साथ उर्दू–फारसी के शब्दों का भी प्रयोग मिलता है। इसीलिए इनकी भाषा में एक विशेष प्रकार की सरलता और मिठास का एहसास होता है। इन्होंने कविताओं में गति–शैली के साथ अभिधा शब्दशक्ति का प्रयोग किया है। वीर और श्रृंगार रस की छटा इनके काव्य के प्रेरक तत्व हैं। गेय पदों का सुंदर प्रयोग है। उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकारों का चमत्कारिक प्रयोग कविता की अर्थवत्ता को नया आयाम प्रदान करता है। कलात्मक भाव से परिपूर्ण कविताएँ कहीं–कहीं करुणा–भरी, दर्द में मनुहार करती हुई प्रतीत होती हैं। यह सरलता और सहजता ही वह मूल तत्व है जिससे माखनलाल की काव्यानुभूति का स्तर बहुत मर्मस्पर्शी बनता है। उनकी इस तकनीक ने उनके समकालीनों को भी बहुत प्रभावित किया। "काव्यानुभूति की बनावट में ही ऐसा जादू होता है कि वह रूप के अभिन्नत्व में प्रकट होती है। ऊपर से उनके कथन में सपाटबयानी, वितरण का आभास होता है पर गहराई में वक्रोक्ति और व्यंजना ने अर्थ–सामंजस्य की निष्पत्ति की है।"[11]

काव्यभाषा के स्तर पर आलोचक माखनलाल की भाषा–शैली पर बेडौल होने का आरोप मढ़ते हैं। उनका मानना है कि माखनलाल की काव्यभाषा में व्याकरण की त्रुटियाँ हैं। कहीं कठोर संस्कृत शब्दावली है तो कहीं ठेठ स्थानीय शब्दों की भरमार। इससे एक प्रकार की भाषिक असहजता उत्पन्न होती है। किंतु यह भी एक तथ्य है कि अपनी भावाभिव्यक्ति को हर प्रकार से संप्रेषणीय बनाने के उद्‌देश्य से रचनाकार भाषा के अनेक रूपों का बखूबी प्रयोग करता है। संभवतः इसी कारण वे कहीं–कहीं व्याकरणिक नियमों को तोड़ने का खतरा भी मोल ले लेते हैं। इसलिए 'उनके प्रयोग सामान्य स्वीकरण भले ही न पाएँ, उनकी मौलिकता में संदेह नहीं किया जा सकता है।'[12] परिणामतः वे लोक जीवन और लोक व्यवहार के निकट की भाषा शैली का चुनाव करते हैं। 'वे भाषा के आभिजात्य को तोड़कर उसे लोकभाषा के नजदीक लाते हैं'[13] और यही उनकी अपनी निजी भाषिक विशिष्टता जनसामान्य में उन्हें 'एक भारतीय आत्मा' के रूप में प्रतिष्ठित करती है।

संदर्भ

1 वर्मा, धीरेंद्र (संपादक); हिंदी साहित्य कोश (भाग 2) ज्ञानमंडल लिमिटेड प्रकाशन, वाराणसी, जून 2018, पृष्ठ 400

2 शर्मा, कृष्णदेव; माखनलाल चतुर्वेदीः व्यक्तित्व एवं कृतित्व, विनोद पुस्तक मंदिर प्रकाशन, 1979, पृष्ठ 204

3 वर्मा, धीरेंद्र (संपादक); हिंदी साहित्य कोश (भाग 2), ज्ञानमंडल लिमिटेड प्रकाशन, वाराणसी, जून 2018, पृष्ठ 440

4 पालीवाल, कृष्णदत्त (चयन एवं संपादन); माखनलाल चतुर्वेदी रचना–संचयन, भूमिका, साहित्य अकादेमी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2014, पृष्ठ 14

5 मिश्र, डॉ. नरेश (संपादक); आधुनिक हिंदी राष्ट्रीय काव्यधारा (राष्ट्रीयता और मानवतावाद), संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2008, पृष्ठ 148

6 जोशी, श्रीकांत (संपादक); माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली– 6, पुष्प की अभिलाषा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1983, पृष्ठ 80

7 वही

8 वही

9 चौरे, डॉ. जगदीशचंद्र; माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य का अनुशीलन, सत्येंद्र प्रकाशन, इलाहाबाद, 1982, पृष्ठ 205

10 पालीवाल, कृष्णदत्त; नवजागरणः देशी स्वच्छंदतावाद और नयी कविता, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2007, पृष्ठ 40
11 वही, पृष्ठ 50
12 वर्मा, धीरेंद्र (संपादक); हिंदी साहित्य कोश (भाग 2), ज्ञानमंडल लिमिटेड प्रकाशन, वाराणसी, जून 2018, पृष्ठ 442
13 पालीवाल, कृष्णदत्त; नवजागरणः देशी स्वच्छंदतावाद और नयी कविता, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2007, पृष्ठ 24

❑❑❑

हिंदी–पत्रकारिता और 'सरस्वती' पत्रिका

राहुल राज आर्यन

पत्रकारिता और समाज का संबंध जटिल और संश्लिष्ट है। यह जनप्रिय धारणा है कि लोकतंत्र की उपस्थिति के लिए स्वतंत्र पत्रकारिता का होना जरूरी है और स्वतंत्र पत्रकारिता के बिना लोकतंत्र विकसित नहीं होता। हिंदी पत्रकारिता का आगमन भारत में मुद्रण–कला के इतिहास से जुड़ा है और मुद्रण– कला के उदय और विकास का इतिहास सांस्कृतिक उपनिवेश बनाने की बृहत्तर प्रक्रिया का अंग है। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विस्तार का इतिहास साक्षी है कि अंग्रेज अपनी संस्कृति और धर्म को भावी उपनिवेश में पहले लेकर आए, तदंतर उसे राजनीतिक उपनिवेश में रूपांतरित किया। यूरोप में प्रेस के उदय के साथ ही सामंती व्यवस्था के विरूद्ध संघर्ष करना पड़ा था। इसने आधुनिक समाज और औद्योगिक सभ्यता के प्रभावी औजार की भूमिका अदा की थी। इसके विपरीत अंग्रेजों ने भारत में मुद्रण कला को सांस्कृतिक वर्चस्व स्थापित करने के लिए इस्तेमाल किया। धार्मिकता के प्रचार में इसकी अग्रणी भूमिका थी।

हिंदी पत्रकारिता का आगमन एक ऐसे दौर में हुआ था जब हिंदीभाषी क्षेत्र में न तो प्रेस था और न व्यापक शिक्षित अथवा साक्षर समाज। हिंदी पत्रकारिता का आरंभ कलकत्ता में हुआ। आधुनिक भारतीय समाज में साम्राज्यवादी ताकतों के खिलाफ संघर्ष से लेकर सामाजिक रूढ़ियों, उत्पीड़नों एवं विषमताओं के खिलाफ चले संघर्षों में हिंदी पत्रकारिता ने अग्रणी भूमिका निभाई है। विचारों एवं सामाजिक शक्तियों के संघर्षों में हिंदी पत्रकारिता के महत्व को पूरी तरह नहीं पहचाना गया है।

हिंदी में प्रकाशित पहला पत्र 'उदंत मार्त्तण्ड' है जो 30 मई 1826 ई. को प्रकाशित हुआ और 11 दिसंबर 1827 को बंद हो गया। इसके प्रथम पृष्ठ पर लिखा था–

''दिवाकांतक्रान्तिं बिना ध्वान्तातं
चाप्नोति तद्वज्जगत्यलोकः।
समाचार सेवा मृते ज्ञप्तमाप्तं, न
शक्नोति तमाकरोमीति यत्नः।।[1]

सन् 1845 ई. में बनारस से 'बनारस अखबार' प्रकाशित हुआ। हिंदी प्रदेश से प्रकाशित यह पहला साप्ताहिक पत्र है परंतु पाश्चात्य जगत में इसे भारतीय भाषाओं में प्रकाशित प्रथम समाचारपत्र के रूप में मान्यता दी गई है।[2] यद्यपि इस पत्र का प्रकाशन नागरी लिपि में होता था परंतु इसकी भाषा उर्दू और फारसी से बहुत बोझिल थी। सन् 1855 ई. में आगरा से दो साप्ताहिक निकले। राजा लक्ष्मण सिंह के संपादन में 'प्रजा हितैषी' और दूसरा 'सर्वहित–कारक'।

सन् 1857 में देश में राष्ट्रीयता की अपूर्व चेतना उदित हुई थी परंतु इस चेतना का वाहक प्रतिनिधि–पत्र उस समय नहीं मिलता। हिंदी समाचारपत्रों की यह अवस्था साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में सन् 1868

ई. तक व्याप्त रही। आधुनिक हिंदी के गद्य–निर्माण का संकल्प भारतेंदु हरिश्चंद्र ने लिया। उन्होंने अपने व्यक्तित्व का विस्तार साहित्य की प्रत्येक विधा में किया। उनके संपादन में 1868 ई. में मासिक पत्रिका के रूप में 'कविवचन–सुधा' पत्रिका निकली, इस पत्र में राष्ट्रीय भावनाओं की व्यापक उपस्थिति हुई। बाद में 'हरिश्चंद्र चंद्रिका'(1873 ई.), बद्रीनारायण उपाध्याय 'प्रेमघन' द्वारा संपादित 'नागरी नीरद' और 'आनंद कादंबिनी' भी महत्वपूर्ण है।

हिंदी पत्रकारिता के लिए बीसवीं शती का उत्तरार्द्ध आशातीत उन्नति का दौर था। सन् 1893 ई. में कुल ग्यारह पत्र–पत्रिकाएँ निकली। अनेक पत्रिकाओं को स्थायित्व नहीं मिलने के बावजूद सन् 1900 ई. से लगातार प्रति वर्ष दर्जनों पत्र–पत्रिकाएँ प्रकाशित होती रहीं। हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता की परंपरा में 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन मील का पत्थर बना। इंडियन प्रेस, प्रयाग के संस्थापक चिंतामणि घोष ने 1899 ई. में नागरी प्रचारिणी सभा से आग्रह किया कि मासिक पत्रिका 'सरस्वती' का संपादन करे। 'सरस्वती' का जनवरी, 1900 ई. का प्रथम अंक अनेक मौलिक विशेषताओं के साथ प्रस्तुत हुआ। संपादक–मंडल में बाबू जगन्नाथदास, बाबू श्यामसुंदर दास, बाबू राधाकृष्णदास, पं. किशोरीलाल गोस्वामी, बाबू कार्तिकप्रसाद खत्री थे। एक साल तक 'सरस्वती' इसी संपादन समिति के निर्देश पर निकलती रही और चौथे वर्ष के प्रारंभ से यह कार्य पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी को मिला। द्विवेदी जी झाँसी में रहकर 'सरस्वती' का संपादन करते थे। सन् 1900 ई. तक इस समिति का संबंध 'सरस्वती' के साथ रहा– 'परंतु कुछ सैद्धातिक विवादों को लेकर इस समिति ने दुःख के साथ 'सरस्वती' के प्रकाशक के अपवादपूर्ण लेखों को छापने से न रोक सकने के कारण अपना संबंध तोड़ लिया।[3]

हिंदी और भारतीय भाषाओं में प्रकाशित 'सरस्वती' का अपना मौलिक, ठोस और महत्वपूर्ण स्थान है। हिंदी प्रदेश में नवजागरण 1857 ई. के स्वाधीनता–संग्राम के बाद स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। इस स्वाधीनता–संग्राम की पहली विशेषता यह है कि यह सारे देश की एकता को ध्यान में रखकर चलाया गया था। इसकी दूसरी विशेषता यह है कि राज्यसत्ता की मूल समस्या सामंतों के हित में नहीं, जनता के हित में हल की गई थी। इसकी तीसरी विशेषता यह है कि अंग्रेजों ने जमींदारों और साहूकारों को जहाँ भी नये अधिकार दिए थे, जहाँ भी किसानों के विरूद्ध इन शोंषकों के पक्ष में उन्होंने फैसले किए थे, वहाँ भारतीय सेना का प्रभुत्व कायम होते ही जनता ने अंग्रेजों की कायम की हुई व्यवस्था उलट दी। इस संग्राम की चौथी विशेषता इसका असांप्रदायिक राष्ट्रीय रूप है। सन् 1857 का स्वतंत्रता–संग्राम अंग्रेजों द्वारा प्रेरित संप्रदायवाद की सबसे बड़ी पराजय था। इस संग्राम की पाँचवीं विशेषता यह है कि यह संग्राम हिंदीभाषी प्रदेश में चलाया गया। जितने भी लोकगीत विभिन्न जनपदों में हमारे यहाँ रचे गए, उतने अन्य प्रदेशों में कुल मिलाकर भी नहीं रचे गए।

हिंदी पत्रकारिता में 'सरस्वती' का मूल्यांकन इसी पृष्ठभूमि में किया जाना चाहिए। नवजागरण से अनुप्राणित चेतना और 1857 ई. की क्रांति के सापेक्ष साहित्यिक चेतना के विकास को यहाँ देखा जा सकता है।

'सरस्वती' की महत्वपूर्ण देन कलात्मक साहित्य की उत्कृष्टता है। कविता के क्षेत्र में मैथिलीशरण गुप्त ने सफलतापूर्वक ब्रजभाषा की जगह खड़ीबोली को प्रतिष्ठित किया। 'सरस्वती' में प्रकाशित अधिकांश कविताएँ समाजोन्मुख हैं। उसका उपयोगितावादी लक्ष्य स्पष्ट है। द्विवेदीयुगीन कवियों की शैली ने बहुधा छायावादी कवियों को प्रभावित किया है। सनेही और गुप्त की झलक बहुत जगह निराला की रचनाओं में मिलती है। रामविलास शर्मा के अनुसार ''यदि इस बात पर विचार किया जाय कि 'सरस्वती' समकालीन रीतिवादी धारा के विरोध में, ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ीबोली हिंदी के समर्थन में, एक संघर्षरत पत्रिका थी, तो उसका यह जातीय गौरव और भी आश्चर्यजनक लगता है।[4] हिंदी लेखकों को 'सरस्वती' पत्रिका से संबद्ध करना आसान नहीं था। यदि द्विवेदी जी अपना दल बनाकर 'सरस्वती' में इस दल के लेखकों की चीजें ही छापते, जो कुछ छापते उसके स्तर का ध्यान नहीं रखते, तो 'सरस्वती' हिंदी की जातीय पत्रिका होती।

'सरस्वती' ने नये लेखकों के प्रशिक्षण का महत्वपूर्ण काम द्विवेदी जी के नेतृत्व में किया। रामविलास शर्मा लिखते हैं, ''उस समय का कोई ऐसा लेखक नहीं जो बाद में प्रसिद्ध हुआ हो और पहले उसकी रचनाएँ 'सरस्वती' में न छपी हों। प्रसिद्ध हो चाहे अज्ञात नाम, द्विवेदी जी अपना ध्यान इस बात पर केंद्रित करते थे कि वह लिखता क्या है।''[5] ज्ञान विज्ञान से लेकर कथा साहित्य और कविता तक उपयुक्त लेखक ढूँढ़ने में उन्होंने अथक परिश्रम किया। 'सरस्वती' की लोकप्रियता का एक कारण हिंदी नवजागरण की अपनी शक्ति भी थी। यह शक्ति बिखरी हुई थी। द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' के माध्यम से बिखरी हुई शक्ति को एकताबद्ध किया। लेकिन यह सब कुछ इतना आसान भी नहीं था।

द्विवेदी जी के समय नई विचारधारा का जैसा और जो कुछ प्रचार–प्रसार हुआ उसमें प्रकाशन–व्यवसाय की चुनौतियों को भी सामने रखकर देखा जाना चाहिए। ऐसी बात नहीं थी कि 'सरस्वती' के लिए बाजार तैयार बैठा था। ''यदि प्रेमचंद को अपने कथा–साहित्य के लिए एक नया पाठक भी तैयार करना था, तो द्विवेदी जी को 'सरस्वती' के लिए एक ऐसा पाठक वर्ग तैयार करना था कि वह कथा–रस और काव्य–रस के बिना भी विचारप्रधान गद्य रुचिपूर्वक पढ़े।''[6] 'सरस्वती' को इसमें सफलता मिली और यह सफलता हिंदी जनता के नवीन सांस्कृतिक विकास का प्रमाण भी है।

'सरस्वती' को इस बात का श्रेय है कि उसने जाति और राष्ट्र के संबंध को समझा। द्विवेदी जी यहाँ जातीय भाषाओं की बात करते हैं और उनके बोलने वालों के बीच संपर्क भाषा के रूप में हिंदी के व्यवहार की सलाह देते हैं। साथ ही अंग्रेजी के विरूद्ध देशी भाषाओं की हिमायत करने का भी अवसर हाथ से जाने नहीं देते। दिसंबर 1917 की 'सरस्वती' में द्विवेदी जी ने प्रेमबल्लभ जोशी का लेख 'हिंदी साहित्य की उन्नति के उपाय' प्रकाशित किया। लेखक ने लिखा था,"यदि हिंदी राष्ट्रभाषा बना दी गई तो भी प्रांतीय भाषाएँ भारत से उठ थोड़े ही जाएँगी। प्रांतों के सब काम प्रांतीय भाषाओं में होंगे। अन्य देशों में ऐसा ही होता है।''[7] अन्य भाषाओं की तुलना में हिंदीभाषी प्रदेश की कुछ खास समस्याएँ थी। यहाँ हिंदी भाषा अनेक अंतर्विरोधों का

सामना कर रही थी। वे इस प्रकार हैंः– (क) अंग्रेजी से अंतर्विरोध (ख) फारसी से अंतर्विरोध (ग) उर्दू से अंतर्विरोध (घ) ब्रजभाषा से अंतर्विरोध (ङ) जनपदीय उपभाषाओं से अंतर्विरोध (च) संस्कृत से अंतर्विरोध (छ) बांग्ला से अंतर्विरोध (ज) हिंदी के निर्धारण की समस्या। द्विवेदी जी के नेतृत्व में 'सरस्वती' ने इन सभी समस्याओं पर विचार किया। इन सारी समस्याओं से वर्तमान भारत का भी संबंध है। रामविलास शर्मा के शब्दों में ''जो लोग नये भारत का निर्माण करने को उत्सुक हैं, वे पहले द्विवेदी जी का विवेचन समझ लें, फिर नवनिर्माण के कार्य में लगें तो अच्छा है।''[8] स्पष्ट है, हिंदी में सरस्वती से पहले, उसके साथ–साथ और उसके बाद बहुत–सी पत्रिकाएँ निकली' और निकलती रहीं, पर किसी भी पत्रिका में लेखक अपनी रचनाएँ छापने के लिए ऐसे आतुर और उत्सुक दिखाई नहीं दिए जैसे 'सरस्वती' में। मैथिलीशरण गुप्त ने अपने संस्मरण में लिखा है,'' इस बीच कलकत्ते के 'वैश्योपारक' मासिक पत्र में मेरे पद्य छपने लगे थे। इससे मुझे कुछ अभिमान भी हो गया था। परंतु हिंदी की एकमात्र प्रतिष्ठित पत्रिका सरस्वती थी। मेरा मन उधर ही लगा था।''[9] रामविलास शर्मा सवाल करते हैं, ''लेखकों को सरस्वती में अपनी रचनाएँ छपाने की यह उत्सुकता क्या इसलिए थी कि द्विवेदी जी उनकी भाषा सुधारने के अलावा और भी बहुत कुछ जोड़ते–घटाते थे। पर सरस्वती के महत्व का कारण यह नहीं था। यदि सरस्वती के पुराने अंक उठाकर किसी भी नई–पुरानी पत्रिका के अंकों से मिलाए जाएँ तो ज्ञात होगा कि पुराने हो चुकने पर भी इन अंकों में सीखने–समझने के लिए अन्य नवीन पत्रिकाओं की अपेक्षा कहीं अधिक सामग्री है।[10]''

'सरस्वती' सबसे पहले ज्ञान की पत्रिका थी, वह हिंदी नवजागरण का मुख्य पत्र थी, और हिंदीभाषी जनता की सर्वमान्य जातीय पत्रिका थी। ज्ञान की पत्रिका होने के अलावा वह कलात्मक साहित्य की पत्रिका थी, ऐसे साहित्य की जो रीतिवादी रूढ़ियों का नाश करके नवीन सामाजिक, सांस्कृतिक आवश्यकताओं के अनुरूप रचा जा रहा था। इसलिए उसने हिंदी साहित्य में और उसके बाहर व्यापक स्तर पर भारतीय साहित्य में, वह प्रतिष्ठा प्राप्त की जो बीसवीं सदी में अन्य किसी पत्रिका को प्राप्त न हुई। निष्कर्ष में रामविलास शर्मा के शब्दों में'' प्रेमचंद और कृष्ण बिहारी मिश्र द्वारा संपादित 'माधुरी' और निराला संपादित 'सुधा', पुनः प्रेमचंद संपादित 'हंस' अपने–अपने ढंग की विशिष्ट पत्रिकाएँ थीं पर 'सरस्वती' की तरह इन्हें सर्वमान्य जातीय गौरव प्राप्त नहीं था।''[11]

संदर्भ–

1. उदंत मार्तण्ड, मुख्य पृष्ठ, प्रथम अंक, 30 मई, 1826 ई.
2. दी फर्स्ट इंडियन लैंग्वेज–यूजपेपर इन हिंदी स्पीयर्ड, वाराणसी इन 1845–वर्ल्ड मार्क इनसाइक्लोपीडिया ऑफ नेशन्स, संपादक लुई बैरान, पृष्ठ–93
3. 'सरस्वती', वर्ष 2, अंक 12, 'विविध वार्ता' पृष्ठ 361, दिसंबर 1902
4. शर्मा रामविलास, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2010, पृष्ठ–360
5. शर्मा रामविलास, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण,राजकमल

प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2010, पृष्ठ–365
6. शर्मा रामविलास, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2010, पृष्ठ–367
7. शर्मा रामविलास, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2010, पृष्ठ–186
8. शर्मा रामविलास, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2010, पृष्ठ–199
9. द्विवेदी पत्रावली, पृष्ठ–47
10. द्विवेदी पत्रावली, पृष्ठ –360
11. द्विवेदी पत्रावली, पृष्ठ–360

सहायक सामग्री

1. चतुर्वेदी जगदीश्वर, मीडिया समग्र (भाग–1), स्वराज प्रकाशन, दिल्ली संस्करण 2013
2. शर्मा रामविलास, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2010
3. मिश्र कृष्ण बिहारी, हिंदी पत्रकारिताः जातीय अस्मिता की जागरण–भूमिका
4. शर्मा रामविलास, भारतेंदु हरिश्चंद्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2012
5. पांडेय रत्नाकर, हिंदी पत्रकारिताः प्रेमचंद और हंस, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, दिल्ली, संस्करण–2006
6. वाजपेयी अंबिकाप्रसाद, समाचारपत्रों का इतिहास

❑❑❑

वर्तमान समय में हिंदी शिक्षणः दशा एवं दिशा

प्रभाकर कुमार

''निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति कौ मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय कौ सूल।।''

वर्तमान समय में हिंदी को राजभाषा के नाम से भी जानते हैं। क्योंकि हिंदी का विकास साहित्येतर क्षेत्रों में भी हो रहा है। वर्तमान समय में अंग्रेजी भाषा की लोकप्रियता काफी बढ़ चुकी है और ज्यादातर लोगों का झुकाव भी अंग्रेजी भाषा की ओर है। ऐसे में अगर हम हिंदी शिक्षण की स्थिति की बात करते हैं तो पाते हैं कि हिंदी शिक्षण की स्थिति दिन–प्रतिदिन बदलती जा रही है। हिंदी भारत के 9 राज्यों और 2 संघ शासित क्षेत्रों की राजभाषा और भारत में सबसे अधिक लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा होने के बावजूद भी अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए अंग्रेजी के साथ लगातार संघर्ष कर रही है। वर्तमान समय में हिंदी के प्रति लोगों का नजरिया भी बदल रहा है। हिंदी विषय को सिर्फ नाटक, उपन्यास और कहानी तक सीमित मानते थे और हिंदी पढ़ने वालों के प्रति नजरिया भी दूसरा होता था। हिंदी के विद्थार्थी भी हिंदी भाषा बोलने में हिचकिचाते थे। लेकिन आज तकनीकी के साथ जुड़कर भाषा का नया रूप सामने आ रहा है। इन सबके बावजूद भी हिंदी की तरफ लोगों का झुकाव है। लेकिन शिक्षकों का झुकाव कम होता जा रहा है। वर्तमान समय में ज्यादातर हिंदी शिक्षक अपनी कक्षा के दौरान कुछ नयापन नहीं सिखाना चाहते हैं। वे अध्ययन–अध्यापन के लिए व्यवहारवादी पद्धति का ही प्रयोग करते हैं। वे अपनी कक्षा को रोचक तथा विद्यार्थियों के परिवेश से जोड़ पाने में असफल हैं। क्योंकि वे परंपरा को छोड़ नहीं पा रहे हैं। अन्य विषयों के शिक्षण के लिए जिस प्रकार से तरह–तरह की सहायक शिक्षण सामग्री का प्रयोग हो रहा है, उस तरह से हिंदी शिक्षण में नहीं हो रहा है। जिसका सीधा असर विद्यार्थियों पर पड़ता है। वर्तमान समय में हिंदी शिक्षण में व्याख्यान विधि का ही बोलबाला होने के कारण हिंदी शिक्षण नीरस है। वर्तमान समय में हिंदी के बहुत ही कम शिक्षक हैं जो निर्माणात्मक पद्धति से कक्षा में अध्यापन करते हैं। ज्यादातर शिक्षक तो अपना पाठ्यक्रम पूरा करने में ही अपना दायित्व समझते हैं। प्राथमिक माध्यमिक व उच्च माध्यमिक कक्षाओं की बात करें, तो पाते हैं कि आज भी हिंदी शिक्षण के बहुत ही कम शिक्षक हैं जो अपनी कक्षाओं को रोचक बनाने में तथा विद्यार्थियों को समझाने हेतु सहायक शिक्षण सामग्री का प्रयोग करते हैं (उदाहरण फ्लैश बोर्ड, रेखाचित्र, चार्ट, डायग्राम, कटआउट्स, पोस्टर, नक्शे और डायोरमा)। इन सहायक शिक्षण सामग्रियों का प्रयोग बहुत ही कम देखने को मिलता है। अगर हिंदी शिक्षण को और समृद्ध बनाना है, तो उसके शिक्षण में बदलाव लाना होगा तथा परंपरावादी सीमाओं को तोड़कर आगे बढ़ना होगा। अगर ऐसा कर

पाने में हम सफल होते हैं तो निश्चित तौर पर हिंदी शिक्षण के लिए अनुभवात्मक अधिगम शिक्षणशास्त्र को पूर्णरूपेण लागू कर पाएँगे और नई शिक्षा नीति भी सफल होगी। इसके अलावा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में कक्षा को बाहरी वातावरण से जोड़ने की जो बात की गई है, उसे भी हम कर पाएँगे। कोई भी नीति या रूपरेखा तभी सफल हो पाएगी जब हम मिलकर उसके अनुसार कार्य करेंगे। अगर मिलकर कार्य करेंगे तो निश्चित रूप से नई शिक्षा नीति 2020 भी सफल होगी और पूरे भारत के हिंदी के विद्यार्थियों को लाभ मिलेगा।

महान शिक्षा शास्त्री जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार ''**एक सिस्टम आदमी को नहीं बदल सकता बल्कि आदमी सिस्टम को बदलते हैं।**'' ठीक उसी प्रकार सिस्टम को भी बदला जा सकता है जब हम उससे बाहर निकलकर कुछ अलग सोचें और जो परंपरावादी शिक्षण विधियों तक ही सीमित हैं उससे बाहर निकलें। अगर हमें हिंदी में कुछ अलग करना है तो सिर्फ हिंदी के बारे में बातें करने से नही होगा बल्कि काम भी करना होगा। आज तक सिर्फ बातें करते आए हैं उसे बदलना होगा। हिंदी शिक्षण की वर्तमान स्थिति को सुधारना है तो हमें प्राथमिक स्तर से बदलाव शुरु करना होगा। अगर हमारी नींव मजबूत होगी तो निश्चित ही हम आगे बढ़ेगे। यह बदलाव प्राथमिक स्तर से शुरु करना होगा। अगर हमारी नींव मजबूत होगी तो निश्चित ही हम आगे और अच्छे तरीके से कार्य कर पाएंगे। हिंदी शिक्षण में ये तभी संभव है जब हम उसके अनुसार पाठ्यक्रम बनाएँ तथा परीक्षा प्रणाली और मूल्यांकन प्रणाली को भी बेहतर बनाएँ। पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम, परीक्षा प्रणाली और मूल्यांकन प्रणाली को सुधारने की बात एनसीईआरटी के फोकस समूह के आधार पत्र (**परीक्षा प्रणाली में सुधार)**में भी किया गया है। वर्तमान समय में जो परीक्षा प्रणाली है उसमें काफी बदलाव करने की जरूरत है। अगर परीक्षा प्रणाली में बदलाव करना है तो निश्चित तौर पर शिक्षण–विधियों में भी बदलाव करना होगा। आज की परीक्षा प्रणाली 21वीं सदी के अनुसार न होकर परंपरावादी और रटंत विद्या पर आधारित है। **परीक्षा का अर्थ** ''परितः इक्षणम'' अर्थात छात्रों को चारों ओर से देखना, आंतरिक और बाह्य दोनों रूपों में कक्षा में छात्रों ने क्या सीखा है और कितना सीखा है? इसकी जाँच करने की प्रणाली का नाम परीक्षा प्रणाली है। लेकिन आज की परीक्षा प्रणाली के प्रश्न बिना समझे रटने की आदत डालते हैं। वर्तमान परीक्षा प्रणाली केवल स्मरण शक्ति के कौशल की जाँच करती है। वर्तमान स्वरूप में परीक्षाएँ– परीक्षा पूर्व तथा परीक्षा पश्चात दोनों ही परिस्थितियों में विद्यार्थियों में दबाव एवं दुश्चिंता उत्पन्न करती है। इसलिए परीक्षा प्रणाली में सुधार की आवश्यकता है। परीक्षा प्रणाली में सुधार की आवश्यकता क्यों है इसे निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से देख सकते हैं–

(क) भारत में विद्यालय बोर्ड की परीक्षाएँ 21वीं सदी के ज्ञान समाज और इसके नवाचारी समस्या समाधानकर्ताओं की आवश्यकता के अत्यंत अनुपयुक्त है।

(ख) ये सामाजिक न्याय की जरूरतों को पूरा नहीं करती।

(ग) प्रश्नपत्रों की गुणवत्ता काफी कम होती है।

(घ) इसमें लचीलापन नहीं है। यह 'एक नीति सबके लिए उपयुक्त' के सिद्धांत पर आधारित है।

(ङ) ये परीक्षाएँ अत्यधिक तनाव एवं चिंता उत्पन्न करती हैं। परीक्षाजनित आत्महत्याएँ एवं नर्वस ब्रेकडाउन की घटनाएं बढ़ रही हैं।

(च) यहाँ ग्रेड देने और ग्रेड/अंक रिपोर्ट में अक्सर पूर्ण प्रकटीकरण और पारदर्शिता का अभाव है। जिसके संबंध में राष्ट्रीय भाषा सलाहकार समिति ने 'शिक्षा बिना बोझ के' (1993) में सुझाया है– कक्षा 10वीं और 12वीं के अंत में ली गई बोर्ड परीक्षाएँ नौकरशाही सिद्धांतों पर आधारित हैं। इसके अलावा अगर हम बोर्ड परीक्षाओं की बात करें तो पाते हैं कि बोर्ड परीक्षाएँ भी विद्यार्थियों में रटने और उगलने पर जोर देती हैं। वहीं अगर हम भाषा मूल्यांकन की बात करें, तो पाते हैं कि भाषा मूल्यांकन के समय भाषा अधिगम की प्रकृति पर ध्यान नहीं दिया जाता है। हम किन तथ्यों का परीक्षण करें और किस प्रविधि से करें उसपर भी ध्यान नहीं दिया जाता है। साहित्य के परीक्षण में प्रायः भाषा के सभी कौशलों को किसी न किसी प्रकार साधन के रूप में स्वीकार किया जाता है। किसी कविता या कहानी को सुना जा सकता है। लेकिन इन सभी बातों पर ध्यान न देकर सिर्फ बोर्ड परीक्षाओं में ज्ञानात्मक प्रश्नों की बहुलता होती है। बोधात्मक और क्रियात्मक प्रश्नों की संख्या भी काफी कम होती है। जिसकी वजह से विद्यार्थियों में रचनात्मक क्षमता का विकास न होकर सिर्फ रटने की आदत लग जाती है। इसके अलावा मूल्यांकन में भी सिर्फ परीक्षा प्रणाली का प्रयोग किया जाता है। मौखिक परीक्षा एवं सामूहिक कार्य मूल्यांकन में भी सिर्फ परीक्षा प्रणाली का प्रयोग किया जाता है। मौखिक परीक्षा एवं सामूहिक कार्य मूल्यांकन बहुत कम कराया जाता है। मूल्यांकन करते समय भी ध्यान सिर्फ प्रश्नों के उत्तर की ओर होता है। विद्यार्थी क्या समझा, क्या नहीं और उसमें क्या सुधार करने की आवश्यकता है; इस तरफ ध्यान बहुत कम ही जाता है। विद्यार्थियों की सोच तथा विचार से उनका कोई लेना–देना नहीं होता है। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि अगर विद्यार्थियों की विचारधारा को अपनी भाषा में लिखने की इजाजत मिलेगी तो उन्हें प्रश्नपत्र जाँच करते समय काफी समय लगेगा क्योंकि सबकी अपनी अलग–अलग सोच होगी। वहीं ज्ञानात्मक प्रश्नों में इस प्रकार की समस्या नहीं होगी। इसलिए ज्यादातर प्रश्न ज्ञानात्मक होते हैं जो कि उचित नहीं है। और अगर हमें इस चीज से निकलना है तो इसमें निश्चित रूप से बदलाव करना होगा और परंपरावादी विचारधारा से बाहर निकलना होगा। परंपरावादी विचारधारा से निकलने में अगर हम सफल हो गए, तो निश्चित रूप से हिंदी शिक्षण की स्थिति में सुधार कर पाने में सफल होंगे। यह सुधार प्राथमिक स्तर से करना होगा प्राथमिक, माध्यमिक व उच्च माध्यमिक स्तर पर हिंदी की कक्षाओं का उद्देश्य निर्धारण करना होगा। उदाहरण के लिए कौन सी कक्षा में क्या पढ़ाया जाए और कैसे पढ़ाया जाए तथा उसे पढ़ाने का उद्देश्य क्या है? और इन बातों का मूल्यांकन भी आवश्यक है। जो उद्देश्य निर्धारित किया गया था, वह कितना सफल हुआ है और उसे पूरा कैसे किया जा सकता है। अगर इन सब उद्देश्यों को ध्यान में रखकर कार्य करेंगे तो हिंदी का भविष्य निश्चित रूप से सुनहरा होगा। इसके लिए पाठ योजना में भी सुधार करना होगा। यह सब तभी संभव होगा जब कुछ अलग करने की सोच रखेंगे तथा उसके

अनुसार कार्य भी करने को तैयार रहेंगे। तथा उसमें आने वाली चुनौतियों से भी लड़ने के लिए तैयार रहेंगे। वर्तमान समय में हिंदी शिक्षण की तकनीक को लेकर कम चर्चा होती है। अगर होती भी है तो उसे पूर्ण रूप से लागू नहीं किया जाता। तकनीक को लेकर की गई चर्चाएँ व्याख्यान तक ही सीमित रह जाती हैं। अगर कोई करने का प्रयास भी किया जाता है तो वह सफल नहीं हो पाता। उसका सबसे बड़ा कारण यह है कि हिंदी शिक्षकों को उसके लिए तैयार नहीं किया जाना। अगर हिंदी शिक्षक स्वयं तकनीक का प्रयोग करना नहीं जानता तो वह अपनी कक्षा में तकनीक का प्रयोग नहीं कर पाएगा।

रवींद्रनाथ टैगोर ने कहा है ''एक दीपक दूसरे दीपक को तब तक प्रज्वलित नहीं कर सकता जब तक कि वह स्वयं प्रज्ज्वलित ना रहे।'' उसी प्रकार एक शिक्षक भी तब तक अध्यापन नहीं कर सकता जब तक वह स्वयं उस चीज के बारे में ज्ञान नहीं रखता हो। अगर वेदों की बात करें तो अथर्ववेद में कहा गया है कि गुरूवर आपने ऐसे खेल–खेल में पढ़ाया है कि जो कुछ भी मैं सुनू मुझमें ही रहे। इसके अलावा एनसीएफ-2005 भी अधिगम प्रक्रिया के माध्यम से विद्यार्थियों को रटने की प्रणाली से मुक्त कराने की बात करता है। इस बात पर जोर देता है कि पाठ्यचर्या पाठ्यपुस्तक केंद्रित न रह जाए। वहीं अगर नई शिक्षा नीति 2020 की बात करें तो इस बात पर जोर दिया गया है कि रटकर सीखने के बजाय रचनावादी तरीके से सीखने पर नए सिरे से जोर के साथ–साथ स्कूल की पाठ्यचर्या में भी बदलाव होना चाहिए। यह सब तभी लागू होगा जब शिक्षकों को भी उसी अनुसार प्रशिक्षित किया जाएगा। क्योंकि शिक्षकों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम या फिर तकनीक का प्रयोग हो। ये सब ठीक तरह से तभी कार्य कर पाएगा जब शिक्षक उसके अनुसार होंगे। क्योंकि कार्य तो शिक्षक को ही करना है इसलिए शिक्षकों का प्रशिक्षण भी समय की मांग को देखकर करना होगा इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षकों को समय की मांग के अनुसार प्रशिक्षण तथा प्रशिक्षु (छात्राध्यापक /छात्राध्यापिका) शिक्षकों को भी इन चीजों से अवगत कराना आवश्यक होगा। इसके अलावा हिंदी में होने वाले शोधों में भाषा शिक्षण शोध पर जोर देना होगा। अगर वर्तमान समय की बात करें तो पाते हैं कि हिंदी में होने वाले अनुसंधान का 90 फीसदी साहित्य केंद्रित होता है और भाषा, जनसंचार आदि पर मुश्किल से 10 फीसदी काम होता है। इसमें बढ़ोतरी करनी होगी। अगर भाषा पर ज्यादा से ज्यादा शोध होगा तो निश्चित तौर पर नई–नई बातें निकल कर सामने आएँगी जिससे हिंदी–शिक्षण को आगे बढ़ने में काफी मदद मिलेगी। इसके अलावा एनसीईआरटी के दस्तावेज 'परीक्षा प्रणाली में सुधार' में जो परीक्षा प्रणाली की लेकर बात की गई हो या विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा 2019 में प्रकाशित रिपोर्ट के निष्कर्षों को लागू कर भी बहुत कुछ सुधार लाया जा सकता है।'उच्चतर शिक्षा संस्थानों में मूल्यांकन सुधार' इस तथ्य पर बल देता है कि सार्थक सीखने को क्रियान्वित करने के लिए सीखने के परिणामों को संस्थागत लक्ष्यों से जोड़ा जाना चाहिए। ऐसा कर ही हम दोनों ही दस्तावेजों द्वारा सुझाई गई बातों को लागू कर पाएँगे और दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली को

ठीक कर पाएंगे। जिसकी जरूरत भारतीय शिक्षा जगत को वर्षों से है।

सहायक ग्रंथ

1. पारख, जवरीमल्ल (2008): हिंदी शोध की दशा और दिशा, भारतीय हिंदी शिक्षण सम्मेलन–2008 के लेख और वक्तव्य, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, पृष्ठ संख्या. 170
2. शुक्ला, भारती (2008): हिंदी शिक्षण वर्तमान दशा–दिशाः अवधारणात्मक विमर्श, भारतीय हिंदी शिक्षण सम्मेलन–2008 के लेख और वक्तव्य, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, पृष्ठ संख्या 136–37
3. नई शिक्षा नीति 2020, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ संख्या. 21–22
4. राष्ट्रीय–पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, पृष्ठ–सार संक्षेप
5. परीक्षा प्रणाली में सुधार – आधार पत्र एन.सी.ई.आर.टी., पृष्ठ संख्या. 1–14
6. उच्च शिक्षा संस्थानों में मूल्यांकन सुधार– विश्वविद्यालय अनुदान आयोग 2019, पृष्ठ संख्या. 11–13
7. शर्मा, किशोरीलाल. भाषा में मूल्यांकन तथा परीक्षण, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, पृष्ठ संख्या. 1–71

❑❑❑

मुझे नहीं मरना है कभीः नरेश मेहता

गुर्रमकोंडा नीरजा

अब जो निश्चित रूप से अपने बारे में पता है

वह यह कि
मुझे नहीं मरना है
कभी–

कहकर घोषणा करने वाले 'नई कविता' के प्रमुख हस्ताक्षर नरेश मेहता का यह 'शताब्दी वर्ष' है। उनका जन्म 15 फरवरी, 1922 को मालवा के कस्बे शाजापुर में हुआ।उनकावास्तविकनामथा पूर्णशंकर। नरसिंहगढ़ की राजमाता ने उनकी काव्य प्रतिभा से प्रसन्न होकर उन्हें 'नरेश' उपनाम दिया था। इस उपनाम से पूर्णशंकर इतना प्रभावित हो गए कि इस नाम को अपना लिया। आगे चलकर वे नरेश मेहता के नाम से प्रसिद्ध हुए। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने एक जगह यह उल्लेख किया कि नरेश मेहता अपने नाम के आगे 'श्री' लगाना पसंद करते थे। यों, अनेक स्थलों पर उनका नाम 'श्रीनरेश मेहता' भी मिलता है।

नरेश मेहता ने काशी विश्वविद्यालय से एम. ए. की उपाधि अर्जित की थी। विद्यार्थी जीवन से ही वे अनेक आंदोलनों में सक्रिय भूमिका निभाते रहे। 1942 के 'भारत छोड़ो आंदोलन' में भी उन्होंने सक्रिय रूप से भाग लिया था। उन्होंने द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान सेना में भर्ती होकर देश के लिए संघर्ष भी किया था। आकाशवाणी में अधिकारी के रूप में नौकरी भी की थी। अपने प्रगतिशील विचारों के कारण 1953 में वे सरकारी नौकरी भी से मुक्त हो गए। उसके बाद उन्होंने निरंतर साहित्य सृजन में ही समय बिताया। इस संदर्भ में ममता मेहता का यह कथन द्रष्टव्य है – "रेडियो की नौकरी छोड़ने के बाद उन्होंने रेडियो की या अन्य कोई नौकरी करने का विचार अपने मन से निकालकर इलाहाबाद में रहते हुए स्वयं को रचनाकर्म के लिए समर्पित कर दिया था।" (समावर्तन, सितंबर 2017, पृ.15)

नरेश मेहता के संबंध में रामस्वरूप चतुर्वेदी का कहना है कि वे प्रकृति, प्रेम और सौंदर्य के चितेरे हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक 'हिंदी काव्य का इतिहास' में नरेश मेहता और शमशेर बहादुर सिंह की तुलना करते हुए लिखा है कि "दोनों आरंभिक रचना–काल मेंमार्क्स के चिंतन को स्वीकार करते हैं तथा लंबे समय तक साम्यवादी आंदोलन से जुड़े रहे हैं। बाद में दोनों अध्यात्म की ओर उन्मुख होते हैं, नरेश काफी पहले विस्तार में, शमशेर महज संकेतात्मक रूप में।" (पृ.104)।

नरेश मेहता भारतीयता की अपनी गहरीदृष्टिकेलिएजाने जाते हैं। भारतीयता के संदर्भ में केशवचंद्र वर्मा से बात करते हुए उन्होंने यह स्पष्ट किया कि भारतीयता की तलाश "स्वतंत्रता के बाद और तेज हो गई, क्योंकि तब हमें उसी रास्ते अपने व्यक्तित्व और राष्ट्र की मान्यता दिलाने की बाध्यता हो गई।" (मेरे साक्षात्कार, पृ.18)

नरेश मेहता किसी भी 'वाद' के कटघरे में न ही अपने आपको रखते थे और न ही अपनी कविता को। वे अपनी कविता को संकीर्णता से बचाए रखना चाहते थे। बनपाखी सुनो (1957), बोलने दो चीड़ को (1962), मेरा समर्पित एकांत

(1962), उत्सवा (1979), तुम मेरा मौन हो (1982), अरण्या (1985), आखिर समुद्र से तात्पर्य (1988), पिछले दिनों नंगे पैरों (1990), देखना एक दिन (1991), चौत्या (1993), समिधा (दो खंड, 2000) आदि उनके प्रसिद्ध काव्य–संग्रह हैं। संशय की एक रात (1962), महाप्रस्थान (1965), प्रवाद पर्व (1977), शबरी (1979) और प्रार्थना पुरुष (1985) उनके प्रसिद्ध खंडकाव्य हैं। उन्होंने 1936 से कविता लिखना शुरू किया था। अज्ञेय द्वारा संपादित 'दूसरा सप्तक' के माध्यम से वे पाठकों के सामने आए। प्रभाकर श्रोत्रिय उन्हें 'मधुकरी के कवि' मानते थे।

काव्य एक गंभीर सृजनात्मक प्रक्रिया है। कविता को समझने के लिए पाठक को भी उसी भावभूमि में उतरना ही होगा जिस भावभूमि में कवि विराजमान है, नहीं तो कुछ भी हाथ नहीं लगेगा। कविता के संदर्भ में नरेश मेहता का यह कथन उल्लेखनीय है – "काव्य हमारे लिए केवल मनोरंजन या तात्कालिक प्रतिक्रिया अथवा फतवेबाजी है तो काव्य की इस प्रकृति, स्वरूप और सत्ता को जानने में कोई खास परेशानी नहीं होगी, लेकिन यदि वह हमारे लिए एक गंभीर सृजनात्मक कर्म अथवा रचनात्मक दायित्व अथवा संज्ञा है जिससे हम अनिवार्य रूप से ग्रथित हैं, तो हमारी जिज्ञासा और पड़ताल का दायरा भी अधिक गहन और विशाल होगा।यदि काव्य की कोई मुद्रा संभव है तो वह 'अर्धनारीश्वर' जैसी होगी।" (चैत्या, पृ.7)

नरेश मेहता का अपना जीवन दर्शन था। उनकी पत्नी ममता मेहता ने अपनी पुस्तक 'उत्सव पुरुष : श्रीनरेश मेहता' में लिखा है कि अकसर नरेश मेहता यह कहते थे कि किसी बात की चिंता नहीं करनी चाहिए। उनकी इन बातों से उनकी वैचारिकता को समझा जा सकता है– 'क्या यह काफी नहीं कि अगर चार व्यक्ति आपको गलत समझते हैं तो चार व्यक्ति आपको सही भी समझते हैं। जिस तरह प्रकृति में असंतुलन नहीं है, वैसे ही समाज में भी संतुलन बना रहता है। ऊपर वाला अपनी सृष्टि में बराबर संतुलन बनाए रखता है। प्रकृति में देखो, जहाँ विशाल पर्वत हैं, वहाँ धरती के समानांतर बहने वाली नदियाँ हैं। यदि कठोर चट्टानें हैं तो मसृण माटी भी है। ऊँचे–ऊँचे विशाल देवदारु वृक्ष हैं तो छोटी–छोटी घास भी हैं। बस, ऐसा ही संतुलन समाज में भी है। हमें चिंता नहीं करनी चाहिए।' (पृ.26–27)।

नरेश मेहता कभी भी इस बात से चिंतित नहीं होते थे कि लोग उनके बारे में क्या सोच रहे हैं और क्या कह रहे हैं। वे कभी किसी बात की सफाई नहीं देते थे। लोगों पर ही छोड़ देते थे। इस संदर्भ में ममता मेहता कहती हैं कि "असल में अपने पक्ष में, अपनी सफाई देने में इनका विश्वास ही नहीं था। साहित्यिक जीवन में भी अपने प्रति फैले भ्रम को दूर करने का इन्होंने कभी कोई प्रयत्न नहीं किया – न बोलकर, न लिखकर। इनकी मान्यता थी कि कई बार जब सामने वाला आपको गलत मान लेता है तो फिर वह आपकी हर बात को उसी नजरिए से देखता है, चाहे वह आपकी ओर से दी गई सफाई ही क्यों न हो। दुनिया की कोई सफाई आपके प्रति उसके दृष्टिकोण को उस समय तो नहीं ही बदल सकती। इसलिए उसके पीछे समय और शक्ति का अपव्यय करने की क्या आवश्यकता? अगर सामने वाले में आपके प्रति थोड़ी–सी सदाशयता होगी तो समय के साथ उसकी गलतफहमी अपने आप दूर

हो जाएगी। और अगर न हो तो न सही, क्या फर्क पड़ता है।" (उत्सव पुरुष : श्रीनरेश मेहता, पृ.26)

'हम अनिकेत' में नरेश मेहता ने लिखा है कि "जीवन किसी भी उपन्यास से कहीं अधिक औपन्यासिक होता है।" रवींद्र कालिया से बातचीत करते हुए उन्होंने एक बार कहा था कि उनके लिए जीवन कविता है। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि अम्बीशन्स पर उनका विश्वास नहीं। "मुझ पर जो लांछन बार–बार लगाया जाता है – वह सही भी होगा, मुझे कोई आपत्ति नहीं– कि साहब इनकी तो प्रोजेक पोएट्री है। ठीक है। बेसिकली मेरी सारी मानसिक तैयारी एक कवि की है।" (रवींद्र कालिया, स्मृतियों की जन्मपत्री, पृ.119)

नरेश मेहता मूलतः कवि हैं। उनकी कविताओं में असंख्य प्रकृति चित्रों को देखा जा सकता है। आकाश, बादल, सूरज, चाँद, नदी,झील,पर्वत, हिमालय, जंगल, आम्रछाँह, घाटियाँ, पृथ्वी, फूल, वृक्ष आदि अनेक रूपों में उपस्थित होते हैं। इस संदर्भ में विश्वनाथ प्रसाद तिवारी का यह कथन उल्लेखनीय है – "नरेश जी की कविता में असंख्य प्रकृति चित्रों को देखकर लगता है जैसे कवि मन पर प्रकृति का जादू है। जहाँ प्राकृतिक दृश्य आते हैं उनका वर्णन कवि बड़े उल्लास के साथ करता है।" उदाहरणकेलिएदेखेंउनकीकविता
'किरन–धेनुएँ'। इसमें प्रातः काल के रूपक को देखा जा सकता है, साथ ही श्रम संस्कृति को भी –

"उदयाचल से किरन–धेनुएँ
*हाँक ला रहा वह प्रभात का ग्वाला।****
बरस रहा आलोक–दूध है
खेतों खलिहानों में
जीवन की नव किरन फूटती
मकई औ' धानों में
सरिताओं में सोम दुह रहा वह अहीर
मतवाला।"

नरेश मेहता प्रकृति को ही सर्वोपरि मानते थे। इसीलिए वे कहते हैं –

"प्रकृति से बड़ा
कोई व्यक्ति नहीं होता
कोई शास्त्र नहीं होता, पार्थ।"

नरेश मेहता की कविता में प्रकृति ही नहीं, रिश्ते भी मुखरता के साथ विद्यमान हैं। उनकी कविता 'माँ' हृदयस्पर्शी है–

मैं नहीं जानता
क्योंकि नहीं देखा है कभी–
पर, जो भी
जहाँ भी लीपता होता है
गोबर के घर–आँगन,
जो भी
जहाँ भी प्रतिदिन दुआरे बनाता होता है
आटे–कुंकुम से अल्पना,
जो भी
जहाँ भी लोहे की कड़ाही में छौंकता होता है
मेथी की भाजी,
जो भी
जहाँ भी चिंता भरी आँखें लिए
निहारता होता है
दूर तक का पथ–
वही,
हाँ, वही है माँ!!

नरेश मेहता के लिए "रचना प्रतिश्रुति है अपने भोगे हुए उस अनुभव की– जिसे हमने अपने से पृथक की प्राप्ति के लिए वाणी दी।" 'संशय की एक रात' में उन्होंने युद्ध और शांति की प्रतिष्ठा की है –

तुम्हें लड़ना युद्ध
अपने से नहीं
अनास्था से नहीं
संशय व्यक्तित्व से भी नहीं

असत्य से

'संशय की एक रात' में उन्होंने मानवीय अस्तित्व की चिंता को भी दिखाया है –

कितने ही लघु हो
इससे क्या?
सार्थक हैं।
स्वत्व है हमारा
कर्म हमारी जलती हुई आँखों में
बंधी हुई मुट्ठी में
भींचे हुए ओठों में

नरेश मेहता का मानना है कि लूट–खसोट, युद्ध, षडयंत्र होते ही रहेंगे, तो एक दिन मानव का अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा। संपन्न होने का अर्थ है मनुष्य का स्वत्वहीन होना। इसी प्रकार 'प्रवाद पर्व' में उन्होंने राम के यथार्थवादी दृष्टिकोण को सामयिक संदर्भों से परखकर जीवन–मूल्यों की स्थापना की है–

क्या यही है मनुष्य का प्रारब्ध? कि
कर्म
निर्मम कर्म
केवल असंग कर्म करता ही चला जाए?

'महाप्रस्थान' में नरेश मेहता ने व्यक्ति की स्वतंत्रता का प्रश्न उठाने के साथ–साथ राज्य व्यवस्था में पनपते विकारों को उजागर किया है –

या उसे इतना विवश, पंगु बना दे कि
उनका अग्नि व्यक्तित्व
राज्य–व्यवस्था की निरंकुशता को कभी चुनौती न दे पाए।

नरेश मेहता के व्यक्तित्व के संबंध में ममता मेहता का यह कथन उल्लेखनीय है– "नरेश जी उस प्रजाति के व्यक्ति थे, जिस प्रजाति को रचनाकर्म संस्कार के रूप में मिला है। वे अंदर से कोमल हृदयप्रेमी जीव थे और दुख–दर्द में संघर्ष को देखते थे। उनके चिंतन का संसार असीमित था और वे बरामदे में बैठकर घंटों आसमान की तरफ देखा करते थे। उनकी मूल मानसिकता कवि की थी।" (समावर्तन, सितंबर 2017, पृ.15)।

यह सच है कि नरेश मेहता मूलतः कवि हैं पर उन्होंने गद्य साहित्य का भी सृजन किया। 'डूबते मस्तूल' (1954), 'यह पथ बंधु था' (1963), 'धूमकेतु : एक श्रुति' (1962), 'नदी यशस्वी है' (1964), 'दो एकांत' (1964), 'प्रथम फाल्गुन' (1968), 'उत्तरकथा' भाग–1, भाग–2 (1979 से 1982) आदि उनके उपन्यास हैं, तो 'तथापि' (1962), 'एक समर्पित महिला' (1965), 'जलसाघर और अन्य कहानियाँ' (1980) कहानी संग्रह। (नाटक) 'सुबह के घंटे' (1955), 'खंडित यात्राएँ' (1962), (रेडियो एकांकी) 'सनोवर के फूल' (1962), 'पिछली रात की बरफ़' (1962), (यात्रावृत्त) 'साधु न चलै जमात' (1991), (संस्मरण) 'प्रदक्षिणा : अपने समय की', (आलोचना) 'काव्य का वैष्णव व्यक्तित्व' (1972), 'मुक्तिबोध : एक अवधूत कविता' (1987), 'शब्द पुरुष : अज्ञेय' (1988), 'काव्यात्मकता दिक्काल' (1991), 'हम अनिकेत', (संपादन) 'वाग्देवी', 'गांधी गाथा', 'हिंदी साहित्य सम्मेलन का इतिहास' आदि उल्लेखनीय गद्य कृतियाँ हैं।

गद्य लेखन के संदर्भ में स्पष्ट करते हुए नरेश मेहता ने कहा कि "मैंने जीवन में कभी नहीं सोचा था कि कभी गद्य भी लिखूँगा। घटनाओं में अपने आपको बांध पाना मेरे लिए बहुत मुश्किल है, इसलिए मेरी कहानी में कोई घटना नहीं होती।"

(रवींद्र कालिया, स्मृतियों की जन्मपत्री, पृ. 120)। उन्होंने अपने सृजनात्मक लेखन से भारतीय साहित्य को समृद्ध किया। इस योगदान के लिए उन्हें सारस्वत सम्मान सम्मान (1985), मंगलाप्रसाद पारितोषक (1986), साहित्य अकादेमी पुरस्कार (1988) और भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार (1992) आदि से सम्मानित किया गया।

भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त करते समय उनके द्वारा दिए गए वक्तव्य के अंश को यहाँ उद्धृत किया जा रहा है–

"आज का मनुष्य भयाक्रांत है, इसी कारण वह इतना हिंसक और आक्रांत हो उठा है कि वह सब कुछ पदाक्रांत कर डालना चाहता है। भय के वलयों में व्यष्टि और सृष्टि ही नहीं बल्कि समष्टि के अस्तित्व का भी प्रश्न उत्तरोत्तर गहराता जा रहा है। यह मदांध स्थिति आज के सर्जनात्मकता के किसी भी पूर्व काल के संकल्प और प्रतिश्रुति से भी बड़ा संकल्प और प्रतिश्रुति चाहती है और वह तभी संभव है जब स्वयं कवि और सर्जक निर्भय हो। कवि और काव्य को अपनी इस केंद्रीयता को समझना ही होगा कि उसकी वाणी ही चैत्य–वाणी है, उसका स्वर ही आश्वस्ति का स्वर है, अतः सृष्टि के इस छंद–महोत्सव में काव्य को ही दक्षिणावर्त शंख बनना होगा।"

जाने अनजाने योग दिया जिनने/वे सब वरेण्य हैं/मुझ अपात्र के निर्माता हैं/मनुज देह में वे स्मयक हैं।

(1983), मध्यप्रदेश शिखर सम्मान (1984), उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का : भारत भारती

❑❑❑

कन्नड–हिंदी शब्दकोशों का अनुशीलन और रचना प्रक्रिया

महबूबअली अ. नदाफ

सारांशः दो भाषाओं को जोड़ने में द्विभाषा शब्दकोश महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्रस्तुत शोधपत्र में कन्नड–हिंदी द्विभाषा शब्दकोशों का परिचय करवाया गया है। कुल मिलाकर कन्नड–हिंदी के सात शब्दकोश प्रकाशित हुए हैं। यहाँ इन सात शब्दकोशों का परिचय करवाया गया है। कन्नड–हिंदी शब्दकोश के क्रमानुसार प्रकाशन स्थानों का भौगोलिक परिचय कराया गया है। शब्दकोश निर्माण एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में दोनों भाषाओं की समानता और असमानता का ध्यान रखना होता है। द्विभाषा शब्दकोश का निर्माण करते समय नए अक्षर और शब्दों का सृजन करना होता है। डॉ. एन. एस. दक्षिणामूर्ति के कन्नड–हिंदी शब्दकोश में कोश–निर्माण की रचना प्रक्रिया का परिचय कराया गया है। दक्षिणामूर्ति जी के शब्दकोश में हिंदी में ह्रस्व 'ए' और 'ओ' के लिए 'ए' और'ओ' के नीचे नुक्ता लगाया गया है। इसके संपादक दक्षिणामूर्ति के साथ अनूप सक्सेना का नाम जुड़ा हुआ है। प्रस्तुत कोश के लिए अनूप सक्सेना जी का क्या योगदान है, यह विचारणीय विषय है।

मूल शब्दः कन्नड–हिंदी कोश परिचय, भौगोलिक दृष्टिकोण, कन्नड–हिंदी कोश की रचना प्रक्रिया।

प्रस्तावनाः प्रशासन के लिए भाषा एक सशक्त माध्यम है। इसलिए शासक अपनी भाषा को जनता की भाषा के साथ जोड़ता है। राजा और प्रजा दोनों एक–दूसरे के बिना अधूरे होते हैं। इसीलिए एक–दूसरेके नजदीक आने का प्रयत्न करते हैं। राजाओं–महाराजाओं को युद्ध में जीतने के बाद प्रशासन के लिए दोनों भाषाओं को जोड़नापड़ताथा। अपनी भाषा में राजकाज चलाने के लिए स्थानीय भाषाओं का सहारा लेना पड़ता था। इसीलिए विदेशी राजाओं ने फारसी–हिंदी द्विभाषा शब्दकोश बनवाए। यहीं से द्विभाषा कोशों का निर्माण आरंभ हुआ, कह सकते हैं।

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने अपनी कोश विज्ञान किताब में खालिकबारी को हिंदी का पहला द्विभाषा शब्दकोश माना है। खालिकबारी की चर्चा करते हुए वे निष्कर्ष में बताते हैं कि "निष्कर्षतः ऐसा लगता है कि यह फारसी माध्यम से हिंदी का कोश है। इसका उद्देश्य है फारसी शब्दों के लिए हिंदी में प्रयुक्त समानार्थी शब्दों का ज्ञान कराना। फारसी में अरबी तथा तुर्की के शब्द भी हैं, अतः फारसी के साथ अरबी (काफी शब्द), तुर्की (बहुत कम) शब्द भी दिए गए हैं। असंभव नहीं कि जो ईरानी, अरब, तुर्क यहाँ आए थे, उनको अपने दैनिक जीवन में हिंदी या हिंदवीभाषी लोगों के संपर्क में आना पड़ता था, अतः उनकी दैनिक आवश्यकता के हिंदी के शब्दों का ज्ञान कराने के लिए यह ग्रंथ लिखा गया हो।"[1] यही परंपरा आगे बढ़ाते हुए अंग्रेजों ने अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं के शब्दकोश बनवाए।

स्वतंत्रता आंदोलन के समय पूरे देशवासियों को जोड़ने के लिए एक

सामान्य भाषा की आवश्यकता थी। इस जरूरत को पूरा करने के लिए हिंदी के साथ भारतीय भाषाओं को जोड़ने का काम प्रारंभ हुआ। इसके परिणामस्वरूप स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के शब्दकोश बनने लगे। दक्षिण भारत में हिंदी का प्रचार–प्रसार करने के लिए सन् 1918 ई. में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास की स्थापना हुई।

अध्ययन क्षेत्रः कन्नड–हिंदी शब्दकोशों का परिचय

1. सचित्र कन्नड–हिंदी आदर्श कोशः

प्रस्तुत शब्दकोश के संपादक पंडित जे. डी. मैसाळे, प्रो. एस् व्ही भट और प्रो. चंदूलाल दुबे हैं। इस शब्दकोश का प्रकाशन 1957 ई. में रामाश्रय बुक डिपो, वेजिटेबल मार्केट–धारवाड से हुआ है। संपादक रचना परिचय में बताते हैं कि "हमारे हिंदी–हिंदी–कन्नड रत्नकोश के संपादन के समय कन्नड–हिंदी शब्दकोश रचना का विचार मन में था। लेकिन यह कार्य उतना सुलभ नहीं था। इस दिशा में हमारा ही पहला कदम कह सकते हैं। इसलिए हमें कदम रखने में जागरूक होना पड़ा। कदम आगे बढ़ाने के लिए आवश्यक शक्ति संपादन कार्य धीरे से आगे बढ़ा।"[2]इस बात से यह पता चलता है कि यह कन्नड–हिंदी का पहला शब्दकोश है। इसमें कन्नड शब्दों का अर्थ हिंदी में समझाने के लिए चित्रों का सहारा लिया गया है। 2013 ई. मेंइसका पुनर्मुद्रण किया गया है। पुनर्मुद्रण में कन्नड शब्दों को देवनागरी लिपि में भी दिया गया है।

सभी शब्दकोशों की प्रविष्टि में पहले **अं** और बाद में **अ** की प्रविष्टि का क्रम है। सचित्र कन्नड–हिंदी आदर्श कोश की प्रविष्टि क्रम में पहले **अ** वर्ण और बाद में **अं** की प्रविष्टि को जोड़ा है। वर्णमाला के अनुसार ही इसमें प्रविष्टि क्रम है।

प्रस्तुत शब्दकोश का छोटा शब्दकोश (Pocket Dictionary) आदर्श कोश कन्नड –हिंदी के नाम से प्रकाशित हुआ है।

2. कन्नड–कन्नड–हिंदी शब्दकोशः

प्रस्तुत शब्दकोश के संपादक पंडित गुरुनाथ जोशी और बी. अश्वत्थनारायण हैं। इस शब्दकोश का प्रकाशन 1957 और 1958 ई. में बी.जी. संकेश्वर, श्री बसवेश्वर बुक डिपो, हुब्बळ्ळी से हुआ है। इसमें करीब 40,000 कन्नड शब्दों का हिंदी में अर्थ बताया गया है।

3. कन्नड–हिंदी शब्दकोशः

प्रस्तुत शब्दकोश के संपादक डॉ. एन. एस. दक्षिणामूर्ति हैं। इस शब्दकोश का प्रकाशन 1971 ई. में हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से हुआ है। इसमें करीब 24,000 कन्नड शब्दों का हिंदी में अर्थ बताया गया है। इसमें कन्नड शब्दों को कन्नड लिपि के साथ देवनागरी लिपि में भी दिया गया है। आवश्यकता पड़ने पर अर्थ को भी कन्नड और देवनागरी दोनों लिपियों में दिया गया है। इसमें प्राचीन कन्नड और संस्कृत के बहुत–से शब्द जुड़े हुए हैं। इसमें व्याकरण का परिचय और संस्कृत शब्द है तो **सम्.** का संकेत देकर सूचित किया गया है ।

इसकी हिंदी और कन्नड लिपि अस्सी के दशक की है। आज की कन्नड लिपि में थोड़ा परिवर्तन हुआ है। मूल शब्दकोश में संपादक का नाम केवल डॉ. एन. एस. दक्षिणामूर्ति का है। आजकल उपलब्ध इसी शब्दकोश में संपादक के नाम के साथ अनूप सक्सेना का नाम भी जुड़ा हुआ है। इस कोश निर्माण में अनूप सक्सेना जी का योगदान क्या है पता नहीं।

4. कन्नड–हिंदीशब्दकोशः प्रस्तुत शब्दकोश के संपादक एस् श्रीकंठमूर्ति हैं। इस शब्दकोश का प्रकाशन 1973 ई. में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास से हुआ है। इसमें करीब 17,000 कन्नड शब्दों का हिंदी में अर्थ बताया गया है।

5. जनसामान्यर कन्नड–हिंदी पदकोश : प्रस्तुत शब्दकोश के संपादक डॉ. के गणपति भट्ट हैं। इस शब्दकोश का प्रकाशन 1990 ई. में अखिला एजेन्सी, मैसूरु से हुआ है। इसमें कुल प्रविष्टियों की संख्या 1530 है। इसमें करीब 4,930 कन्नड शब्दों का हिंदी में अर्थ बताया गया है। इस पदकोश के आरंभ में देवनागरी वर्णमाला का परिचय कराया गया है। देवनागरी संख्या, लिपि और उच्चारण का परिचय कराया गया है। प्रत्येक पृष्ठ के अंत में कहावतें, मुहावरे और मध्यकालीन कवियों के सुविचारों के साथ उनके समानार्थक कन्नड कहावतें, मुहावरे और युक्तियों का अर्थ भी दिया गया है। पदकोश के अंत में व्याकरण का परिचय कराया है। दोनों भाषाओं की संख्या और पहाड़ा का परिचय करवाया गया है।

इसमें असहज लगने वाली बातें समझिए–

1. कन्नड में ऐ और औ लिखना नहीं चाहिए; इस तरह उच्चारण करना गलत है।
2. हिंदी अक्षरों में ऍ और ऑ अक्षर नहीं है।[3]

कन्नड में ऐ और औ लिखा जाता है और उच्चारण भी गलत नहीं है।

हिंदी में ह्रस्व ए और ओ के लिए हिंदी लिपि–परिवर्धन में ऍ और ऑ का निर्माण किया गया है।

6. कन्नड–हिंदी पर्यायवाची कोशः प्रस्तुत शब्दकोश के संपादक म. पार्वतम्म, नि. उमाकांत, दि. नि. राजशेखर और डॉ. टी. जी. प्रभाशंकर हैं। इस शब्दकोश का प्रकाशन 2009 ई. में आए बी एच प्रकाशन, एन आर कॉलानी, बेंगळूरु से हुआ है। इसमें समानार्थ, समीपार्थ, विरुद्दार्थ और वर्गीकृत शब्दों से सम्मिलित 31 विभागों में 10,000 से अधिक शब्द संग्रहित हैं। प्रत्येक कन्नड शब्द के लिए देवनागरी लिप्यंतरण दिया हुआ है।

7. कोडव–कन्नड–हिंदी–इंग्लिश शब्दकोशः

प्रस्तुत शब्दकोश के संपादक डॉ. अम्मटंड पार्वती अप्पय्य हैं। इस शब्दकोश का प्रकाशन 2022 ई. में द रजिस्ट्रार,कर्नाटक कोडव साहित्य अकादमी मन्न्स् कंपौंड, मडिकेरी से हुआ है। इसमें प्रत्येक शब्द के लिए एक चौक बना है। उस चौक में शब्दों को ऊपर से नीचे जोड़ा गया है। ऊपर से नीचे का वर्णक्रम– अंग्रेजी, हिंदी, कन्नड, कोडव (कन्नड लिपि में),कोडव (रोमन लिपि में) कोडव (अंतर्राष्ट्रीय उच्चारण लिपि में) है। शब्दों को जोड़ने की वरीयता को देखें तो इसका नामकरण इंग्लिश–हिंदी–कन्नड –कोडव–शब्दकोश होना चाहिए था।

भौगोलिक दृष्टिकोण–कर्नाटक दक्षिण भारत के विशाल क्षेत्र में फैला राज्य कर्नाटक है। यहाँ की प्रशासनिक भाषा कन्नड है। कन्नड–हिंदी शब्दकोशों के संपादक सबके सब कन्नडभाषी हैं। कन्नड–हिंदी शब्दकोशों के प्रकाशन स्थानों को देखें तो सर्वप्रथम उत्तर कर्नाटक के धारवाड से प्रारंभ होकर उत्तर भारत के प्रयाग पहुँचा। आगे चलकर दक्षिण भारत के मद्रास से दक्षिण कर्नाटक के मैसूरु तक पहुँचा है। प्रकाशन स्थानों को क्रमानुसार देखने से पता चलता है कि कन्नड–हिंदी शब्दकोशों का प्रकाशन कराने के लिए उत्तर भारत के प्रयाग से लेकर

दक्षिण भारत के मद्रास तक की भाग–दौड़ करनी पड़ी है।

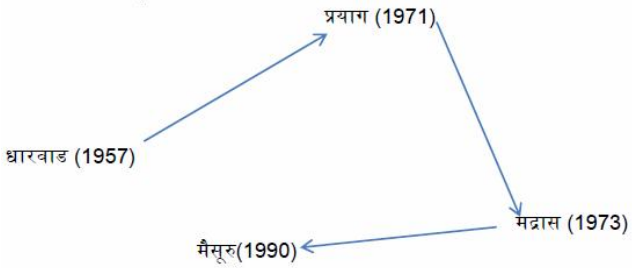

दक्षिणामूर्ति का कन्नड–हिंदी शब्दकोशः रचना प्रक्रिया

आज तक प्रकाशित कन्नड–हिंदी शब्दकोशों में प्रमुख शब्दकोश है डॉ. दक्षिणामूर्ति का कन्नड–हिंदी शब्दकोश। इसके आधार पर कन्नड–हिंदी शब्दकोश रचना प्रक्रिया का परिचय करवाया गया है। शब्दकोश की रचना प्रक्रिया को मुख्यतः तीन चरणों में विभाजन किया जाता है– शब्दकोश निर्माण का पूर्वनियोजन कार्य, शब्दकोश निर्माण कार्य और शब्दकोश प्रबंधन कार्य।

(1) शब्दकोश रचना का पूर्वनियोजन कार्य–

दक्षिणामूर्तिजी के कन्नड–हिंदी शब्दकोश के पूर्वनियोजन कार्य को लेकर प्रकाशक हिंदी साहित्य सम्मेलन के प्रधानमंत्री सुरेंद्रनारायण द्विवेदी कहते हैं कि "हिंदी साहित्य सम्मेलन ने राष्ट्रभाषा हिंदी के साथ अन्यान्य क्षेत्रीय भाषाओं के विकास और समन्वय का उद्देश्य रखकर अंतरप्रांतीय भाषा शब्दकोश की एक योजना बनाई है। इस योजना के अंतर्गत सर्वप्रथम चारों द्राविड़ भाषाओं को प्राथमिकता देकरतेलुगु–हिंदी–कोश,कन्नड–हिंदी–कोश, मलयालम–हिंदी–कोश और तमिल–हिंदी–कोश का निर्माण करना निश्चित किया गया।"[4] इसके परिणामस्वरूप कन्नड–हिंदी शब्दकोश का निर्माण हुआ है। शब्दकोश निर्माण कार्य में सर्वप्रथम उद्देश्य तय किया जाता है। अतः इस कोश का निर्माण राष्ट्रभाषा को प्रांतीय भाषाओं से जोड़ने के उद्देश्य से तैयार किया गया है।

(2) प्रविष्टियों का चयन– प्रविष्टियों (शब्दों) के संकलन का मूल स्रोत भाषा है। शब्द संकलन के संदर्भ में भाषा के दो रूप उपलब्ध हैं– लिखित भाषा और अलिखित भाषा। मनुष्य ने पहले बोलना सीखा और बाद में उसके लिए लिपि बना ली। बोलचाल की भाषा या अलिखित भाषा आगे चलकर लिखित भाषा का रूप धारण कर लेती है। शब्दकोश के लिए शब्दों का संकलन करते समय इन दोनों में थोड़ा बहुत अंतर होता है। इनमें से लिखित भाषा के शब्दों का अर्थ औरव्याकरणिक रूप अधिकतर निर्धारित हुआ रहता है। अलिखित (बोलचाल की) भाषा के शब्दों का अर्थ और व्याकरणिक रूप निर्धारित करना होता है।

वस्तुतः एक नया कोश बनाते समय पहले के कोशों का सहारा लिया जाता है। प्रस्तुत कोश में व्यावहारिक क्षेत्र से शब्दों का चयन किया गया है। प्रस्तुत कोश के संपादक लिखते हैं कि– "इस संग्रह–कार्य में मुझे निम्नलिखित कोशों से अधिक सहायता मिली है–

1) कन्नड–अंग्रेजी–शब्दकोश (रेवरेंड एफ किट्टेल)।

2) कन्नड–कन्नड–कस्तूरी–कोश (पं. चे. ए. कवलि)।

3) संस्कृत–शब्दार्थ–कौस्तुभ(चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा)।

4) वृहद–हिंदी कोश (कालिकाप्रसाद, राजवल्लभसहाय और मुकुंदीलाल श्रीवास्तव)।

5) भार्गव स्टैण्डर्ड डिक्शरी एंग्लो–हिंदी (प्रो. आर. सी पाठक)

6) कन्नड–कन्नड–हिंदी–शब्दकोश (पं.गुरुनाथजोशीऔर बी. अश्वत्थनारायण)।"[5] इसमें उस समय उपलब्ध साहित्यिक कृतियों तथा इन शब्दकोशों से शब्दों का चयन कर सहायता ली गई है ।

(3) प्रविष्टियों का क्रमः कोश में शब्दों को जोड़ने के विभिन्न क्रम होते हैं। जैसे वर्णक्रमानुसार, अंत्यवर्ण क्रमानुसार, एकाक्षर के बाद द्वयाक्षर आदि भिन्न प्रकार के शब्दकोशों का संपादन हुआ है। प्रविष्टियों को जोड़ते समय प्रत्यय और समास को जोड़कर या स्वतंत्र रूप से रखा जाता है। इसमें प्रत्यय को मुख्य शब्द की प्रविष्टि में जोड़ा गया है। आजकल वर्णक्रमानुसार शब्दकोश बनाए जा रहे हैं। यह कोश भी इससे भिन्न नहीं है। प्रस्तुत कोश की स्रोतभाषा कन्नड है और लक्ष्यभाषा हिंदी है। इसमें कन्नड वर्णमाला के अनुसार प्रविष्टियों को अकारादि क्रम में जोड़ा गया है।

(4) प्रविष्टियों का अर्थ निर्धारण करनाः प्रो. जी. वेंकटसुब्बय्य के अनुसार प्रत्येक शब्द का अर्थ अलग होता है। अर्थात्"किसी एक शब्द की बराबरी का सभी विधाओं में समान कहा जा सकनेवाला दूसरा शब्द होता ही नहीं। कुछ तो, थोड़ा अंतर होता ही है। इसलिए निघंटु संपादक प्रत्येक शब्द किस तरह उत्पन्न हुआ है; उसी के अनुसार पहला अर्थ सूचित करते हैं। अन्य सभी अर्थ समीपार्थ या व्याकरणार्थ या आलंकारिक अर्थ हैं।"[6]इसके आधार पर कह सकते हैं कि किसी भी प्रकार का शब्दकोश क्यों न हो, सौ प्रतिशत समानार्थक शब्दकोश बन नहीं सकता। प्रत्येक शब्द का अर्थ विस्तार भिन्न होता है।

प्रस्तुत शब्दकोश में मुख्य शब्द का परिचय करवाते समय उससे संबंधित समानार्थक शब्दों को संख्याएँ दी गई हैं। एक ही शब्द के भिन्नार्थो को अलग से दिया गया है। प्रविष्टियों के साथ व्याकरणिक और भाषा का परिचय दिया है। प्रविष्टियों के साथ जुडे कहावतों और मुहावरों को जोड़ा गया है।

डॉ. विश्वनाथ झा के अनुसार पर्याय शब्द और समानार्थक शब्द में अंतर है। वे अंतर को स्पष्ट करते हुए बताते हैं कि– साधारण ज्ञानी के लिए समानार्थक शब्द हैं, जैसे– सूर्य, दिनकर, रवि आदि। लेकिन भाषा विशेषज्ञ के लिए इन सब शब्दों का एक–एक विशेष अर्थ है। इस अंतर को स्पष्ट करने के लिए प्याज के छिलकों को हाथ से छीलते जाएँ तो उसके भाग एक समान होते हुए भी उनमें अंतर अवश्य होता है। अंतर देखने के लिए किनारे से केंद्र तक जाना होता है। उसी तरह शब्द के विशिष्ट रूप को जानने के लिए उसके मूल का शोध करना चाहिए। (19.12.2020 के वेबिनार में सुना हुआ विचार)

5. कोश की उपयोगिता के निर्देश – संपादक शब्दकोश का निर्माण अपनी विचारधारा के अनुसार पूरा करता है। शब्दकोश निर्माण का मुख्य उद्देश्य व्याकरण संबंधी जानकारी तथा शब्दार्थ बताना है। शब्द का व्याकरणिक परिचय कराते समय संक्षिप्त चिह्नों का प्रयोग किया जाता है। कन्नड–हिंदी द्विभाषा शब्दकोश का निर्माण करते समय हिंदी में ए और ओ दीर्घ स्वर से काम चला लेते हैं। लेकिन कन्नड में ए और ओ के ह्रस्व और दीर्घ चारों वर्णों का प्रयोग होता है। इस समस्या का समाधान करते हुए डॉ. एन एस दक्षिणामूर्ति जी अपने कन्नड–हिंदी शब्दकोश (1971) के अक्षर संक्षेप में बताते हैं कि–"ಎ -ए (ह्रस्व)

ಎ ए

ಒ -.ओ (ह्रस्व)

ಓ ओ"7

कन्नड भाषा में ह्रस्व ए और ओ दोनों का प्रयोग होता है। उन्हें लिखने के लिए हिंदी में ह्रस्व ए और ओ के नीचे बिंदी (.ए और .ओ) जोड़ दिए हैं। यह सन् 1971 ई. में प्रचलित पद्धति है।

केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने भारतीय भाषाओं को एक–दूसरे से जोड़ने के लिए देवनागरी लिपि में सुधार किया है। निदेशालय के अनुसार "संविधान की अष्टम सूची में परिगणित अन्य भारतीय भाषाओं की विशिष्ट ध्वनियों को व्यक्त करने के लिए देवनागरी वर्णमाला में जो विशेषक चिह्न(Diacritical Marks) जोड़े गए, उनकी अद्यतन स्थिति इस प्रकार है–

स्वर

ह्रस्व ए, ओ ॆ (0946), ऎ (090E), ॊ (094A), ऒ (0912)"[8] कन्नड–हिंदी शब्दकोश का निर्माण ह्रस्व ए और ओ के बिना अधूरा रह जाता है। केवल कन्नड ही नहीं अन्य भारतीय भाषाओं के लिए भी इनकी आवश्यकता है।

(6) कोश का अद्यतनीकरण– पहले से बने शब्दकोशों में सुधार अद्यतनीकरण कहलाता है। एक शब्दकोश का संपादन करते समय उससे पहले बने शब्दकोशों से शब्द लिए जाते हैं। इसके अंतर्गत लिपि, उच्चारण, वर्तनी की गलतियों को सुधार लिया जाता है। उनमें से जिन शब्दों का अर्थ बदला हुआ है उस पुरातन अर्थ के साथ नये प्रचलित अर्थ को जोड़ दिया जाता है। इस अद्यतनीकरण कार्य के लिए संपादकप्रकाशक से संपर्क करने का संदर्भ नहीं देते।

आजतक निर्मित कन्नड–हिंदी शब्द–कोशों की संख्या सात ही है। कन्नड और हिंदी दोनों भाषाओं की लिपियों में बहुत से बदलाव हुए हैं। इन बीस वर्षों में एक भी नया कन्नड–हिंदी शब्दकोश प्रकाशित नहीं हुआ है। कवर पेज बदलकर प्रकाशित किया जा रहा है। इन्हीं में से कुछ शब्दकोशों का पुनर्मुद्रण हो रहा है। कन्नड–हिंदी शब्दकोशों के परिष्करण की आवश्यकता है।

(7) शब्दकोश का प्रबंधन– शब्दकोश का निर्माण होने के बाद प्रबंधन कार्य आरंभ होता है। कोश निर्माता पूर्वनियोजन के अनुसार कार्य करते समय कुछ योजनाओं को अनिवार्य संदर्भ में बदलता है। इसमें कुछ विषयों को जोड़ना होता है। कुछ विषयों को छोड़ना पड़ता है। कुछ विषय न जोड़ पाता है न छोड़ पाता है। इस मध्यम स्थिति के विषयों को अंत में परिशिष्ट में दिया जाता है।

शब्दकोश संबंधी जानकारी दो तरह से उपलब्ध कराई जाती है। एक तो प्रकाशक स्वयं प्रकाशकीय में बता देता है। प्रकाशक उसमें कोश को बेचने की दृष्टि से अपनी बात लिखता है। कुछ प्रकाशक संपादकीय को जगह नहीं देते, कुछ प्रकाशक जगह देते हैं। दूसरा तरीका संपादक संपादन कार्य और प्रकाशन की जिम्मेदारी ले लेता है। तब संपादक अपने विचारों को संपादकीय में विस्तार से समझाता है।

अधिकतर बड़े शब्दकोश किसी संस्था, संगठन या समिति के सहयोग से तैयार किए जाते हैं। उसमें शब्दकोश निर्माण

संबंधी संपूर्ण जानकारी दी जाती है। प्रस्तुत शब्दकोश हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से प्रकाशित हुआ है। इसलिए प्रकाशक, संस्था और संपादक तीनों को यहाँ अपने विचार प्रकट करने का अवसर प्राप्त हुआ है।

संपादक के संबंध में– प्रस्तुत कन्नड–हिंदी शब्दकोश के संपादक डॉ. एन एस दक्षिणामूर्ति जी कर्नाटक के मैसूरु विश्वविद्यालय से सेवानिवृत्त हुए हैं। आपका कन्नड–हिंदी शब्दकोश आज भी अंतर्जाल पर जैसा का तैसा उपलब्ध है। मूल शब्दकोश पर केवल डॉ. एन एस दक्षिणामूर्ति जी का नाम है। निम्नलिखित वेबसाइट की जानकारी के अनुसार आजकल उसमें एक और संपादक अनूप सक्सेना का नाम जुड़ा हुआ है।

निष्कर्ष–

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कन्नड–हिंदी शब्दकोशों का निर्माण कार्य प्रारंभ हुआ है। इन पचहत्तर वर्षों में सात कन्नड–हिंदी शब्दकोश ही बन पाए हैं। उन सात कोशों में से कुछ शब्दकोशों की जानकारी अधूरी है। इनमें से जे डी मैसाले और गुरुनाथ जोशी के शब्दकोशों का पुनर्मुद्रण किया जा रहा है। वास्तव में दक्षिणामूर्ति जी का शब्दकोश आकार में इन दोनों से बड़ा है। कन्नड और हिंदी दोनों लिपियों में बहुत से परिवर्तन हुए हैं। इसलिए प्रविष्टियों के अर्थ के साथ लिपियों में सुधार करने की आवश्यकता है। इन सात कन्नड–हिंदी शब्दकोशों के आधार पर एक नया शब्दकोश निर्माण करने की आवश्यकता है। कन्नड–हिंदी शब्दकोश संपादकों का परिचय अपूर्ण रहने से उसे यहाँ दिया नहीं गया। संपादकों की जानकारी देने से बहुत–सी समस्याओं का समाधान हो सकता है। प्रस्तुत कन्नड और हिंदी को जोड़ने वाली प्रमुख संस्था दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, धारवाड और केंद्रीय हिंदी संस्थान, मैसूरु हैं। इनके सहारे यह कार्य संभव हो सकता है ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. भोलानाथ तिवारी. कोशविज्ञान (137). दिल्ली : शब्दकार 2203, गली डकौतान तुर्कमान गेट, 1979
2. पंडित जे डी मैसाळे. सचित्र कन्नड–हिंदी आदर्श कोश (चरना परिचय). धारवाडः रामाश्रय बुक डिपो, वेजिटेबल मार्केट, 1957
3. डॉ. के. गणपति भट्ट–जनसामान्यर कन्नड–हिंदी पदकोश (देवनागरी वर्णमाला). मैसूरुः अखिला एजेन्सी,1990
4. डॉ. एन एस दक्षिणामूर्ति. कन्नड–हिंदी शब्दकोश (प्रकाशकीय). प्रयागः हिंदी साहित्य सम्मेलन, 1971
5. डॉ. एन एस दक्षिणामूर्ति. कन्नड–हिंदी शब्दकोश (निवेदन). प्रयाग : हिंदी साहित्य सम्मेलन, 1971
6. प्रो. जी. वेंकटसुब्बय्य. इगो कन्नड निघंटु (27). बेंगलूरु : नवकर्नाटक पब्लिकेशन्स, 1996
7. डॉ. एन एस दक्षिणामूर्ति. कन्नड–हिंदी शब्दकोश (अक्षर संकेत). प्रयागः हिंदी साहित्य सम्मेलन, 1971
8. देवनागरी लिपि तथा हिंदी वर्तनी का मानकीकरण (08). दिल्ली, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, 2019
9. पंडित जे डी मैसाळे – सचित्र कन्नड–हिंदी आदर्श कोश पृ. सं. (चरना परिचय V) (नम्म हिंदी–हिंदी–कन्नड रत्नकोशद संपादनेय समयदल्लिये कन्नड–हिंदी कोशवन्नु रचिसुव विचार मनदल्लि मूडित्तु. आदरे ई कार्य अष्टोंदु सुलभवागिरलिल्ल. याकंदरे 'कन्नड–हिंदी कोश' बरेयुव साहस इन्नू यारू माडिरलिल्ल. ई मार्गदल्लि नम्मदे

मोदल हॆज्जॆ ऎन्नबहुदु. आद्दरिंद नावु ई हॆज्जॆयन्निडबेकादरॆ अत्यंत जागरूकतॆयन्नु वहिसबेकायितु. हॆज्जॆ मुंदिडुवुदक्कागि आवश्यक शक्ति संपादनॆय कार्य सावधानवागि मुंदुवरॆयितु.)

10. डॉ. के. गणपति भट्ट – जनसामान्यर कन्नड–हिंदी पदकोश पृ. सं. (देवनागरी वर्णमाला) (तिळियिरि)

(1) कन्नडदल्ली ऐ ಐऔಔएंदु बरेयबारदु; ई

रीति उच्चरिसुवुदु तप्पु

(2) हिंदी अक्षरदल्लि ऎ मत्तु ऒ अक्षरगळु इल्ल.)

11. प्रो. जी. वेंकटसुब्बय्य–इगो कन्नड निघुं प्र.स. 27 (याव ऒंदु शब्दक्कू सरिसमानवाद, ऎल्ल विधदल्लि समानवॆंदु हेकहुदाद बेरॆय शब्द इरूवुदे इल्ल–एनादरू स्वल्प व्यत्यास इद्दे इरूत्तदॆ। आद्दरिंद निघंटुकाररू निघंटुकाररू प्रतियॊंद शब्दवु हॆगॆ उत्पत्ति हॉदिदॆयो अदन्नु अनुसरिसि मॊदल अर्थ सुचिसुत्तारॆ। इतर अर्थगछॆल्लवू समिपार्थगळु अथवा आलंकारिक अर्थगळु।)

❑❑❑

हिंदी में आलोचना और रमेशचंद्र शाह का आलोचना–कर्म

हनुमान प्रसाद शुक्ल

भारतीय साहित्य–चिंतन–परंपरा में काव्य के आस्वादक या मर्मज्ञ के लिए अनेक पद प्रयुक्त हुए हैं–भावक, रसिक, विदग्ध, सुमनस्, सचेतस्, सहृदय आदि। ये पद काव्यास्वादन की विशिष्ट छवियाँ तो उपस्थित करते ही हैं; साथ ही एक चैतन्य समाज द्वारा अपने समूह–मानस की आस्वादन–सामर्थ्य के विकास और संश्लेषण को भी सूचित करते हैं। इस संश्लेषण की चरम सिद्धि संपन्न हुई 'सहृदय' पद में। इस पद की व्याख्या करते हुए आचार्य अभिनवगुप्त ने लिखा–"येषां
काव्यानुशीलनाभ्यासवशाद्विशदीभूते
मनोमुकुरे वर्णनीयतन्मयीभवनयोग्यता ते स्वहृदयसंवादभाजः सहृदयाः।"

(काव्य के गहन अनुशीलन के अभ्यास से जिनका हृदय–दर्पण निर्मल हो गया है; और इसलिए उस हृदय–दर्पण में वर्णनीय विषय के साथ तन्मय होने की क्षमता (योग्यता) आ गई है; वे ही काव्यार्थ के साथ अपने हृदय का संवाद स्थापित करने वाले सहृदय हैं।)

रमेशचंद्र शाह इसी अर्थ में सच्चे 'सहृदय' हैं; किंतु उनकी यह सहृदयता 'बौद्धिकप्रश्नाकुलता' से संवलित है। काव्य या साहित्य के मर्म पर रीझकर उसका बोध प्राप्त करने–कराने के लिए की गई उनकी समूची आलोचना और समीक्षा सहृदयता की जमीन पर इसी बौद्धिक प्रश्नाकुलता से उपजी है। सहृदयता मनुष्य–वृत्ति है, बौद्धिक प्रश्नाकुलता युग–वृत्ति है। हमारे समय का संवेदन इन दोनों के युगपत् समीकरण या संश्लेष में ही संभव है। रमेशचंद्र शाह इस बात को भली–भाँति समझते हैं। अपनी आरंभिक आलोचना–कृति 'छायावाद की प्रासंगिकता' में ही प्रसाद के बारे में लिखते हुए उन्होंने कह दिया था कि वे 'अनुभूति और बुद्धि के रासायनिक संश्लेष के कवि' हैं। यह बात उनके आलोचना–कर्म से प्रमाणित होती रही है।

सहृदयता की यह धारणा भारतीय साहित्य–परंपरा के समूचे देश–काल में मान्य रही है। मध्यकाल के प्रसिद्ध हिंदी कवि बिहारीलाल इसकी तसदीक यों करते हैं– "तंत्री नाद कबित्त रस सरस राग रति रंग। बूड़े अनबूड़े तिरे जे बूड़े सब अंग।।"

तो, रमेशचंद्र शाह काव्य–सागर में डुबकी लगाकर पार उतरने वाले और अपने पाठकों को उसका युक्ति–बोध कराने वाले हिंदी के अनूठे आलोचकों में से एक हैं।

[2]

भारतीय साहित्य के परिप्रेक्ष्य में आलोचना एक आधुनिकयुगीन गतिविधि है। काव्यशास्त्रीय/लक्षण ग्रंथों में आलोचना जैसी वस्तु विरल है; बात आस्वादन या परिशंसन से आगे नहीं जाती। आधुनिकता के तत्व हैं– जिज्ञासा, संशय, प्रश्न, तर्क,बुद्धि, लौकिकता/भौतिकता। भाववाद अर्थात आध्यात्मिकतासे उसका स्पष्ट विरोध है। अतः यह स्वाभाविक है कि इन दोनों में टकराव हो। एक आधुनिकयुगीन भारतीय लेखक–आलोचक के सामने यह चुनौती

विकट रूप में उपस्थित रही है। हर लेखक ने अपने–अपने ढंग से इसका सामना किया है। इसके अनेकविध परिणाम हुए हैं। तो, आलोचना फिर एक बौद्धिक गतिविधि हुई; इस कारण बहुत कुछ स्वाधीन। पर क्या स्वयंपर्याप्त भी? नहीं। रचना/सर्जना से प्रेरित और उसकी सहयोगिनी। उससे स्वतंत्र और असंपृक्त होकर उसका कोई प्रयोजन नहीं बचता।

कह सकते हैं कि रचना/सर्जना और आलोचना में सहसंबंध है, विस्तार में जाकर इसे पेचीदा बनाना गैरज़रूरी है। पर इस सहसंबंध का स्वरूप क्या हो? बीती और वर्तमान शताब्दी के गुज़रे हुए सालों पर निगाह डालें तो दो तरह की प्रवृत्तियाँ प्रधान रूप से दिखाई पड़ती हैं।

पहली प्रवृत्ति वह है, जिसमें आलोचक मुग्धभाव से किसी विचार–दृष्टि का शरणागत होता है। उसको लगता है कि सत्य या मर्म का परम साक्षात्कार उसने पा लिया है। यह विचार–दृष्टि उसे ऐसे बने–बनाए साँचे या पैमाने उपलब्ध कराती है, जिससे उसे लगता है कि वह कोई रचना तो क्या पूरी दुनिया माप सकता है। बिना रचना को देखे–पढ़े ही वह उसकी मूल्यवत्ता या निरर्थकता सिद्ध कर देता है। ये निष्कर्ष उस संप्रदाय के अनुयायियों के लिए 'बाइबिल' या 'कुरान' या 'गीता' जैसी हैसियत ग्रहण कर लेते हैं। इन विचार–दृष्टियों का किसी रचना से या उसके सर्जक से संवाद हो ही नहीं सकता; क्योंकि वे अपनी बनावट में नितांत जड़, रूढ़ और बंद होती हैं। साहित्य–संसार में इन विचार–दृष्टियों द्वारा पैदा की गई संवेदन–निरपेक्षता से संसार परिचित ही है।

दूसरी प्रवृत्ति वह है, जिसमें आलोचक रचना से सीधे संबंध में आता है ख़ालिस अपने भाव–यंत्र के भरोसे। वह निष्ठापूर्वक रचना की अंतरंगता अर्जित करता है और उसका मर्म अपने लिए लभ्य बना लेता है। साधारण पाठक से आलोचक का अंतर इस बात में होता है कि वह अपने भावयंत्र को निरंतर धार देता रहता है, जिससे उसका भावतंत्र परिष्कृत होकर विशिष्ट हो जाता है; उसकी भावन–सामर्थ्य बढ़ जाती है। इसीलिए इस तरह के हर आलोचक को रचना से अपना रिश्ता स्वयं के प्रयत्न से अर्जित करना पड़ता है। यह रिश्ता कितना प्रामाणिक है, इसका निश्चय उसकी 'तन्मयीभवनयोग्यता' से होता है। यह जितनी अधिक होगी, साधारण पाठकों से आलोचक की साझेदारी उतनी ही अधिक होगी। किंतु इसके लिए पाठक को भी रचना से अवश्य गुजरना चाहिए; वह केवल आलोचक के भरोसे निश्चिंत नहीं रह सकता। कारण कि रचना को खोलने के आलोचक के औज़ार तो आधुनिक हैं, ऐसी दशा में पाठक का रचना से अपरिचय आलोचना को अप्रासंगिक यानी निरर्थक बना देगा। आलोचना की यह धारा ही बृहत्तर पाठक समुदाय के साथ संबंध जोड़ पाती है और उस समुदाय की जातीय चेतना को संवर्धित और परिमार्जित करती है। इस तरह वह स्वयं और आलोचना–कर्म मात्र के होने के औचित्य को स्थापित करती है। ऐसी आलोचनाएँ एक सजग, संवेदनक्षम और प्रखर पाठक समुदाय की चेतना पर निरंतर सान चढ़ाने का कार्य करती हैं। रमेशचंद्र शाह इसी प्रवाह के आलोचक हैं, जो कृतसंकल्प होकर अपने आलोचना–कर्म से हिंदी समुदाय को जागृत रखने के लिए निरंतर उसका आवाहन करते रहे हैं। आलोचना की इस धारा को 'सर्जनात्मक आलोचना' भी कहा जाता है,

क्योंकि वह रचना की व्याख्या–विवेचना या भाष्य भर नहीं होती; बल्कि उसकी अंतरंग साझेदारी हासिल कर उसका अर्थ–संवर्धन भी करती है। किंतु, वह स्वयं रचना से स्वतंत्र प्रतिरचना नहीं बन जाती। हिंदी में 'सर्जनात्मक आलोचना या समीक्षा' पद का कदाचित् पहली बार प्रयोग करने वाले आलोचक रमेशचंद्र शाह ही हैं।

[3]

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने काफी पहले हिंदीभाषी समाज की स्थिति पर चिंता व्यक्त करते हुए लिखा था कि, "हिंदीभाषी समाज अब तक सुगठित समाज नहीं है। उसकी आवाज लेखकों तक पहुँच नहीं पाती। हिंदी का पाठक, नौसिखिये विद्यार्थी की तरह, बिना प्रश्न किए ही सब कुछ स्वीकार करने को तैयार रहता है।" (आधुनिक साहित्य; सृजन और समीक्षा, प्रथम संस्करण–1978, पृष्ठ–117)

यानी हिंदीभाषी समाज न केवल सुगठित समाज नहीं है; बल्कि वह लापरवाही और मानसिक–शैथिल्य का भी शिकार है। एक आधुनिक समाज के अनुरूप बौद्धिकता और वस्तुनिष्ठता का भी उसमें नितांत अभाव है; एक समुदाय के रूप में उसका बरताव व्यक्तिनिष्ठ ही है। उदाहरण के लिए राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में उसने बड़ी भूमिका निभाई, किंतु स्वाधीनता के बाद उसे सहेजने में उतना ही लापरवाह और शिथिल रहा, जिसका भारतीय राजनेताओं ने भरपूर लाभ उठाया। जिन आदर्शों के लिए स्वाधीनता का विराट उपक्रम हुआ, वे सब इतनी तेजी से हवा में उड़ गए और हिंदी समाज बिलकुल बेख़बर ही नहीं रहा, उसने उनसे अपनी कोई संपृक्ति भी प्रदर्शित नहीं की। परिणाम सामने है; राजनीति ने सर्वग्रास कर लिया। आचार्य वाजपेयी ने इस संबंध में अपनी चिंता और बेचैनी प्रकट की थी– "जिस दिन अपने देश में प्रजातंत्र का यह आदर्श बन जाएगा कि राजनीति के माध्यम से आगे बढ़े हुए लोग ही देश के सबसे बड़े और सच्चे प्रतिनिधि हैं, वह दिन सचमुच बड़े दुर्भाग्य का होगा।" (आधुनिक साहित्यः सृजन और समीक्षा, प्रथम संस्करण–1978, पृष्ठ–123) कहने की ज़रूरत नहीं कि हम आज इस दुर्भाग्य को भुगत रहे हैं; इससे निष्कृति का कोई मार्ग हम खोजने में फिलहाल असमर्थ दिख रहे हैं। इसीलिए अज्ञेयजी ने हमें चेताते हुए लिखा था– "यदि हम जीवन के गौरव की रक्षा करना चाहते हैं तो हमें परखने और मुकाबला करने की शक्ति को संगठित करना होगा, हमें एक आलोचक राष्ट्र का निर्माण करना होगा।" (त्रिशंकु, संस्करण–2010, पृष्ठ–51)

आधुनिक समय में जीवन के गौरव की रक्षा और आलोचक राष्ट्र के निर्माण की आकांक्षा एक बौद्धिक और जागरूक समाज अपने बरताव में वस्तुनिष्ठ रह कर ही पूरा कर सकता है। किंतु, हिंदी समाज मानव–शिशु की तरह परमुखापेक्षी है। ऐसी स्थिति में हिंदी के बौद्धिकों–लेखकों का दायित्व बहुत बढ़ जाता है। उनसे अपेक्षा हो जाती है कि वे इसका पितृवत् न केवल पोषण करें; बल्कि मार्गदर्शन भी करें, जिससे वह आत्मगौरव से संपन्न और जाग्रत समाज में परिणत हो सके। ऐसा नहीं है कि हिंदी बौद्धिकों–लेखकों ने इस भूमिका की नितांत उपेक्षा ही की है। अनेक लेखकों ने गहरे दायित्वबोध के साथ अपने इस कर्त्तव्य का निर्वाह किया है; फिर भी हिंदी समाज अभी बहुत पिछड़ा, दकियानूस और विभाजित समाज है और पर्याप्त

जागृति एवं अपेक्षित तेजस्विता से वंचित है। इसे उबारने के लिए बौद्धिकों–लेखकों को अनवरत सक्रिय भूमिका निभानी है। रमेशचंद्र शाह यह भूमिका पूरी शिद्दत और सामर्थ्य से निभाने की कोशिश करते रहे हैं। पर हिंदी समाज से आत्मचेतस् होने की उनकी अपेक्षा भी जायज है। आखिर मानव–शिशु भी आत्मनिर्भर होने के लिए कोशिश करता और छटपटाता देखा ही जाता है।

हिंदी लेखक समुदाय, जिस पर हिंदी समाज की दीक्षा और उसे बौद्धिक ऊर्जा से संपन्न करने की जिम्मेदारी है, स्वयं भी कई विडंबनाओं से ग्रस्त है। एक तरफ कुछ हितसमूह हैं, दूसरी तरफ विचारधारा के समूह; कोई प्रगतिवादी है तो कोई कलावादी और कुछ–कुछ अन्य भी। कई प्रकार के प्रलोभनों का भी दबाव है; पुरस्कार–सम्मान हैं, अलंकरण हैं, पद और पीठें हैं, आयोग और समितियाँ हैं; लेखक किस–किस से उबरे, चुनौती बड़ी है; उबरने वाले उबरते भी हैं, बहुत फिसल भी जाते हैं। किसी समूह का न होना, कहीं का भी न हो जाना हो जाया करता है; सभी उससे परहेज करते देखे जाते हैं। इस उपेक्षा को सहना और अपनी चेतना की स्वाधीनता के लिए अडिग रहना किसी भी सम्मान–अलंकरण आदि से बड़ी उपलब्धि है। इसका दूसरा पहलू है सबका–पूरे समुदाय का–हो सकने की कोशिश करना। इसका परिणाम भी कमोबेश वही होता है; क्योंकि किसी के हित–विशेष का संरक्षण और पोषण न कर सकने से भी अवहेलना ही मिलती है, कोई आपके साथ नहीं होता। हिंदी समाज की भी विडंबना है कि वह अपने स्वाधीनचेता बौद्धिक को स्वाधीन रह सकने का पर्यावरण दे सकने में अशक्य है। कदाचित स्वाधीनता की चेतना और उसके तेज को धारण करने और सहने की उसमें ताब ही नहीं बची है। रमेशचंद्र शाह ने इसी हिंदी समाज के बीच, उसका लेखक होकर, अपना लेखन किया है।

उन्होंने अपनी चेतना की स्वाधीनता बनाए रखने के लिए संघर्ष करते हुए हिंदी समाज को जागरूक करने एवं उसे बौद्धिक ऊर्जा से संपन्न करने की भरसक कोशिश की है। आरोप उन पर भी लगे हैं कलावादी खेमे और भोपाल स्कूल से संबद्ध होने के; किंतु उन्होंने पूरी शालीनता के साथ अपने लेखनगत सरोकारों से इसका समर्थ प्रतिवाद किया। आरोप करने वाले अक्सर वही लोग रहे हैं, जो स्वयं ऐसी दलदल में गहरे धँसे हुए हैं और अपनी स्वाधीनता गिरवी रखे हुए हैं। जो स्वाधीन नहीं होगा, वह लेखक क्या और कैसे होगा?

हिंदी समाज बौद्धिक और स्वाधीन होने के लिए जरूरी संस्थानों और संस्कृति का भी पोषण करने में विफल रहा है। गुलाम भारत में भी जो संस्थाएँ खड़ी हुई थीं, वे भी धीरे–धीरे छीजती हुई नष्ट नहीं तो नष्टप्राय अवश्य हो गईं। पुस्तक–संस्कृति तो बनने से पहले ही बिखर गई, पढ़ने की तड़प हिंदी समाज में है ही नहीं। इस समाज में महँगे उपहारों का चलन तो है, पर कभी कोई किसी को सस्ती–महँगी पुस्तक उपहार में देता हुआ नहीं देखा जाता। पुस्तक की चर्चा होते ही व्यक्ति उसके महँगे होने की बात कुछ इस तरह करता है, जैसे सचमुच पुस्तक पढ़ना उसका सबसे बड़ा व्यसन है। यदि किताबें महँगी न होतीं तो जैसे पुस्तक ख़रीदना उसके मासिक बजट और नित्यचर्या का अनिवार्य हिस्सा होता। इस संदर्भ में ऐसे

बहानेबाज समाज कम ही मिलेंगे। हिंदी समाज से बड़ा बहानेबाज उसका प्रकाशक समूह और पुस्तक–व्यवसायी है। उसने अपना कारोबार हिंदी समाज के लिए कभी नहीं किया। पाठक की कमी और पुस्तक की बिक्री न होने का रोना रोने वाले प्रकाशक इस व्यवसाय को बंद करने के बारे में नहीं सोचते, इनकी अगली पीढ़ियाँ भी तितिक्षा का व्रत लेकर उसी काम को आगे बढ़ाती अक्सर देखी जाती हैं। किंतु बिक्री न होने पर भी इनकी संपदा बढ़ती जाती है; कैसे, यह पूरा देश जानता है। बेचारे प्रकाशक लेखक को रॉयल्टी तक नहीं दे पाते; कुछ कृपालु किस्म के प्रकाशक अपनेलेखकों को कभी–कभी, पूरी ईमानदारी से, हजार–पाँच सौ तो दे ही देते हैं। क्या कहा जाए, पर पुस्तक व्यवसाय का रहस्यवाद बड़ा बेढब है! जो भी हो, पर सदाशयता से हमारा भरोसा आत्यंतिक रूप से नहीं उठ जाना चाहिए, हमें आशा बनाए रखनी चाहिए।

[4]

किसी भी समुदाय में आलोचना दो प्रकार के दायित्वों का निर्वहन करती है; कम–से–कम उसे करना चाहिए। एक तो रचना–विशेष की समीक्षा और समूचे कवि–कर्म का वैशिष्ट्य–निरूपण एवं आकलन। दूसरे उस समाज में रचना को संभव कर सकने वाली स्थितियों की चौकसी यानी एक जनतांत्रिक और स्वाधीन चिंता एवं चेतना का पर्यावरण संरक्षित हो, इसकी पहरेदारी; क्योंकि इसके बिना आलोचना–कर्म संभव नहीं। कोई भी बड़ा आलोचक इन दोनों ही दायित्वों का अनिवार्यतः निर्वाह करता है। रमेशचंद्र शाह की आलोचना भी उनके द्वारा निभाए गए दायित्वों से प्रीतिकर परिचय कराती है।

हिंदी में रूप–आकार की दृष्टि से आलोचना के दो प्रकार चलन में हैं। एक प्रबंधात्मक और दूसरा निबंधात्मक। प्रबंधात्मक आलोचना में विषय–विस्तार की जैसी पूर्णता और पर्याप्तता के लिए अवसर होता है, निबंधाकृति वाली आलोचनाओं में वैसा नहीं होता। इसलिए बहुत से लोग प्रबंधात्मक आलोचना को बेहतर मानते हैं और निबंधों के रूप में आलोचनात्मक लेखन की बढ़ती प्रवृत्ति को सुविधाजनक मानते हुए चिंता भी व्यक्त करते हैं। आलोचक रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं–"रामचंद्र शुक्ल के बाद, नंददुलारे वाजपेयी के समय से ही हिंदी आलोचना में यह स्फुटवृत्ति ऐसा घर कर गई है कि संपूर्ण और व्यवस्थित अध्ययन, विशेषतः आधुनिक साहित्य के संदर्भ में, देखने में नहीं आते।"(हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, सातवाँ संस्करण–1997, पृष्ठ–263)

पर रमेशचंद्र शाह, नामवर सिंह की तरह ही, प्रबंध या ग्रंथ–आग्रही विद्वानों से अपनी असहमति व्यक्त करते हुए कहते हैं–"...निबंध भी आलोचना–कर्म के लिए उतना ही स्वाभाविक और विश्वसनीय माध्यम है : और एक शोध प्रबंध सी संरचना वाले ग्रंथ से उनकी जो भी अपेक्षाएँ हों, उन्हें निबंधों का सुनियोजित संकलन भी काफी दूर तक निभा ले जा सकता है : अपनी अंतर्निष्ठ एकाग्रता–एकसूत्रता के चलते।"(समय संवादी, प्रथम संस्करण–2005, प्राक्कथन : पृष्ठ–7)

शाह जी की इस असहमति की प्रामाणिकता के लिए उनकी आलोचना–कृति 'छायावाद की प्रासंगिकता' की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया जा सकता है। इसी प्रकार, वत्सल निधि की ओर से हीरानंद शास्त्री स्मृति व्याख्यानमाला के

अंतर्गत अज्ञेय पर दिए गए उनके चार व्याख्यानों, जो अब 'अज्ञेयः वागर्थ का वैभव' शीर्षक से प्रकाशित हैं, का भी इस संदर्भ में उल्लेख किया जा सकता है। यों, शाहजी ने साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली के लिए 'जयशंकर प्रसाद' और 'अज्ञेय' पर व्यवस्थित विनिबंध भी लिखे ही हैं। हाँ, निबंध उन्हें अपने स्वभाव के अधिक निकट प्रतीत होते हैं। आखिर नंददुलारे वाजपेयी, विजयदेव नारायण साही, नामवर सिंह, निर्मलवर्मा, कुँवर नारायण, मलयज, देवीशंकर अवस्थी आदि ने अपने आलोचनात्मक निबंधों से हिंदी आलोचना को समृद्ध करने में बड़ी भूमिका निभाई ही है।

विधाओं की हदबंदी का सवाल भी हिंदी आलोचना के संदर्भ में विचारणीय है। बहुत से लेखक ऐसे होते हैं, जो एक ही विधा में निष्ठापूर्वक रचनारत रह जाते हैं। पर इसे किसी दशा में आदर्श या हीन स्थिति के रूप में नहीं देखा जा सकता। अनेक कारणों से आधुनिक युग में विधाओं के जितने और जैसे विकल्प सुलभ हैं, वैसे पहले नहीं थे। दरअसल विधा का स्वरूप रचनाकार के स्वभाव, उसकी दृष्टि एवं कथ्य, रचनावस्तु, युगधर्म, भाषा आदि अनेक चीजों से तय होता है। कोई भी लेखक किसी एक विधा में एकांतनिष्ठा से लिख सकता है, विभिन्न विधाओं में आवाजाही कर सकता है; या फिर उनका संश्लेष भी विकसित कर सकता है। यह लेखक की अपनी प्रकृति और चुनाव पर निर्भर करता है। प्रसाद और अज्ञेय के गद्य और कविता के बीच गहरी अंतस्संबद्धता है। निर्मल वर्मा की कहानियों, निबंधों और डायरी में परस्परपूरकता का संबंध देखा जा सकता है। कुँवर नारायण ने यशपाल के 'झूठा–सच' में 'कवि–दृष्टि का अभाव' देखा है, जिस कारण वह एक महान औपन्यासिक कृति होने से चूक जाती है। रमेशचंद्र शाह का मत है कि मुक्तिबोध कविता और कहानी की जगह उपन्यास को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाते तो वह एक बेहतर चुनाव होता। स्वयं शाहजी भी अपने को मूलतः कवि–स्वभाव मानते हैं, कविता से अधिक तादात्म्य महसूस करते हैं; पर लिखते नाना विधाओं में हैं। अपनी संवेदना,अनुभूति,बेचैनी–बेकलीऔर रसज्ञता की अभिव्यक्ति के लिए उनका भी काम केवल कविता से नहीं चलता।

[5]

रमेशचंद्र शाह हिंदी में मुख्यतः छायावाद और नयी कविता तथा उसके समकालीन गद्य के आलोचक हैं। किंतु, छिटपुट कुछ अन्य कवियों; जैसे कबीर और तुलसी पर भी उनके लेख हैं ही। इसलिए छायावाद और नयी कविता की रचनाएँ उनकी आलोचना की आत्यंतिक सीमाएँ नहीं मानी जानी चाहिए। जैसे हर लेखक या आलोचक की अपनी रुचि या चयनदृष्टि होती है, वैसे ही रमेशचंद्र शाह की भी है। प्रसाद, निराला और अज्ञेय उनके सबसे प्रिय कवि हैं, पर लिखा उन्होंने सर्वाधिक अज्ञेय पर ही है; निराला पर सबसे कम। प्रसाद और छायावाद पर भले ही उन्होंने आनुपातिक रूप से अज्ञेय की तुलना में कम लिखा हो, पर प्रसाद के पुनर्मूल्यांकन की नयी शुरुआत का श्रेय उन्हें ही प्राप्त है। इन तीनों के अलावा उन्होंने जिन रचनाकारों और उनकी रचनाओं पर लिखा है, उनमें प्रमुख हैं– मैथिलीशरण गुप्त, पंत, महादेवी, प्रेमचंद, हजारीप्रसाद द्विवेदी, मुक्तिबोध, शमशेर, विजयदेवनारायण साही, सर्वेश्वर, विपिन अग्रवाल, कुँवर नारायण, निर्मल वर्मा, फणीश्वरनाथ रेणु, राय

कृष्णदास, राहुल सांकृत्यायन, मलयज, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा, धूमिल, भवानीप्रसाद मिश्र, रामस्वरूप चतुर्वेदी, विद्यानिवास मिश्र, दया पवार, शाम लाल, वी.एस. नायपॉल आदि।

अज्ञेय शाहजी के सबसे प्रिय कवियों में हैं। उन्हें उनका स्नेह और सानिध्य भी प्राप्त रहा, पर निजी संबंध और रुचि उनकी आलोचना के नियामक कभी नहीं रहे; वैसे ही जैसे पहले से निश्चित कोई प्रतिमान या विचार उनकी आलोचना के प्रेरक और निर्देशक नहीं रहे। अज्ञेय की रचना 'आँगन के पार द्वार' की समीक्षा करते हुए, प्रमाणस्वरूप, उन्होंने लिखा– "आँगन के पार द्वार' को पढ़ते हुए पहली बात जो ध्यान में आती है, वह यही कि इसकी कविताओं में पिछले संग्रहों की अपेक्षा काव्यवस्तु का और संवेदनात्मक प्रतिक्रियाओं का भी वैविध्य कम है। एक दूसरे से पृथक् और विशिष्ट, यहाँ तक कि स्पष्टतः अंतर्विरोधी स्वरों की जटिल समृद्धि जो पिछले संग्रहों की विशेषता थी, यहाँ तक आते–आते काफी विरल हो गई है और कवि की संवेदना निपट अंतर्मुखी एकाग्रता के साथ कुछ ही थोड़े से स्वरों में संयत और संहत हो गई है।"

वस्तुतः शाहजी अपनी आलोच्य कृति के पास केवल अपने सहृदय 'संवेदन–यंत्र' यानी भाव–यंत्र के भरोसे ही जाते हैं और उससे आत्मीय परिचय के क्रम में उसका भरोसा अर्जित करते हैं; फिर उसके मर्म पर टूटकर रीझते हैं, तब कहीं जाकर बूझ यानी बोध और विवेक का सिलसिला शुरू होता है। इस सिलसिले के निष्पत्ति तक पहुँचने के बाद ही कहीं आलोचना की जमीन बनती है। इसीलिए अपनी आलोचनाओं के पाठक से वे अनिवार्य अपेक्षा रखते हैं कि आलोचना पढ़ने से पहले वह रचना से भली–भाँति परिचित हों। इस तरह उनकी आलोचना का पाठक वस्तुतः साझेदार होता है; आलोचना सिर्फ एक आवाहन, आमंत्रण और पहल है, रचना को सामूहिक चित्त से जोड़ने का निमित्त है। इसी प्रक्रियागत अर्थ में कहा जा सकता है कि शाहजी की आलोचना "सहृदयता और बौद्धिक प्रश्नाकुलता से उपजी रीझ–बूझ' का परिणाम है।"

यही वजह है कि आलोचना या समीक्षा के लिए किसी प्रतिमान की जरूरत उनके लिए अप्रासंगिक हो जाती है; रचना से संवाद में या उससे टकराने के क्रम में ही वे आलोचनात्मक विश्लेषण के अपने औज़ार जुटाते हैं।

शाहजी की आलोचना में अंग्रेजी शब्दों, पदों और संदर्भों का बहुतायत में प्रयोग पाठकों में खीझ का कारण बनता है। दरअसल शाहजी अंग्रेजी साहित्य के अध्येता और शिक्षक रहे हैं। यीट्स, एलियट, लैंब, आर्नोल्ड आदि के जो संदर्भ उनके यहाँ होते हैं, वे पाठकों को आतंकित करने के लिए नहीं होते, वे मूल वस्तु से या तो एकरस होते हैं या उसकी पुष्टि में आते हैं। इन आलोचनाओं को पढ़ते हुए आप पाएँगे कि वे प्रदत्त भूमिका पूरी होते ही शालीन अतिथियों की तरह रुख़सत हो जाते हैं; रचना और आपकी संवेदना के बीच बिना किसी प्रकार का विक्षेप उपस्थित किए हुए।

शाहजी द्वारा विरामचिह्नों का अतिशय प्रयोग भी अक्सर पाठक को खटकता है। यह अंग्रेजी प्रभाव का भी बहुत कुछ नतीजा है; पर मूलतः लेखक की अपनी अभिव्यक्ति की बनावट का परिणाम है, जो अपनी निष्पत्ति में दो–टूक, स्पष्ट और

निश्चयात्मक तो है ही, किसी प्रकार की हड़बड़ाहट या अशालीन जल्दबाजी से बरजती भी है। ये चिह्न लेखक की प्रकृति से एकात्म होने के कारण रचना और उसके मर्म से संवाद की तमीज पैदा करने में सहायक हैं; इसलिए अनिवार्य भी हैं।

समग्रतः रमेशचंद्र शाह की आलोचना न केवल सर्जनात्मक आलोचना का उदाहरण है;बल्कि सहृदयता और बौद्धिक प्रश्नाकुलता से उपजी सूझ–बूझ का परिणाम है।

❑❑❑

क्रांतिपुत्री दुर्गा भाभी और स्वाधीनता संग्राम

विजेंद्र प्रताप सिंह

सोलहवीं शताब्दी के अंत में ब्रिटेन में महारानी एलिजाबेथ प्रथम का शासन था। यूरोप की प्रमुख शक्तियाँ पुर्तगाल और स्पेन थी जो व्यापार आदि में ब्रिटेन से बढ़त हासिल कर चुकी थीं। भारत उस काल में आर्थिक रूप से समृद्ध देश था क्योंकि विभिन्न सूत्रों के अनुसार दुनियाँ के कुल उत्पादन का एक चौथाई माल भारत में तैयार हुआ करता था। दिल्ली की तख़्त पर मुगल बादशाह जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर की हुकूमत थी। अकबर को संसार के सबसे दौलतमंद बादशाहों में गिना जाता था। ब्रिटेन उस काल में गृहयुद्ध से उबर रहा था। उसकी अर्थव्यवस्था कृषि उत्पादों पर अधिक निर्भर थी। निर्यात में काफी पिछड़ा हुआ और दुनियाँ के कुल उत्पादन का महज तीन फीसदी माल ही वहाँ तैयार होता था। ब्रिटेन का व्यापारी जगत विदेशों में अपने व्यापार का विस्तार करने के लिए प्रयासरत थे। ब्रिटेन के एक घुमंतू व्यापारी राल्फ फिच को हिंद महासागर, मेसोपोटामिया, फारस की खाड़ी और दक्षिण पूर्व एशिया की व्यापारिक यात्राओं के दौरान भारत की समृद्धि के बारे में पता चला। परंतु वह वापस ब्रिटेन न पहुँच पाया किंतु विभिन्न संदेशों के माध्यम से उसने भारत के बारे में संप्रेषित कर दी। राल्फ़ फ़िच की जानकारी के आधार पर एक अन्य घुमंतू व्यापारी सर जेम्स लैंकेस्टर सहित तथा ब्रिटेन के 200 से अधिक प्रभावशाली और व्यावसायिक पेशेवर भारत की ओर आकर्षित हुए। 31 दिसंबर 1600 में व्यापारियों द्वारा एक नई कंपनी ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना करते हुए ब्रिटेन की महारानी से पूर्वी एशिया में व्यापार पर एकाधिकार प्राप्त किया। अगस्त 1608 में कैप्टन विलियम हॉकिंस की अगुवाई में सूरत बंदरगाह पर ईस्ट इंडिया कंपनी का जहाज रूका। तब से अंग्रेज भारत में व्यापारी के रूप में प्रविष्ट हुए। समय गुजरता गया मुसलमान शासन समाप्त हुआ। अंग्रेजों ने अकबर के परवर्ती मुसलमानों शासकों को धीरे–धीरे व्यापारिक समझौतों के लिए राजी किया और अपना प्रभाव दिन ब दिन बढ़ाया। सन् 1813 तक ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपने आप को पूरे भारत में प्रसारित कर दिया। इसी वर्ष ब्रिटिश संसद ने भारत में व्यापार पर ईस्ट इंडिया कंपनी के एकाधिकार को समाप्त कर दिया और अन्य ब्रिटिश कंपनियों को व्यापार करने और कार्यालय खोलने की अनुमति दे दी। भारत के अधिकांश परंपरागत उद्यमों को नष्ट कर भारत के ही कच्चे माल से ब्रिटेन में तैयार की गई वस्तुओं की खपत भारत में की जाने लगी। ईस्ट इंडिया कंपनी के एक निदेशक हेनरी जॉर्ज टकर ने 1823 में लिखा कि भारत को एक औद्योगिक देश की जगह एक कृषक देश में बदल दिया गया ताकि ब्रिटेन में निर्मित सामान भारत में बेचा जा सके। 1833 में, ब्रिटिश संसद द्वारा एक कानून पारित कर ईस्ट इंडिया कंपनी से व्यापार करने का अधिकार छीन लिया गया और इसे एक सरकारी निगम में

बदल दिया गया। इस अंग्रेजों के भारत में स्थापित होने की प्रक्रिया में अनगनित भारतीयों पर जुल्म–ओ–सितम किए गए। धीरे–धीरे भारत को अंग्रेजी कॉलोनी में परिवर्तित कर भारतीयता को नष्ट किए जाने का उपक्रम किया गया।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को प्रमुख रूप से 1857 के विद्रोह से जोड़कर देखा जाता है परंतु उसके पूर्व भी भारतीय सपूतों ने अंग्रेजों के विरूद्ध कई विद्रोह किए। इन पर संक्षेप में दृष्टिपात कर लेना समीचीन होगा। बहावी–विद्रोह (1764–1831), संन्यासी–विद्रोह (1763–1800), चुआर आदिवासियों का विद्रोह (1768), पोलगिरि–विद्रोह (1799–1802), दीवान वेलु थम्पी का विद्रोह (1805), बेल्लोर–विद्रोह (1805), कच्छ–विद्रोह (1816–1819), भील–विद्रोह–खानदेश (1817), कित्तूरी– विद्रोह (1824), भील–विद्रोह–सेवाराम (1825), असम तोपखाना–विद्रोह (1825), अहोम– विद्रोह (1828), बघेरा–विद्रोह (1818–1819), कोल–विद्रोह (1820–1822) हो तथा मुंडा–विद्रोह (1820–22) एवं (1831), रमोसी आदिवासी–विद्रोह(1822) एवं (1825–1826), खासी–विद्रोह (1822–1832), मोपला या मालाबार–विद्रोह(1836–1921),फैराजी–विद्रोह (1837–1857), शोलापुर–विद्रोह (1838), पागलपंथी –विद्रोह (1840–1850), गड़कारी –विद्रोह (1844), सूरत का नमक आंदोलन (1844), गोविंदगढ़ विद्रोह (1849–50), नील –आंदोलन (1859–1860), पावना विद्रोह (1873–1876), कूका–विद्रोह (1866–72), दक्कन–उपद्रव (1875), अरब्बीपुरम–आंदोलन (1888), जस्टिस– आंदोलन (1916–1917), रम्पा–विद्रोह (1922–1924), वायकूम– सत्याग्रह (1924), गुरूवायरू–सत्याग्रह (1931), तेभागा–आंदोलन (1946–1950) इत्यादि। तात्पर्य यह है कि ऐसा नहीं था कि 1857 में क्रांति का बिगुल अचानक ही बज उठा परंतु पहले के संगठित प्रयास कम थे या यों कहा जाए कि सीमित क्षेत्र के लोगों के द्वारा किए गये जिन्हें अंग्रेजों ने आसानी से दबा दिया। यद्यपि 1857 की क्रांति में सफल नहीं हुई परंतु इसके बाद संपूर्ण देश में सघर्ष का नैरंतर्य देखा गया।

उपर्युक्त विवरण से तात्पर्य उन वीर सपूतों की भूमिका की ओर इंगन मात्र है जिन्होंने भारत को स्वतंत्रता दिलाने के लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया। आजादी की लड़ाई में पुरुषों की भूमिका का जिक्र अक्सर ही किया जाता है और उनके यशोगान की कमी नहीं है परंतु पुरूषों की भीड़ में वे स्त्रियाँ विलुप्त सी रही हैं जिन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में पुरूषों से अधिक नहीं तो कम भी योगदान नहीं दिया। उन्होंने उस समय जब भारतीय समाज रूढ़िवादिता की दृष्टि से वर्तमान समय से बहुत ज्यादा कट्टर था। साहसी, वीर और देशभक्त स्त्रियों ने तात्कालीन रूढ़िवादी परंपराओं को तोड़ते हुए अपने क्रांतिकारी रूप को प्रदर्शित करते हुए एक से एक साहसी कार्य करते हुए दुराचारी अंग्रेजी शासकों के रोंगटे खड़े कर दिए जिससे अंग्रेज शासन के अधिकारियों में इस बात का भय निश्चित रूप से हुआ होगा कि पहले तो भारतीय पुरूष ही हमारे विरूद्ध संघर्षरत थे अब भारतीय महिलाएँ भी उनके साथ आ खड़ी हुई हैं। अब अंग्रेजी स्त्रियों की तुलना में भारतीय स्त्रियाँ भी कम सशक्त नहीं हैं। उनमें न सिर्फ वैचारिक दृढ़ता आ चुकी है बल्कि शारीरिक तौर पर अल्पबलती मानी जाने वाली भारतीय स्त्रियों ने भी अपना तन,मन तथा

धन देश की स्वतंत्रता के लिए न्यौछावर करने का प्रण कर लिया है। जब इस देश पर बहुत लंबे समय तक शासन किया जाना संभव नहीं है। स्वतंत्रता संघर्ष में बहुत ही अग्रणी और महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली ऐसी बहुत सी महिला सेनानियों में से एक हैं दुर्गा देवी जिन्हें 'दुर्गा भाभी' के नाम से बहुप्रचलित रूप से संबोधित किया जाता था। हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन (एच. एस.आर.ए.) के क्रांतिकारियों सुखदेव थापर, भगतसिंह, चंद्रशेखर आजाद और अन्य सदस्यों के साथ मिलकर उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में एक से बढ़कर एक साहसी कार्य किए। दुर्गा देवी ने न सिर्फ अंग्रेजों के खिलाफ जारी स्वतंत्रता संग्राम में एक अहम भूमिका निभाई थी बल्कि इस लड़ाई में महिलाओं की भागीदारी को भी दिशा प्रदान करने का कार्य किया था। परंतु यह दुर्भाग्यपूर्ण ही कहा जा सकता है कि उनके त्याग, समर्पण को वो प्रतिसाद नहीं मिल पाया जितना अन्य लोगों को मिला। क्योंकि वे सांठगांठ की राजनीति में निपुण थे और उन्होंने अपने आपको सरकारी, सामाजिक, राजनीतिक आदि पटलों के माध्यमों से प्रतिष्ठित कर यश और धन दोनों का अर्जन किया परंतु क्रांतिपुत्री दुर्गा देवी उर्फ 'दुर्गा भाभी' सच्ची देशभक्त थी जिन्होंने अपने साथियों के साथ लंबा संघर्ष किया साथ ही स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात 'शिक्षादान महादान' को अपने जीवन का ध्येय मानते हुए आजीवन शिक्षण कार्य करती रहीं और 14 अक्टूबर 1999को लगभग पूरी तरह गुमनामी में जीवन गुजारते हुए इस संसार से विदा हो गईं। प्रस्तुत आलेख 'दुर्गा भाभी' के प्रति श्रृद्धांजलि स्वरूप है।

दुर्गा देवी

वीरांगना 'दुर्गा भाभी' का वास्तविक नाम दुर्गावती देवी था। उनका जन्म 7 अक्टूबर सन 1907 को उत्तर प्रदेश राज्य के इलाहाबाद परिक्षेत्र के गांव शहजादपुर में पंडित बांके बिहारी के यहाँ हुआ था।अल्पायु में ही उनकी माँ का निधन हो गया था और उनका पालन पोषण उनकी बुआ ने किया था। जब उन्होंने पाँचवी कक्षा तक पढ़ाई कीं तब सन् 1918 में उनकी आयु मात्र 11 वर्ष थी तब उनका विवाह लाहौर निवासी 15 वर्षीय हाईस्कूल के छात्र भगवती चरण वोहरा से किया गया। उन्होंने हाई स्कूल, इंटर की पढ़ाई ससुराल में ही की और अध्यापिका की नौकरी करने लगी। सन् 1925 में दुर्गा देवी ने एक बेटे सचिंद्र वोहरा को जन्म दिया।

दुर्गा देवी के पिता एवं परिवार

दुर्गा देवी के पिता इलाहाबाद कलेक्ट्रेट में नाजिर थे और उनके बाबा महेश प्रसाद भट्ट जालौन जिले में थानेदार के पद पर तैनात थे। उनके दादा पंडित शिवशंकर शहजादपुर में जमींदार थे।

भगवती चरण वोहरा एवं उनका परिवार

'दुर्गा भाभी' के ससुर शिवचरण रेलवे में ऊंचे पद पर तैनात थे। अंग्रेज सरकार ने उन्हें 'राय साहब' का खिताब दिया था। उनका ससुराल पक्ष प्रगतिवादी राष्ट्रभक्त परिवार था जो कि शिक्षा का महत्व बहुत अच्छी तरह समझता था इसलिए शिवचरण एवं अन्य परिवारीजनों ने दुर्गा देवी को पढ़ाई जारी रखने दी। भगवतीचरण वोहरा राय साहब के पुत्र होने के बावजूद अंग्रेजों की दासता से देश को मुक्त कराने के पक्षधर थे इसलिए उनका सहयोग क्रांतिकारियों को मिलता रहता था। इसके

दो प्रमुख कारण माने जा सकते हैं प्रथम चूंकि उनका परिवार अंग्रेजों की सेवा में था इसलिए बहुत समय तक वोहरा की ओर अंग्रेजों की दृष्टि विद्रोही के रूप में नहीं गई। दूसरा वोहरा के पिता के सरकारी सेवा में होने के कारण धनाभाव कतई नहीं था। भगवतीचरण वोहरा पहले धन से क्रांतिकारियों की सहायता गुपचुप तरीखे से करते रहे और सन् 1920 में पिता की मृत्यु के पश्चात् भगवतीचरण वोहरा खुलकर क्रांति के मैदान में तन,मन, धन से सपरिवार जुट गए। उनकी पत्नी दुर्गा देवी पूर्ण रूप से उनकी सहयोगी बनी। सन् 1923 में भगवतीचरण वोहरा ने नेशनल कॉलेज से बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की और 'दुर्गा भाभी' ने प्रभाकर की डिग्री हासिल की। 'दुर्गा भाभी' का मायका व ससुराल दोनों पक्ष संपन्न थे। ससुर शिवचरण जी ने 'दुर्गा भाभी' को 40 हजार व पिता बांके बिहारी ने पाँच हजार रुपये संकट के दिनों में काम आने के लिए दिए थे। लेकिन इस दंपती ने इन पैसों का उपयोग क्रांतिकारियों के साथ मिलकर देश को आजाद कराने में उपयोग किया।

भगवतीचरण वोहरा का क्रांतिकारी रूप

मार्च 1926 में भगवती चरण वोहरा व भगत सिंह ने संयुक्त रूप से नौजवान भारत सभा का प्रारूप तैयार किया और रामचंद्र कपूर के साथ मिलकर इसकी स्थापना की। इस संगठन के सदस्य के रूप में सैकड़ों नौजवानों ने देश को स्वतंत्र कराने के लिए अपने प्राणों को बलिदान वेदी पर चढ़ाने की शपथ ली। दिसंबर 1928 की शुरुआत में, भगवती भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की वार्षिक बैठक में भाग लेने के लिए कोलकाता गए थे। केंद्रीय असेंबली में बम फेंकने के बाद जब भगतसिंह गिरफ्तार हो गये तो 'दुर्गा भाभी' आदि ने उन्हें जेल से निकालने की योजना बनाई। इसमें इस्तेमाल करने के लिए जिन बमों का उपयोग किया जाना था उनका निर्माण भगवतीचरण वोहरा द्वारा ही किया गया था और वे उपयोग से पूर्व उन बमों का परीक्षण कर रहे थे तब एक बम उनके हाथों में ही फट गया और इस प्रकार 28 मई 1930 को भगवती चरण बोहरा जैसे समर्पित वीर स्वतंत्रता सेनानी असमय शहीद हो गए।

पति और पत्नी के मध्य वैचारिक सामंजस्य

दुर्गा देवी भारतीय परंपरा के अनुरूप अपने पति भगवती चरण वोहरा की सच्ची जीवनसाथी सिद्ध हुई। वे क्रांतिकारी परिवार में भले ही जन्मी नहीं थीं परंतु एक क्रांतिकारी पति के साथ उनका साथ देते हुए तथा विभिन्न क्रियाकलापों के आधार पर एक सच्ची क्रांतिकारी बनी। पति–पत्नी दोनों के ह्रदय में भारत को स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में देखने की प्रबल आकांक्षा थी और दोनों के मन में उसके लिए कुछ भी कर गुजरने का दृढ़ संकल्प था। देश सेवा के लिए उन्होंने अपने छोटे से पुत्र को भी साथ मिलकर पाला और पति के शहीद हो जाने के बाद 'दुर्गा भाभी' से एक दायित्वपूर्ण माँ के रूप में पुत्र को पाला और अंत तक उसके साथ रहीं।

दुर्गा देवी से दुर्गा भाभी

क्रांतिकारी भगवतीचरण वोहरा के साथ विवाहोपरांत बहुत जल्दी अपने पति के कार्यों में सहयोग देने लगी थीं। उनके घर नित क्रांतिकारियों का आना जाना लगा रहता था। एक आश्रयस्थल के रूप में उनका घर सभी क्रांतिकारियों में प्रसिद्ध था। दुर्गा देवी सभी का बहुत आदर करतीं स्नेहपूर्वक सभी का सत्कार करतीं। उनके

समर्पण एवं सेवाभाव के कारण वे सभी क्रांतिकारियों की आदरणीय बन गई थी। इसलिए सभी क्रांतिकारी उन्हें 'भाभी' कहने लगे थे और धीरे–धीरे वे सभी में 'दुर्गा भाभी' के नाम से प्रसिद्ध हो गईं और आजीवन 'दुर्गा भाभी' के रूप में ही जानी गईं।

दुर्गा देवी के क्रांतिकारी जीवन का प्रारंभ

आजादी के लिए 'दुर्गा भाभी' ने कई बार अपनी क्रांतिकारी टुकड़ी का नेतृत्व भी किया था। वह आज की महिलाओं के लिए रोल मॉडल तो हैं ही, साथ ही साथ आजादी के समय भी वह अन्य स्त्रियों और महिलाओं की रोल मॉडल हुआ करती थी। वह स्त्री और महिलाओं के अंदर देश प्रेम की भावना को जागृत किया करती थी ताकि आजादी के लिए पूरा देश इकट्ठा हो सके। अपने पति के साथी क्रांतिकारियों की सेवा एवं छोटे–छोटे सहयोगी कार्यों से जो सफर शुरू हुआ वह बड़े–बड़े क्रांति कार्यों तक पहुंचा। उनके द्वारा किए गए प्रमुख क्रांतिकारी कार्यों को अग्रलिखित रूप में देखा जा सकता है–

1. जीवन में 'दुर्गा भाभी' ने खतरा मोल लेकर कई बड़े काम किए। उनमें से एक बहुत बड़ा काम था लाहौर में लाला लाजपत राय पर लाठी बरसाने वाले सांडर्स नामक अंग्रेजी अधिकारी पर खुलेआम गोली चलाना। जुलूस पर हुए लाठीचार्ज में पुलिस अधीक्षक जे.ए. स्कॉट ने स्वयं लाला लाजपत राय पर लाठी से हमला किया, जिसके परिणामस्वरूप 17 नवंबर 1928 को उनकी मृत्यु हो गई। यह दुर्गा देवी थीं जिन्होंने स्वयं जे.ए.स्कॉट को मारने की पेशकश की थी। लेकिन चंद्रशेखर आजाद ने उन्हें यह कहते हुए मना कर दिया कि महिलाओं को इस तरह के जोखिम भरे काम नहीं सौंपे जाने चाहिए।

2. अमर शहीद करतार सिंह सराबा ने 1857 की क्रांति की तर्ज पर अंग्रेजी सेना के भारतीय सैनिकों में विद्रोह की भावना उत्पन्न करके देश को आजाद कराने की योजना बनायी थी। अंग्रेजों ने इसीलिए उनको मात्र 19 वर्ष की आयु में फांसी के फंदे पर चढ़ा दिया था। भगतसिंह और 'दुर्गा भाभी' के लिए सराबा सर्वकालीन नायक थे और देश के लिए सब कुछ न्यौछावर करने की प्रेरणा सराबा उनके प्रेरणास्रोत थे। 16 नवम्बर 1926 को नौजवान भारत सभा की सक्रिय सदस्य 'दुर्गा भाभी' के रूप में अमर शहीद करतार सिंह सराबा के शहादत का ग्यारहवीं वर्षगाँठ मनाई। इस कार्य ने 'दुर्गा भाभी' को संपूर्ण क्रांतिकारियों में प्रसिद्धि प्रदान की। शहीदी दिवस वाले दिन नौजवान सभा के कार्यक्रम में दो युवतियों द्वारा अपने खून से बनाये गए सराबा के आदमकद चित्र का अनावरण किया गया और ये दोनों युवतियाँ थीं–'दुर्गा भाभी' और 'सुशीला दीदी'। सुशीला दीदी को वे अपनी ननद मानती थीं। जब भगत सिंह ने चंडी को समर्पित अपने जोशीले व्याख्यान को समाप्त किया और सशस्त्र संघर्ष के जरिये अंग्रेजों को देश से बाहर निकालने का संकल्प किया, 'दुर्गा भाभी' ने उठकर उन्हें तिलक लगाया, आशीर्वाद दिया और उनके उद्देश्य में सफलता की कामना की। यहाँ से भगतसिंह और उनके बीच जो प्रगाढ़ता उत्पन्न हुई, उसे भगतसिंह की मृत्यु भी नहीं तोड़ पाई और वो हमेशा उन्हें याद करती रहीं।

3. 19 दिसंबर, 1928 को भगत सिंह और सुखदेव अंग्रेज सांडर्स को गोली मारने के

बाद, पुलिस से बचते हुए तीनों क्रांतिकारी वेशभूषा बदलकर सहायतार्थ 'दुर्गा भाभी' के पास जा पहुँचे। पति घर पर नहीं थे परंतु बिना बात की परवाह किए 'दुर्गा भाभी' तुरंत तीनों क्रांतिकारियों की सहायता के लिए तैयार हो गईं। आपातस्थिति हेतु जो पैसे उनके पति ने उनके लिए छोड़े थे, वे सब उन्होंने क्रांतिकारियों को दे दिए। यहाँ तक कि समाज की परवाह किए बिना, भगत सिंह की पत्नी का रूप धरकर, वे उन्हें पुलिस की नाक के नीचे से निकाल लाईं। उस समय सामाजिक नियम–कानून ऐसे थे कि यदि कोई स्त्री और पुरुष शादीशुदा नहीं हैं, तो उनका इस प्रकार का कोई नाटक करना भी प्रश्नवाचक स्थितियाँ उत्पन्न करता था। सब जोखिमों को जानते हुए भी, 'दुर्गा भाभी' ने राष्ट्रीय आंदोलन की महत्ता को ध्यान में रखते हुए यह कार्य किया। अपने तीन वर्षीय पुत्र को साथ लेकर अदम्य साहसी दुर्गा देवी ने भगत सिंह, पति तथा राजगुरु को परिवार का नौकर बताकर अंग्रेज सिपाहियों की नजरों से बचाया और तीनों लखनऊ के लिए ट्रेन में बैठ रवाना हो गए। लखनऊ से वे भगत सिंह के साथ कोलकाता पहुँच गईं। उनके पति भगवती उनके इस त्याग और साहस को आश्चर्यचकित होने के साथ–साथ गौरवान्वित भी हुए। कोलकाता में ही भगवती चरण, दुर्गा देवी और भगत सिंह ने कांग्रेस के कलकत्ता सत्र में सहभागिता की। यहाँ उन्होंने गांधी, नेहरू और सुभाष चंद्र बोस तथा कई बंगाली क्रांतिकारियों से भेंट की। कलकत्ता में ही जिस टोपी को पहनकर भगत सिंह ने स्वयं को अपनी वास्तविक पहचान से छिपाया हुआ था वही चित्र उनका वर्तमान में भी प्रसिद्ध है।

4. भगत सिंह व बटुकेश्वर दत्त जब केंद्रीय असेंबली में बम फेंकने जाने लगे तो 'दुर्गा भाभी' व सुशीला मोहन ने अपनी बांहें काट कर अपने रक्त से दोनों लोगों को तिलक लगाकर विदा किया था।

'दुर्गा भाभी' के अंदर आजादी की ऐसी मशाल जल रही थी कि वे निडरता से किसी भी काम को अंजाम देती थीं। उन्होंने इतने बड़े–बड़े खतरे मोल लिए लेकिन अंग्रेजों के आगे झुकी नहीं। वे क्रांतिकारियों की सच्ची दोस्त थी। जो पैसे उनके पति उनके बुरे समय के लिए छोड़ गए थे, वह भी उन्होंने इन क्रांतिकारियों को दे दिए। यहाँ तक कि समाज की परवाह किए बिना, भगत सिंह की पत्नी का रूप धरकर, वे उन्हें पुलिस की नाक के नीचे से निकाल लाईं।

5. उसी वर्ष 8 अक्टूबर को उन्होंने दक्षिण बॉम्बे में लैमिंगटन रोड पर खड़े हुए एक ब्रिटिश पुलिस अधिकारी पर हमला किया। यह पहली बार था जब किसी महिला को 'इस तरह से क्रांतिकारी गतिविधियों में शामिल' पाया गया था। इसके लिए, उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और तीन साल की जेल हुई।

6. 9 अक्टूबर,1928 को 'दुर्गा भाभी' ने गवर्नर हैली पर गोली चला दी थी जिसमें गवर्नर हैली तो बच गया लेकिन सैनिक अधिकारी टेलर घायल हो गया। मुंबई के पुलिस कमिश्नर को भी 'दुर्गा भाभी' ने गोली मारी थी जिसके परिणामस्वरूप अंग्रेज पुलिस इनके पीछे पड़ गई। मुंबई के एक फ्लैट से 'दुर्गा भाभी' व साथी यशपाल को गिरफ्तार कर लिया गया। 'दुर्गा भाभी' का काम साथी क्रांतिकारियों के लिए राजस्थान से पिस्तौल लाना व ले जाना था। चंद्रशेखर आजाद ने अंग्रेजों से लड़ते

वक्त जिस पिस्तौल से खुद को गोली मारी थी उसे 'दुर्गा भाभी' ने ही लाकर उनको दी थी। उस समय भी 'दुर्गा भाभी' उनके साथ ही थीं। उन्होंने पिस्तौल चलाने की ट्रेनिंग लाहौर व कानपुर में ली थी।

7. दुर्गावती भाभी के बहादुरी के किस्से पूरे भारत में विख्यात हैं। युद्ध करने में उनको मानो महारत हासिल थी। उनके रगों में आजादी के लिए खौलता खून दौड़ रहा था, वह खून अंग्रेजों की जान का प्यासा था। और कुछ ऐसा ही 9 अक्टूबर 1930 को हुआ था। जब उन्होंने अंग्रेज गवर्नर हैली पर निडर होकर हमला किया था। उनका यह साहस देखकर गवर्नर हैली भी हैरान हो गए थे। हालांकि जब 'दुर्गा भाभी' ने गवर्नर हैली पर गोली चलाई थी तो वह बच गए थे क्योंकि वह गोली उनके बगल खड़े उनके सैनिक अधिकारी को लग गई थी। इस घटना के बाद दुर्गा को गिरफ्तार कर लिया और तीन साल की सजा सुनाई गई। मुंबई के पुलिस कमिश्नर को भी 'दुर्गा भाभी' ने गोली मारी थी, जिसके बाद उन्हें और उनके साथी यशपाल को गिरफ्तार कर लिया गया था। उन्होंने पिस्तौल चलाने का प्रशिक्षण कानपुर और लाहौर से लिया। वे राजस्थान से पिस्तौल लाकर क्रांतिकारियों को देती थीं।

8. 1919 रेग्यूलेशन ऐक्ट के तहत तत्काल उनको नजर कैद कर लिया गया और लाहौर और दिल्ली प्रवेश पर पाबंदी लगा दी गई। तीन वर्ष बाद पाबंदी हटने पर वो प्यारेलाल गर्ल्स स्कूल गाजियाबाद में शिक्षिक के रूप में कार्य किया।

9. बहुत से नेताओं की गिरफ्तारी से एच. एस.आर.ए. में एक खालीपन आ गया तो दुर्गा देवी ने स्वयं क्रांतिकारी गतिविधियों को प्रारंभ कर दिया। दुर्गा देवी ने क्रांतिकारियों के कट्टर दुश्मन पंजाब के पूर्व गवर्नर लॉर्ड हैली की हत्या का साहसी प्रयास भी किया।

10. दुर्गा देवी के पति भगवतीचरण वोहरा के लाहौर स्थित बम बनाने के कारखाने पर अंग्रेजों का छापा पड़ गया और उन्हें सपरिवार छिपना पड़ा। उनके पति के छिपे रहने के दौरान दुर्गा देवी ने क्रांतिकारी गतिविधियों में सक्रिय भूमिका निभाते हुए स्वयं को अंडरकवर 'पोस्ट बॉक्स' के रूप परिवर्तित कर लिया और एक स्थान से दूसरे स्थान तक वे क्रांतिकारियों को पत्रों, मौखिक संदेशों के माध्यम से सूचनाएं सीधे क्रांतिकारियों एवं उनके परिवारों तक पहुंचाती रहीं।

11. जुलाई 1929 में उन्होंने भगत सिंह की तस्वीर के साथ लाहौर में एक जुलूस का नेतृत्व किया और उनकी रिहाई की मांग की। असेंबली में बम फेंकने से कोई भी व्यक्ति हताहत नहीं हुआ था। भगत सिंह सहित सभी क्रांतिकारियों का तर्क था कि उन्होंने बम किसी को हानि पहुँचाने के लिए नहीं फेंका बल्कि अंग्रेजी हुकूमत के विरूद्ध अपना विरोध प्रकट करने के लिए फेंका था। अतः उन्हें सजा दी जाए परंतु उन्हें हत्यारा मानते हुए सजा न दी जाए बल्कि जो सजा क्रांति के लिए दी जानी है दी जाए परंतु उनके लिए दुष्प्रचार करते हुए उनकी छवि को खराब न किया जाए। 'दुर्गा भाभी' ने भगत सिंह एवं अन्य साथी क्रांतिकारियों को रिहा करने के लिए मुहिम चलाई परंतु अंग्रेज सरकार ने किसी की नहीं सुनी।

12. जुलाई 1929 में 63 दिनों तक भूख हड़ताल करने वाले जतींद्रनाथ दास कारावास में ही शहीद हो गए। जहाँ लोग अंग्रेजों के सामने जाने की हिम्मत नहीं

जुटा पाते थे वहीं दुर्गा देवी ही थीं, जिन्होंने अग्रणी भूमिका निभाते हुए लाहौर में उनका अंतिम संस्कार करवाया।

13. क्रांतिकारी और शहीद–ए–आजम चंद्रशेखर आजाद की जब इलाहाबाद के एक पार्क, जिसे आज चंद्रशेखर आजाद पार्क के नाम से जाना जाता है, अंग्रेजों से भिड़ंत हुई थी। चंद्रशेखर आजाद के साथी उनसे दूर थे और उन्हें अंग्रेजों ने घेर लिया था। उनके पास एक ही पिस्तौल थी जिसमें मात्र एक ही गोली थी। और उस वक्त चंद्र शेखर आजाद ने अंग्रेजों के हाथों से मरने की बजाए खुद के हाथों से खुद को मारना उचित समझा था। और उस बची हुई गोली को उन्होंने अपने माथे पर उतार दिया था। ऐसा प्रचलित रहा है कि वह पिस्तौल जिससे चंद्रशेखर आजाद ने खुद को गोली मारकर अंग्रेजों को नतमस्तक किया था, वह पिस्तौल 'दुर्गा भाभी' ने ही उन्हें दी थी। चंद्रशेखर आजाद के बारे में कवि श्यामपाल सिंह द्वारा लिखित पंक्तियाँ समरणीय हैं–

'स्वतंत्रता रण के रणनायक अमर रहेगा तेरा नाम,
नहीं जरुरत स्मारक की स्मारक खुद तेरा नाम।
स्वतंत्र भारत नाम के आगे जुड़ा रहेगा तेरा नाम,
भारत का जन–गण–मन ही अब बना रहेगा तेरा नाम।

14. 'दुर्गा भाभी' की फरारी, गिरफ्तारी और रिहाई का सिलसिला 1931 से 1935 तक चला। दुर्गा देवी 1935 में गाजियाबाद में प्यारेलाल कन्या विद्यालय में अध्यापिका की नौकरी करने लगीं और दिल्ली आ गईं। अंत में लाहौर से जिला बदर किए जाने के बाद 1935 में गाजियाबाद में कन्या विद्यालय में अध्यापक की नौकरी की।

15. अंग्रेजों द्वारा एक–एक करके जब सारे क्रांतिकारी साथी मार दिए गए या उन्होंने किसी किसी कार्य को अंजाम देने के लिए अपने प्राणों को न्यौछावर कर दिया। 'दुर्गा भाभी' की मुसीबतें दिन ब दिन बढ़ती गईं। उनका बेटा भी बड़ा हो रहा था और पुलिस भी उन्हें बार–बार परेशान करती थी। अंग्रेज प्रशासन के द्वारा उन्हें लाहौर से जिला बदर कर दिया गया। वे 1935 में गाजियाबाद आ गई और प्यारेलाल कन्या विद्यालय में अध्यापिका की नौकरी कर ली।

16. दिल्ली में आने के बाद दो साल के लिए कांग्रेस पार्टी के साथ भी काम किया। 'दुर्गा भाभी' को 1937 में दिल्ली प्रदेश कांग्रेस कमेटी की अध्यक्ष नियुक्त की गईं। इस पद पर आकर उन्होंने कांग्रेस के कार्यक्रमों में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। किन कारणों से उन्होंने कांग्रेस से स्वयं को दरकिनार कर लिया इसका कोई विशेष उल्लेख कहीं प्राप्त नहीं होता है।

17. 1939 में मद्रास जाकर 'दुर्गा भाभी' ने मारिया मांटेसरी से मोंटेसरी पद्धति का परीक्षण लिया और 1940 में लखनऊ में कैंट रोड के निजी मकान में सिर्फ 5 बच्चों के साथ स्कूल खोला। आज भी यह विद्यालय लखनऊ में सिटी मांटेसरी इंटर कॉलेज के नाम से जाना जाता है। उनके स्कूल खोलने वाले कदम को सुनकर 1956 में प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने खुद 'दुर्गा भाभी' से मुलाकात की थी। नेहरू जी ने उनकी मदद करने की पेशकश भी की थी। कहा जाता है कि 'दुर्गा भाभी' ने विनम्रता से मना कर दिया था। भारत में मांटेसरी स्कूल शिक्षा प्रारंभ करने वाले

लोगों में 'दुर्गा भाभी' को अग्रणी माना जाता है। 1975 में इस स्कूल के बंद पड़ने के बाद वे अपने बेटे शचींद्र के पास गाजियाबाद आ गई और अपनी आखिरी साँस तक वे गाजियाबाद में ही रहीं।

18. 'दुर्गा भाभी' की एक और क्रांतिकारी सुशीला दीदी ने भी उनका खूब साथ निभाया। 5 मार्च 1905 को पंजाब के दत्तोचहड्डू वर्तमान पाकिस्तान में जन्मीं सुशीला दीदी की 1933 में शादी श्याम मोहन से हुई। पति वकील होने के साथ स्वतंत्रता आंदोलन से भी जुड़े हुए थे। ब्रिटिश पुलिस अफसर सांडर्स को मारने के बाद भगत सिहं, 'दुर्गा भाभी' के साथ छद्म वेश में कलकत्ता पहुँचे थे और वहाँ सुशीला दीदी ने उन्हें अपने यहाँ ठहराया था। वर्ष 1942 के आंदोलन में दोनों पति–पत्नी जेल भी गए। इस दौरान श्याम मोहन को जहाँ दिल्ली में रखा गया था, वहीं दीदी को लाहौर में। देश को आजाद कराने के लिए वह लगातार यातनाएँ सहती रही लेकिन उन्होंने अपना संघर्ष कभी बंद नहीं किया।

19. सुशीला दीदी के स्कूल की प्राचार्य ने उनकी भेंट 'दुर्गा भाभी' से कराई थी और धीरे–धीरे उन दोनों के बीच संबंध प्रगाढ़ होते गए और उनके बीच ननद–भाभी का रिश्ता बन गया। इसके बाद सुशीला मोहन सभी क्रांतिकारियों के लिए सुशीला दीदी हो गई। कहा जाता हैं कि भगत सिंह भी सुशीला दीदी का बड़ी बहन की तरह सम्मान करते थे और उन्होंने ब्रिटिश सरकार की बहुत सी योजनाओं के खिलाफ मिल कर काम किया था। सुशीला दीदी ने काकोरी कांड में फंसे क्रांतिकारियों को बचाने के लिए अपनी शादी के लिए रखा 10 तोला सोना तक बेच दिया था। यह सोना सुशीला दीदी की माँ ने उनकी शादी के लिए रखा था।

भारत की वीर पुत्री 'दुर्गा भाभी' 92 वर्ष की आयु में गुमनामी में रहते हुए 15 अक्तूबर, 1999 को इस संसार को अलविदा कह गईं। शायद उनके पति के विचारों का ही उन पर प्रभाव था कि पहाड़ जैसी जिंदगी अकेले ही और इतने साहस के साथ गुजार दी और ना जाने कितनों को साहस से जीने की प्रेरणा दी। 'दुर्गा भाभी' ने देश के लिए, उसकी आजादी के लिए अपने पति, परिवार, बच्चें का जीवन और एक खुशहाल जीवन सब कुछ देश के लिए दाँव पर लगा दिया। आजादी के बाद जिस तरह से उन्होंने गुमनामी की चादर ओढ़ी और खुद को बच्चों की शिक्षा देने तक सीमित कर लिया, वह वास्तव में बहुत कुछ सोचने पर मजबूर करता है। शायद आजाद भारत में जो रवैया उन्होंने लोगों एवं सरकारी तंत्र का देखा वह उनके सपनों का भारत नहीं था, इसलिए उन्होंने गुमनाम रहते हुए शिक्षा का अलख जलाते हुए स्वयं को जीवित रखा और प्राकृतिक जीवनांत का इंतजार करते हुए अंतिम दिन इस संसार को शायद मन में यह सोचते हुए कि ''खुश रहना देश के प्यारों, अब हम तो सफर करते हैं।'' अलविदा कह दिया। होता भी अक्सर यही आया है हमारे इतिहास में महिलाओं के बलिदान और उनकी बहादुरी को नजरअंदाज ही किया है। बहुत सी ऐसी नायिकाएँ हमेशा छिपी ही रह गई जिन्होंने इस देश के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया।

सहायक ग्रंथ सूची

1. मंजू वर्मा, श्रीमती दुर्गा देवी के साथ साक्षात्कार, पृष्ठ 187

2. अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की रिपोर्ट, अखिल भारतीय महिला सोविनियर 1927
3. हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मोमेंट इन इंडिया, महाराष्ट्र सरकार, भाग ।।।, 1929–31
4. उषा बाला, इंडियन फ्रीडम फाइटरर्स 1957–1947, मनोहर पब्लिकेशन दिल्ली 1986
5. विपिनचंद्र, भारत का स्वतंत्रता संग्राम, 1996, दिल्ली
7. लेवनार्ड गोर्डन, बंगाल द नेशनलिस्ट मोमेंट 1876–1940,मनोहर पब्लिशर्स, दिल्ली 1979
8. मनमोहन कौर, रोल ऑफ द इन द फ्रीडम मोमेट 1857–1947,सटेर्लिंग
9. 'द ट्रिब्यून...संडे रीडिंग, ट्रिब्यून इंडिया डॉट कॉम, अभिगमन तिथि 14/08/2022
10. 'मध्यरात्रि के बच्चे दुर्गा देवी, द फियरलेस लेडी, यंग बाइट्स, मेजर कुलबीर सिंह, अभिगमन तिथि 14/08/2022
11. एस.आर. बख्शी, क्रांतिकारी और ब्रिटिशराज, अटलांटिक प्रकाशन, दिल्ली
12. शहीद भगवती चरण वोहरा,
13. कामा मैकलियन, ए रेव्ल्यूशनरी हिस्ट्री ऑफ द इंटरवार इंडिया, इमेज, वॉइस एंड टेक्स्ट, हरस्ट एंड कंपनी, लंदन, 2015

❑❑❑

स्वतंत्रता संग्राम और तमिल पत्रकारिता

वी पद्मावती

विश्व भर में पत्रिकाओं का आविर्भाव कई शताब्दियों से पहले ही शुरू हो गया था। फिर भी तत्कालीन ढाँचे में उसे लगभग 350 साल ही हुए हैं। राजनीति, साहित्य, विज्ञान, अर्थ–शास्त्र, खेलकूद, मनोरंजन, कला आदि कई क्षेत्रों को पत्रकारिता में समावेश किया जाता है। तमिलप्रदेश में लगभग 160 सालों से पत्रकारिता का आविर्भाव हुआ है। यहाँ पर यह ध्यान देने योग्य बात है कि तमिल प्रदेश में पत्रकारिता की शुरुआत ईसाई पादरियों के द्वारा ही हुई थी। चाहें उनका लक्ष्य अपने धर्म का प्रचार ही होने पर भी उनके इस क्षेत्र में योगदान के कारण पत्रकारिता का बहुमुखी विकास संभव हुआ है।पद्य से गद्य तक की अपनी यात्रा में तमिल भाषा को पत्रकारिता से आम लोगों तक पहुँचाने में पत्रिकारिता ने बहुत सहायता की है। 1802 के पहले तमिल, सिंहली, अंग्रेज़ी आदि तीनों भाषाओं को समावेश करते हुए 'सीलोन गजट' प्रारंभ हुआ। 1831 में "The Tamil Magazine" के नाम से चेन्नै से ईसाई धर्म प्रचार संस्थान (The Madras Christian Tract Society) ने एक पूरा महीना तमिल में ही अपना समाचार पत्र प्रकाशित किया है। तमिल पत्रकारिता के क्षेत्र में ईसाई पादरियों के योगदान के रूप में अंग्रेज़ी–तमिल शब्द–कोषों को लिया जा सकता है। 1877 वर्ष में "सुदेशाभिमानी" नामक पत्रिका का प्रचलन सेलम पकडालु नरसिम्मलु नायुडु के द्वारा हुआ था।तमिल प्रदेश में "दि हिंदू" (1878) नामक अंग्रेज़ी पत्रिका की शुरूआत श्री.एस. सुब्रह्मणियन के द्वारा हुई थी। इन्होंने ही 'सुदेसमित्तिरन' नामक पत्रिका का प्रारंभ किया था। पहले सुदेसमित्तरन सप्ताह में तीन बार प्रकाशित होता था लेकिन उसके पश्चात् प्रत्येक दिन वह प्रकाशित होता रहा। 15 सालों में हर दिन की बिक्री हज़ार तक पहुँची। उस ज़माने में इस पत्रिका के द्वारा तमिल प्रदेश की जनता के मन में देश भक्ति की भावना एवं राष्ट्रोद्धार की भावना जगाने में महत्वपूर्ण रहा है। इसी पत्रिका में कुछ समय तक सुब्रह्मण्य भारतीयार सहायक संपादक के रूप में कार्यरत थे।

एम.सि. सिद्धिलेव्वै ने 1882 में 'मुस्लिम नेसन' पत्रिका के द्वारा मुस्लिम समाज के लोगों में पुनर्जागरण उत्पन्न करने के साथ–साथ राष्ट्रीय भावना को भी जगाने की कोशिश की थी। भारत में पत्रकारिता के विकास के साथ ही तमिल पत्रकारिता का भी विकास होता रहा। 'मद्रास गजट', 'गवर्नमेंट गजट', 'मद्रास कूरियर', 'दिनवर्द्धमानी' आदि पत्रिकाएँ अंग्रेजों और मिशनरियों के लिए कार्यरत थे।

इस संदर्भ में यह बात अत्यंत उल्लेखनीय है कि संपूर्ण भारत के स्वाधीनता संग्राम में देश–प्रेम का संबंध सांस्कृतिक पुनर्जागरण, जातिगत चेतना एवं स्व–भाषा प्रेम से भी जोड़ा जाता है। अपने सांस्कृतिक जड़ों से कटने के कारण ही संपूर्ण देश गुलाम बन गया था। राजनीतिक दृष्टि से दुर्बल नेतृत्व, जाति–भेद एवं वर्ण–भेद के कारण समाज में कई तरह की

कुरीतियाँ चलने लगी थी। इन्हीं कुरीतियों का लाभ उठाते हुए यूरोपीय देश एवं ब्रिटिश सरकार ने भारत पर अपना शासन जमाया था। इन समाचार पत्रों में समाज के लिए उपयोगी कई तरह के विषयों को उद्घाटित किया गया। 'जनविनोदिनी (1870)', 'तमिल मेगसिन (1831)', 'राजवृद्धि बोधिनी (1833)', 'मद्रास क्रानिकल (1835)', 'उदय तारकै (1841)' आदि पत्रिकाओं में तमिल जनता के लिए उपयोगी विषय प्रकाशित होती थी।

तमिल प्रदेश में भारत–भर में होनेवाले बदलावों का प्रभाव दिखाई देता था। डॉ शेषन जी का मानना है कि "तमिल प्रदेश में जो सामाजिक चेतना और जागरण आने लगा था, वह उच्च वर्ग तक ही सीमित था।" सन् 1864 में मद्रास आए ब्रह्मसमाज के नेता केशवचंद्र सेन, मद्रास के सामाजिक परिवेश की टिप्पणी करते हुए कहते थे कि मद्रास सामाजिक सुधारों की दृष्टि से बहुत पिछड़ा हुआ है। यहाँ के लोग किसी भी परिवर्तन के लिए सहमत हैं। पुराने विश्वासों और विचारों तथा नए परिवर्तनों के बीच वे समझौता नहीं कर पाते। पुरानी रूढ़ियों का पालन करते हैं।"तमिल पत्रकारिता के प्रारंभिक काल से लेकर आवश्यकतानुसार उसमें बहुत सारे बदलाव आए हैं। "तमिल क्षेत्र में सैंकड़ों पत्रिकाएँ भारतीय स्वाधीनता संग्राम के लिए आवश्यक राष्ट्र–प्रेम की भावना को व्यक्त करने के साथ–साथ धार्मिक इतिहास, संस्कृति एवं भाषा के गौरव का बखान करते हुए भी कई पत्रिकाएँ प्रचलन में थीं।स्वाधीनता के पूर्व की तमिल पत्रिकाओं के जन्म, विकास एवं इतिहास तमिलनाडु का राजनैतिक–सांस्कृतिक इतिहास बनेगा। "भारतीय स्वाधीनता संग्राम में महात्मा गांधीजी के पदार्पण के बाद भारतीय पत्रकारिता में नया उद्वेग आ गया। तमिल पत्रिकाओं में उनके अहिंसा के सिद्धांत का प्रभाव दिखाई देने लगा। महात्मा गांधी ही नहीं बल्कि गोपाल कृष्ण गोखले, तिलक, अरविंद, स्वामी विवेकानंद, भुपेंद्रनाथ, प्रमो बंदाप उपाध्याय, मौलाना मोहंमद आज़ाद, श्रीनिवासाचार्य आदि नेताओं ने जिस तरह स्वाधीनता संग्राम में भाग लेने के लिए अपनी पत्रिकाओं को उद्बोधन का सशक्त माध्यम बनाया उसी तरह तमिल प्रदेश के नेताओं ने भी अपनी पत्रिकाओं से तमिल जनता के मन में राष्ट्र प्रेम के बीज बोये थे। अंग्रेज़ों को हराना इतना आसान नहीं था। इसके लिए जनता को शिक्षित करना अत्यंत आवश्यक था। "अंग्रेज़ों के पास भारत में तीन प्रसिद्ध स्थान थे– कलकत्ता, मद्रास तथा बंबई। इसका परिणाम यह था कि यदि शत्रु इनमें से किसी स्थान को जीत लेता तो भी दो स्थान शेष थे। यदि शत्रु एक ही समय में दो स्थान भी जीत लेता, तो भी अंग्रेज़ों के पास एक स्थान सदैव रहता क्योंकि तीनों स्थान एक दूसरे से दूर थे। तीनों स्थानों को एक ही समय जीता नहीं जा सकता था।"आगे प्रमुख तमिल पत्रिकाओं पर विचार किया जाएगा।

सुदेसमित्तिरन: तमिल पत्रिका के इतिहास में 'सुदेसमित्तिरन' का स्थान उल्लेखनीय हे।भारतीय राष्ट्र कांग्रेस के प्रणयन के कारण बननेवाले श्री जी. सुब्रह्मण्य अय्यर नेसुदेसमित्तिरन का प्रणयन किया। स्वतंत्रता के पूर्व अंग्रेजों के द्वारा भारतवासियों पर किए गए अत्याचारों को जनता के सम्मुख उजागर करने के उद्देश्य से इस पत्रिका का आरंभ किया था। 'तमिलवासियों की बुद्धिमत्ता को समुन्नत करना ही

सुदेसमित्तिरन' का प्रमुख उद्देश्य था। दक्षिण अफ्रीका में गांधी जी द्वारा चलाए गए आंदोलनों को तमिल भाषियों तक उन्होंने पहुँचाया था। यहाँ पर यह अत्यंत उल्लेखनीय बात है कि नेटाल, ट्रॉंसवाल, केप कॉलोनी, आरंजुरिवर स्टेटस आदि दक्षिण अफ्रीका के राज्यों में सुदेसमित्तिरन के पत्रकार तैनात थे। 1892 से लेकर 1914 तक दक्षिण अफ्रीका से 195 पत्रों का प्रकाशन हुआ। गांधी जी के बारे में सर्वप्रथम प्रकाश डालनेवाली पत्रिका होने का श्रेय इसी को है।स्वतंत्रता के पूर्व तत्कालीन दमनकारी ब्रिटिश सरकार के अत्याचारों से डरे बिना लोगों के सामने उनके बारे में प्रस्तुत करने का साहसपूर्ण कार्य किया था।स्वाधीनता संग्राम में साथ देते हुए 'सुदेसमित्तिरन' ने यह सिद्ध कर दिया कि राजनैतिक–आर्थिक–सामाजिक विषयों से संबंधित विश्लेषणात्मक प्रस्तुति तमिल भाषा में भी संभव है। साईमन कमिशन का स्वागत 'जस्टिस पार्टी' ने चेन्नै में किया तो संपूर्ण भारत में सबने उसका विरोध किया। हिंदू पत्रिका में भी इसे द्रोहपूर्ण बताया गया। उसी पत्रिका में जनता की मानसिकता का भी वर्णन मिलता है, यथा–"1929 फरवरी 18 तारीख को समस्त चेन्नैवासी एक–साथ होकर साइमन कमिशन का बहिष्कार करने लगे। सारे शहर में दुकानें बंद थीं। काले झंडे भी फहराए गए।"

कांग्रेस महासभा की प्रथम बैठक में प्रथम संकल्प को पारित करने का गौरव श्री जी. सुब्रह्मण्य अय्यर को ही मिला था।इन्हें तमिल भाषियों के मन में स्वाधीनता–बोध पैदा कराने वाले प्रथम हस्ति माना जा सकता है।

विवेकचिंतामणि:तमिल पत्रकारिता के इतिहास में सी.वी. स्वामीनाथ अय्यर ने अपनी पत्रिका 'विवेक चिंतामणि' के द्वारा अक्षुण्ण स्थान प्राप्त कर लिया है।1892 में शुरू करते हुए गाँवों में भी पत्रिका को पहुँचाते हुए ग्रामीण जनता में भी उन्होंने साक्षरता की ज्योति जगाई थी। पत्रिकाओं एवं लघु पुस्तिकाओं के द्वारा जनता के मन में साक्षरता की इच्छा जगाते हुए उनके जीवन में ज्ञान की ज्योति से प्रज्ज्वलित करना ही इस पत्रिका का उद्देश्य था। इस तरह किए बिना अपने समाज, भाषा और देश का सही ज्ञान जनता में नहीं हो सकता । इस तरह के ज्ञान के बिना उनमें स्वाधीनता बोध जाग्रत करना संभव नहीं था। ऐसा विवेक जाग्रत करने के लिए इस पत्रिका ने कई कष्टों का सामना किया था और रजत जयंती तक मनाई थी।

लोकोपकारी:1895 में प्रारंभ होने वाली 'लोकोपकारी' पत्रिका1895 ई. से लेकर लगातार पचपन सालों तक प्रकाशित होने लगी। वी. नटराज अय्यर, पंडित विसालाक्षी अम्माल, कोत्र वडिवेलु चेट्टियार, सु. नेल्लैयप्पर, स्वामी चिदंबरनार आदि संपादकों ने इस पत्रिका की खूब सेवा की। जन–मानस में भाषागत–प्रेम, धार्मिक–प्रेम और देश–प्रेम जगाने हेतु इस पत्रिका ने उल्लेखनीय कार्य किया है। नटराज अय्यर के द्वारा 'ज्ञानत्तिरट्टु' में स्वामी विवेकानंद के विचारों को संकलित किया गया है। सर्वधर्म समभाव के उद्देश्य से सभी जाति, आर्थिक स्तर, धर्म, प्रदेश आदि से जुड़ी हुई जनता के लिए इस पत्रिका में सौहार्दता स्थापित की गई है। को. वडिवेलु वेदांतों से संबंधित अपने लेखों के साथ–साथ मातृभाषा–प्रेम से संबंधित

विचारों के लिए भी प्रसिद्ध थे।इनके पश्चात् संपादक नेल्लैयप्पर भी इसी दिशा में कार्यरत थे।सुब्रह्मण्य भारतीयार की कविताओं को तमिल भाषियों के सामने प्रस्तुत करने का श्रेय इसी पत्रिका को जाता है। इस पत्रिका की विशेषता यही है कि अत्यंत सरल शैली में बहुत गंभीर विषयों को जनता तक पहुँचाने में यह सक्षम थी।गांधीवादी विचारधारा, सामाजिक सुधार, तमिलभाषा का विकास, धार्मिक विषय आदि कई परिमाणों में लोकोपकारी लेख प्रस्तुत होते थे।

तमिलर नेसनः1917 में शुरू होने वाली इस पत्रिका के संपादक के रूप विख्यात लेखक माधवय्या थे। जिस समय वैज्ञानिक जागृति की आवश्यकता महसूस होती थी उस समय इस पत्रिका का जन्म हुआ।कुरीतियों एवं अंधविश्वासों से युक्त समाज की प्रगति राजनैतिक स्वाधीनता मात्र से संभव नहीं हो सकती। ऐसा भी कहा जा सकता है कि राजनैतिक स्वाधीनता के लिए स्वस्थ विचार से युक्त समाज की आवश्यकता उस समय की माँग थी। क्योंकि इन्हीं बातों के आधार पर अंग्रेज़ सरकार भारतवासियों के मन में अपनी संस्कृति एवं सभ्यता के प्रति हीनता बोध पैदा कर दिया था।अ.माधवय्या और जस्टिस सदाशिव अय्यर ने तमिल प्रदेश में बहुमुखी ज्ञान के प्रचार प्रसार के उद्देश्य से 'तमिल शैक्षिक संघ' की स्थापना की जाए। इस संघ के द्वारा ही इस पत्रिका की शुरूआत हुई। पत्रिकाएँ, पुस्तकें, व्याख्यान आदि के द्वारा तमिलवासियों के बीच में आधुनिक एवं वैज्ञानिक विचारों को ले जाने के लिए माधवय्या ने अत्यंत परिश्रम किया था।सामाजिक सुधार को उन्होंने अपना कर्तव्य माना था। बाल विवाह एवं विधवा पुनर्विवाह के विरुद्ध उन्होंने काम किया था।तमिलर नेसन पत्रिका में माधवय्या ने इस तरह के नए विचारों का प्रतिपादन किया था।

किसी तरह के वाणिज्यिक लाभ की अपेक्षा के बिना माधवय्या ने इस पत्रिका को तमिल भाषियों की बौद्धिक क्षमता, दुनियादारी ज्ञान एवं कार्य क्षमता को बढ़ाने के लिए चलाया था। उनकी इस महत् सेवा के लिए सहायता करते हुए तत्कालीन विचारकों एवं लेखकों ने इस पत्रिका को अपने लेखों एवं रचनाओं द्वारा समृद्ध किया था।किसी भी भाषा को समृद्ध बनाने में शब्दकोषों का महत्वपूर्ण योगदान है।तमिल ज्ञान लोक में अपने शब्दकोषों के द्वारा समृद्धि लाते हुए इस पत्रिका ने दूसरे तरीके से इस प्रदेश की सेवा की है। तमिलवासियों के वैज्ञानिक ज्ञान के विकास को बढ़ावा देने के उद्देश्य से इस पत्रिका ने महत्वपूर्ण योगदान दिए हैं।

तमिलनाडुः तमिलनाडु में कांग्रेस के प्रमुख नेता डॉ वरदरासुलु नायुडु के द्वारा 1919 वर्ष में 'तमिलनाडु' पत्रिका का प्रारंभ हुआ था।1926 के बाद यह दैनिक समाचार पत्र के रूप में प्रकाशित होने लगा था।इस पत्रिका के प्रारंभ में ही तिरंगे झण्डे में हलधारी कृषक को दोनों ओर खड़ा करते हुए उसके नीचे "स्वराज्य से युक्त जीवन ही सुखमय जीवन है" जैसा वाक्य अंकित है। स्वतंत्रता के प्रति लोगों के मन में इच्छा पैदा कराने के उद्देश्य से इसका प्रतीक चिह्न अंकित था जो दस हज़ार प्रतियों तक बिकती थी। संपादक वरदराजुलु 'तमिलनाडु' पत्रिका की हर एक पंक्ति में तमिल संस्कृति की गंध को ही प्रधानता देते थे। वे चाहते थे कि हर एक क्षेत्र के नागरिक को पहले देश की स्वाधीनता के

लिए योद्धा बनकर लड़ने के बाद ही नागरिक बनना है। तमिलनाडु के राजनीतिक जीवन एवं पत्रिका के इतिहास में 1917 से लेकर 1930 तक वरदराजुलु ने काफी सेवा की। इसीलिए स्वतंत्रता सेनानी व. उ. चिदंबरम पिल्लै ने इन्हें "दक्षिण के तिलक जी" की उपाधि दी थी।

नवशक्तिः तमिल भाषा के सेवक तिरु.वी. कल्याणसुंदरम जी बहुमुखी प्रतिभावान होने के साथ–साथ सफल पत्रकार भी थे।1920 में संपादक के रूप में इन्होंने नवशक्ति का कार्यभार संभाला था।तमिल पत्रिका के क्षेत्र में तिरु.वि. क. का योगदान इसीलिए उल्लेखनीय है कि तमिल भाषियों के मन में उन्होंने इस पत्रिका के द्वारा नवीन ऊर्जा का संचार किया था।इस पत्रिका के माध्यम से उन्होंने गांधीवादी विचारधारा का प्रतिपादन करते हुए स्वाधीनता के प्रति इच्छा उत्पन्न करने के कारण अंग्रेज़ों की कोपाग्नि का शिकार होना पड़ा।इस पत्रिका के द्वारा समरसता, भ्रातु–प्रेम, प्राकृतिक जीवन शैली, काव्यों एवं चित्रों के विचार, मातृभाषा के प्रति प्रेम, अहिंसा आदि का प्रतिपादन किया गया था।

सेंदमिळचेल्विः 1923 में प्रारंभ होने वाली तमिलचेल्वि पत्रिका के लिए कई प्रतिष्ठित लेखकों ने योगदान दिया था।व. सुब्बैय्यापिल्लै के निरीक्षण में धार्मिक तथ्यों को तमिलवासियों के बीच में सेंदमिळचेल्वि के द्वारा होता था। धार्मिकता, साहित्यिक सेवा, ऐतिहासिक तथ्य, शब्दों का अनुसंधान, नाटकों से जुड़े कार्य, संगीत से जुड़े कार्य, अनुसंधान, कलात्मक शब्दों के सृजन, तमिल भाषा का गुणगान, वैज्ञानिक ज्ञान आदि को तमिल वासियों के बीच में प्रसारित करने का महत् कार्य सेंदमिळचेल्वि ने किया था।

तमिळ पोळिलः करंदै तमिल संघ के लक्ष्य को पूरा करने के उद्देश्य से 1925 में 'तमिळ पोळिल' का जन्म हुआ। इस पत्रिका ने तमिल प्रदेश, तमिल जाति, तमिल भाषा आदि से जुड़ी हुई समस्याओं के संबंध में तमिल भाषियों को सूचित करने का भार उठा लिया था।तमिल भाषा का इतिहास, प्राचीन तमिल पुस्तकों का प्रकाशन, तमिल पुस्तकों का मूल्यांकन, तमिल संघम से जुड़े हुए समाचार भी इस पत्रिका में समय–समय पर प्रकाशित होकर तमिल प्रदेश के निवासियों को अपने जड़ों का सही बोध कराया जाता था।

कुड़ि अरसुः 1925 वर्ष से तंदै पेरियार (ई वे रामस्वामी) तथा तंग पेरुमाल के संपादन में कुड़ि अरसन के प्रारंभिक अंक प्रकाशित हुए थे।"सभी एक ही कुल के है,सभी एक ही जाति के है" वाली सुब्रह्मण्य भारतीयार की पंक्तियाँ इस पत्रिका के मुखपृष्ठ में अंकित थे।इस पत्रिका के उद्देश्य के रूप में ऐसा बताया गया था कि सभी क्षेत्रों में तमिलवासियों के विकास के लिए कुड़ि अरसु कार्यरत है।इस पत्रिका का दावा है कि सामान्य जनता के सामने वास्तविक यथार्थ को किसी तरह के आवरण के बिना यह प्रस्तुत करती है।इस पत्रिका के संपादकीय अत्यंत आकर्षक हैं। 'हमारी राजनीतिक स्थिति', 'हिंदुओं की कुप्रथाएँ', 'देशद्रोह क्या है?', 'क्या यही स्वराज्य है?', 'धर्म और मानवीय समधर्म', 'सब के लिए शिक्षा' आदि संपादकीय अत्यंत आकर्षक एवं उल्लेखनीय हैं। सामाजिक जागरण, स्त्री की पराधीनता, पुराणों एवं इतिहासों से जुड़े हुए असत्य, अंधविश्वास, मदिरानिषेध आदि सामाजिक सुधारों से जुड़े हुए विचारों को कुड़ियरसु पत्रिका में स्थान प्राप्त था।

विमोचनमः मधुनिषेध पर ज़ोर देते हुए 1929 में राजाजी के द्वारा इस पत्रिका का प्रारंभ हुआ था। सुप्रसिद्ध लेखक कल्कि को शंका हो गई थी कि कोई पत्रिका मधुनिषेध से जुड़ी हुई बातों को मात्र लेकर कैसे चल सकती है। एक हज़ार प्रतियों के साथ शुरू होने वाली यह पत्रिका दसवें अंक में चार हज़ार प्रतियों के मुद्रण तक पहुँच गई थी। विचार–केंद्रित चित्र इस पत्रिका की बड़ी विशेषता थी। इनका तमिल पत्रकारिता के इतिहास में प्रमुख स्थान है। अपने तन, मन, धन एवं भाषा के द्वारा मधुनिषेध के उद्देश्य को लेकर राजाजी के द्वारा चलाई गई यह पत्रिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसमें प्रस्तुत कहानियाँ, कविताएँ, नाटक, संपादकीय, प्रश्नोत्तरी, आवरण पृष्ठ आदि में मधुनिषेध को ही एक मात्र अभिव्यक्ति का विषय बनाया जाता था।

सुदंतिरच्चंगुः श्री गणेशन और श्री सुब्रह्मण्यन के संपादकत्व में स्वाधीनता प्राप्ति के उद्देश्य से इस पत्रिका का प्रारंभ हुआ।गांधीवादी विचारधारा को लेकर चलनेवाली 'सुदंतिरच्चंगु' पत्रिका में सुब्रह्मणिय भारतीयार की कविताओं के लिए विशिष्ट स्थान था। शासकों की कटु निगरानी में 'सुदंतिरच्चंगु' खूब प्रचलित होने लगी।तमिल पत्रिका के क्षेत्र के लिए श्री गणेशन का योगदान अविस्मरणीय है। 'तिप्पु' एवं 'कुसेलन' के उपनाम से श्री सुब्रह्मण्यन के द्वारा लिखे गए व्यंग्यात्मक लेख अत्यंत मशहूर हैं। सार्थक शीर्षक, गहरे विचार, आकर्षक शैली, मुहावरों एवं लोकोक्तियों का सही प्रयोग आदि इनके लेखन की विशिष्टताएँ हैं।एजेंटों के द्वारा पत्रिकाओं के विपणन को प्रारंभ करने वाली प्रथम पत्रिका के रूप में इसे बताया जा सकता है। यथार्थ को पूरे सत्य के साथ प्रस्तुत करते हुए उत्कृष्ठता की ओर उन्मुख होकर अपने अधिकार को प्राप्त करने के दृढ़ विश्वास को यह पत्रिका अपना उद्देश्य मानती है। यह पत्रिका पूर्ण स्वराज को ही अपना सर्वस्व मानती है।लाखों की संख्या में इस पत्रिका की बिक्री हो रही थी।

गांधीः 1931 वर्ष में तेनकाशी शंकरलिंगम सोक्कलिंगम आदि के द्वारा प्रारंभ किए जाने वाली गांधी पत्रिका परवर्ती मणिक्कोड़ि पत्रिका की अग्रणी थी। इसमें गांधीवादी विचारधारा पर आधारित रचनाओं की प्रधानता थी।म. सिंगारवेलु, टी. एन. रामस्वामी आदि ने वैज्ञानिक लेखों को प्रकाशित किया था। तमिल भाषियों को विदेशों से जुड़े हुए समाचारों से अवगत कराता था। पुदुमैप्पित्तन, बी.एस. रामैय्या आदि की रचनाएँ इसमें प्रकाशित हैं।

मणिक्कोडिः 1933से लेकर1950 तक प्रकाशित होने वाली 'मणिक्कोडि' पत्रिका के काल विभाजन को इस देश में प्रचलित हर एक आंदोलन के पीछे कोई पत्रिका ही कार्यरत है। तमिलनाडु में राजनीति, समाज, धर्म, अर्थ, कला एवं साहित्य का विकास मणिक्कोडि में होने लगा। इस प्रदेश में देशभक्ति के प्रचार प्रसार में 'मणिक्कोडि' का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। मातृभाषा के माध्यम से उच्च शिक्षा पर यह पत्रिका ज़ोर देती थी।राजनीतिक क्षेत्र में यह महात्मा गांधी के विचारों का पक्ष लेने लगा। 'मणिक्कोडि' पत्रिका के द्वारा तत्कालीन समाज में होने वाले पुनर्जागरण के बारे में डॉ सु. पंचांगम का कथन है कि,"इस पत्रिका में लिखने वाले भारतीदासन, व.रा., मौनी, पुदुमैप्पित्तन, कु.प. राजगोपालन, न. पिच्चमूर्ति, सि. सु. चेल्लप्पा, बी.एस. रामैय्या,

क.ना.सु. आदि नवीन लेखकों ने दूसरे पुनर्जागरण लगाकर दिखाए हैं"।यह तो ऐसा ऐतिहासिक सत्य है कि इनके लेखन ने बहुत बड़े योगदान देने के साथ–साथ अपनी प्रतिष्ठा को भी प्रदर्शित किया है"।

दिनमणिः 'दिनमणि' पत्रिका 1934 में स्वाधीनता संग्राम के लिए समर्पित हो गई थी।11 सितंबर के दिन महाकवि सुब्रह्मण्य भारतीयार के गीतों को ही अपने सैद्धांतिक प्रतिपादन के लिए चुना था।"गरीबों के दुखमोचन हेतु सबके संतोष हेतु सतत निडर रहने वाली दिनमणि" इस घोषणा से युक्त संपादकीय के मन में बेजोड़ स्थान है।राजनीतिक आलोचना में पूरी तरह लगे रहने पर भी कांग्रेस के पक्ष में ही हमेशा कार्यरत थी। सोक्कलिंगनार के पश्चात् 1940 से ए. एन. शिवरामन दिनमणि के विकास में खूब योगदान देने लगे।

हिंदुस्तानः1938 में एम.एस. कामत के द्वारा इस पत्रिका की शुरूआत हुई।लेकिन 1054 में रुक गई । एम.एस कामत का 'सण्डे टाइम्स' पत्रकारिता के क्षेत्र में अत्यंत प्रसिद्ध था। राजाजी से संबद्ध हनुमान विशेषांक एवं भारतीयार व.वे.सु अय्यर, रमणर आदि के विशेषांक प्रसिद्ध हुए।

भारतीय स्वाधीनता के लिए तमिल पत्रकारिता की भूमिकाः

"ईश्वर की सेवा की अपेक्षा देश की सेवा ही महत्वपूर्ण है"– इस लक्ष्य के साथ तमिल पत्रकारिताएँ कार्यरत थीं। महारानी विक्टोरिया के शासन–ग्रहण के अवसर पर पटाखों पर किए गए खर्च की आलोचना करते हुए 'दिनवद्र्धमानी' में ऐसा लिखा गया किइस धन से गरीबों को खिलाया जा सकता है। 'नेटिव पब्लिक ओपीनियन (1870)', 'सुदेशाभिमानी (1877)', 'सुदेसमित्तिरन (1882)', 'तमिल नेशनल पत्रिका (1927)', 'इंडिया (1903)', 'विजया (1909)', 'सूर्योदयम (1908)', 'ज्ञानभानु (1913)', 'देशभक्तन (1917)', 'नवशक्ति (1920)', 'तमिलनाडु (1927)', 'ऊळियन (1920)', आदि कई पत्रिकाओं का स्वाधीनता संग्राम के लिए विशेष योगदान रहा है।

स्वाधीनता संग्राम की पृष्ठभूमि में जनता के मन में देशप्रेम के जो बीज तमिल पत्रिकाओं ने बोया था उन्होंने वट वृक्ष का रूप ले लिया था। अतः इन पत्रिकाओं को सुरक्षित रखने से भविष्य की हमारी पीढ़ी को हमारी भाषा, देश, संस्कृति, सभ्यता आदि के लिए महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन पत्रिकाओं ने विभिन्न क्षेत्रों का परिचय अपने अंकों के द्वारा दिया जो अत्यंत महत्वपूर्ण है। अतः यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि भारत के स्वाधीनता संग्राम और तमिल पत्रिकाओं का अटूट संबंध है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भारत में स्वाधीनता की आग को सुलगाने में पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।तमिल पत्रिकाओं ने किसी तरह के व्यावसायिक लाभ के बिना अपने सामाजिक एवं राष्ट्रीय कर्तव्य को अंग्रेजों की कुरीतियों का उजागर करते हुए किया है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. विडुदलैप्पोरिल तमिळगम्, म. पो. शिवज्ञानम्, पूंगोडी पदिप्पगम्, 14, चित्तिरैक्कुळम मेर्कु वीदि, मइलापूर, चेन्नै–4, प्र.सं.1982
2. हरि एम. चौगांवकर और डॉ नंदा एच. दास,भारत का ब्रिटिश कालीन इतिहास, गुरुकुल विद्यालंकार, दिल्ली.53, प्र. सं. 2011

3. लता मिगलानी, स्वतंत्रता संग्राम क्रांति कथा, मेट्रो बुक्स, दिल्ली– 110032, प्र.सं. 2011
4. सिर्पी बालसुब्रह्मणियम और नील पद्भनाभन, पुदिय तमिल इलक्किय वरलारु भाग 3, साहित्य अकादमी, चेन्नै–18, प्र. सं. 2013
5. क. प. अरवाणन, तमिळ मक्कळ वरलारु, तमिलकोट्टम, 2, मुनिरत्तिनम गली, अय्यावु कॉलनी, अमैंदकरै, चेन्नै–600029, प्र.सं.2012
6. डॉ एम शेषन्, तमिल नवजागरण और सुब्रह्मण्य भारती, माणिक्कम और चिन्नम्माल एजुकेशनल ट्रस्ट, चेन्नै–91, प्र. सं.2009

❑❑❑

का भाषा का संस्कृत

रमेश चंद्र

भाषा वह साधन होती है जिसके माध्यम से हम अपनी बात कहते हैं और दूसरों की बात समझते हैं। इस प्रकार भाषा हमारी अभिव्यक्ति का माध्यम होती है। भाषा सीखे बिना हम न किसी विषय का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, न उसे अभिव्यक्त कर सकते हैं। इस प्रकार कोई भी विषय सीखने से पहले भाषा सीखनी अनिवार्य होती है। भाषा सीखे बिना हम अपने आसपास उपलब्ध ज्ञान को भी नहीं जान सकते। जिस प्रकार सूंघने की शक्ति न होने पर सुगंध का ज्ञान नहीं होता, आँखों में दृष्टि न होने पर संसार का ज्ञान नहीं होता, उसी प्रकार मस्तिष्क में भाषा न होने पर किसी विषय का ज्ञान नहीं होता।

एक और बात देखने में आती है। हम अपनी मातृभाषा को तो सहज समझते हैं, परंतु अन्य भाषाओं को कठिन; जबकि ऐसा नहीं होता। यदि शेष भाषाएँ कठिन होतीं तो वे उन्हें सीखने वालों को नहीं आतीं, जबकि उनके शिशु भी उन्हें सहजता से सीखते रहते हैं। कोई दूसरी भाषा हमें इसलिए कठिन लगती है, क्योंकि हम उसके बोलने वाले लोगों के मध्य नहीं रह रहे होते अर्थात् हमने उसे सहज रूप में नहीं सीखा होता। हर भाषा के अपने–अपने नियम होते हैं, इसलिए जब हम अंग्रेजी आदि कोई दूसरी भाषा सीखने लगते हैं तो उसके नियम अपनी मातृभाषा के नियमों से अलग पाते हैं। तब हम उसके नियमों की तुलना अपनी मातृभाषा के नियमों से करने लग जाते हैं जिससे वह कठिन लगती है। उसे हम निर्मल भाव से नहीं सीखते। हम भाषाओं के नियमों की उलझन में पड़ जाते हैं, इसलिए बड़े होने और हमारा दिमाग विकसित होने के बावजूद हम दूसरी भाषा सीखने में देर लगा देते हैं, जबकि शिशु किसी द्वंद्व में नहीं पड़ता और उसे जो कुछ सिखाया जाता है या वह जो कुछ देखता है, उसे वह सत्य मानता है और बिना किसी द्वंद्व के निर्मल भाव से सीखता है। उसे तो वह भाषा सीखने में कोई कठिनाई नहीं होती।

इसके अतिरिक्त हम अपनी भाषा के अपवादों को तो भूल जाते हैं, परंतु दूसरी भाषाओं के अपवादों पर ध्यान देने लगते हैं। ऐसा करके हम अपने आपको भ्रम में डाल लेते हैं। इसलिए हम भाषाएँ सीखें और दूसरी भाषा सीखते समय अपने मन के द्वंद्व निकाल दें। हर भाषा की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि परिस्थितियाँ अलग–अलग होती हैं, जिस कारण उनके नियम और उनके शब्द अलग–अलग रूप में विकसित होते हैं। इसलिए कोई दूसरी भाषा सीखते समय हम यह न सोचें कि इस भाषा में ऐसा क्यों है, हमारी भाषा में तो ऐसा नहीं है। उस समय हम अपनी भाषा, उसके ज्ञान और उसके नियमों को अपने मस्तिष्क से बिलकुल निकाल दें। केवल यही मानें कि जो भाषा हम सीख रहे हैं, उसके अपने अलग नियम हैं और उसे हमें उसके नियमों के अनुसार ही सीखना है। हम उन्हें बदल नहीं सकते। फिर दुविधा में क्यों पड़ें? हम केवल यही

बात ध्यान में रखें कि औरों ने उसे सीख लिया है तो हम भी उसे सीख जाएँगे और नियमानुसार सीखने से एक दिन वह हमें भी आ जाएगी। भाषा सीखने के बारे में कहा गया है –

"यदि शब्द हम एक नया प्रति दिन रट पाए
दो वर्षों में शब्द नए कितने आ जाएँ
यदि क्रम चलता रहे वर्ष दस–पाँच निरंतर
उस भाषा के बन जाएँ विद्वान धुरंधर।"

यह भी देखने में आता है कि कुछ लोग न दूसरी भाषा का सम्मान करते हैं, न उसके बोलने वालों का; बल्कि उन्हें हेय समझते हैं। यह बहुत अशोभनीय है और भारत जैसे बहुभाषी देश में तो यह असहनीय है। जब हम एक–दूसरे के समाज से अपने काम निकालते हैं, व्यक्तियों का सहयोग लेते हैं, तो उनकी भाषा से और भाषा के आधार पर उनसे नफरत कैसे कर सकते हैं?

इसलिए हमें सोच बदलने की जरूरत है। यह समझने की जरूरत है कि कोई दूसरी भाषा भी हमारी अपनी ही भाषा है, हमारे देश की भाषा है। उसका हमें सम्मान करना है और उसमें संजोयी अच्छी–अच्छी बातें सीखनी हैं। वह कभी असभ्यता का जमाना था, जब हम अपने ज्ञान के अभाव के कारण एक–दूसरे को कमतर समझते थे। आज हर समाज, हर व्यक्ति सक्षम है, कोई कमतर नहीं है। अब हम किसी से कटकर नहीं रह सकते। हमें एक–दूसरे को अपनाना ही है, चाहे आज अपनाएँ या कल। अंग्रेजी भाषा को ले लीजिए। भारत में इसे बहुत कठिन समझा जाता था और इसका भारी–भरकम विरोध भी होता था। परंतु आज हिंदी अथवा किसी क्षेत्रीय भाषा की अपेक्षा लोग इसे अधिक अपनाते हैं। इसके माध्यम से शिक्षित व्यक्ति पूरे विश्व से जुड़ सकता है। हिंदी के माध्यम से भी दक्षिण अथवा पूर्वोत्तर भारत के लोग उत्तर भारत के लोगों से जितना आज जुड़ गए हैं, उतना महज 50 वर्ष पहले नहीं जुड़े थे। वह केवल इसलिए फलीभूत हुआ क्योंकि अन्य भाषा–भाषियों ने हिंदी को दिल से अपनाया। इस प्रकार भाषा जुड़ने का माध्यम होती है, मनमुटाव का नहीं।यदि सभी लोग एक–दूसरे की भाषाओं को इसी प्रकार दिल से अपनाएँ तो भाषा की असहजता के साथ–साथ सामाजिक विभिन्नता की बात ही समाप्त हो जाए। जरूरत इस बात की है कि हम अपनी भाषा के श्रेष्ठ होने का अहम्, अपने बड़े होने का अहम् त्याग दें, देश की भाषाओं के प्रति सौहार्द रखें।

हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि हर भाषा अपने आप में पूरी तरह सक्षम होती है और वह अपने समाज की भाषिक आवश्यकताओं की पूर्ति उसी प्रकार करती है, जिस प्रकार कोई दूसरी भाषा। उदाहरण के लिए संस्कृत या हिंदी भाषा की शब्दावली विशाल होते हुए भी यह तमिल भाषा–भाषी या ग्रीनलैंड के लोगों की भाषिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकती, क्योंकि हर जगह पर्यावरण, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक आदि तरह–तरह की आवश्यकताओं के अनुसार अलग–अलग शब्दों, वाक्यों, मुहावरों, अवधारणाओं का प्रयोग होता है। इस प्रकार एक भाषा महान् और दूसरी भाषा हीन नहीं हो सकती। इसलिए हम दूसरी भाषाओं को अपनी भाषा की तरह सम्मान दें। यह सोचें कि यदि हम किसी दूसरे समाज में रह रहे होते तो हम भी उसी की भाषा बोल रहे होते। फिर भाषाओं की आलोचना क्यों? हम यह क्यों न समझें कि भाषाएँ तो सामाजिक सौहार्द

लाने की साधन हैं, दो समाजों में मेल–मिलाप करवाने की साधन है, विचारों और ज्ञान के आदान–प्रदान, विकास, राष्ट्रीय अथवा अंतरराष्ट्रीय व्यापार की हेतुक हैं? भाषाओं से हम बहुत कुछ सीखते भी तो हैं––उनके समाजों की संस्कृति, उनकी विचारधारा, उनमें लेखबद्ध विचार, उनमें वर्षों से संजोया ज्ञान, उनके समाजों का वातावरण, उनकी अर्थ–व्यवस्था, उनका रहन–सहन और सबसे अधिक उनके माध्यम से हमें उनके निकट आने का अवसर मिलता है। यदि भाषाएँ न हों तो हम जंगली पशुओं की भाँति कभी एक–दूसरे से मिलेंगे ही नहीं और परस्पर लड़ते ही रहेंगे। भाषा के बिना प्यार नहीं उपजता। इसलिए किसी भाषा को कोसिए मत बल्कि उसे अपनाइए, उसके निकट जाइए, उसके बोलने वालों को उसी तरह गले लगाएँ, जैसे अपने भाषाभाषियों को लगाते हैं। हर भाषाभाषियों ने नोबल पुरस्कार तक प्राप्त किए हैं, ऐसे बड़े–बड़े काम किए हैं, जो हमने नहीं किए होते। इसलिए उन्हें ज्ञान में कम कैसे समझ सकते हैं? यह भी समझें कि जब अन्य भाषाभाषी हमें इसी प्रकार हेय मानता है तो हमें कैसा महसूस होता है। कोई दूसरी भाषा भी हमारे ही तरह किसी दूसरे राष्ट्र की एक सभ्यता है। यह भी देखें कि क्या पूरे संसार में कोई एक भाषा हो सकती थी या क्या केवल हमारी अपनी भाषा विश्व के सभी समाजों का आधार बन सकती है? यदि नहीं तो फिर सामाजिक सौहार्द का दृष्टांत बनिए। कबीर ने चौदहवीं शताब्दी में ही कह दिया था कि भाषाओं में कुछ नहीं रखा, केवल हमारे भाव अच्छे होने चाहिए। जैसे किसी एक चीज की आवश्यकता की पूर्ति कोई दूसरी चीज नहीं कर सकती, उसी प्रकार कोई भाषा किसी दूसरी भाषा का विकल्प नहीं हो सकती।

आखिर कोई भाषा कम कैसे हो सकती है? हर भाषा में ही तो अभिव्यक्तियों के लिए आवश्यक सभी शब्द और पद होते हैं। हम जरा इस बात पर नजर डालें कि भाषा वाक्यों का समूह होती है, वाक्य केवल शब्दों के हैं और शब्द केवल ध्वनियों के। इस प्रकार हर भाषा केवल ध्वनियों का समूह होती है। किसी ध्वनि के लिए यदि भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में अलग स्वनिम अथवा लेखिम दे दिया गया हो और इस प्रकार किसी ध्वनि–समूह अर्थात् शब्द के स्वनिम–समूह अथवा लेखिम–समूह भिन्न हो गए हों, परंतु उनसे प्रतीति एक ही अर्थ की हो तो मात्र स्वनिम या लेखिम–समूह में भिन्नता के आधार पर कोई भाषा हीन नहीं हो सकती। हर भाषा दैवी उत्पत्ति होती है। किसी के देव को आप कमतर कहें या कोई आपके देव को कमतर कहे तो उसे या आपको कैसा महसूस होगा? भूलिए नहीं कि वैसी ही बात भाषा के संबंध में भी है। भाषा कोई धारणा नहीं होती, जो अच्छी या बुरी कही जा सके, जिसके अच्छा या बुरा होने पर मनन किया जा सके। भाषा तो हर समाज को एक दिव्य प्रसाद होता है।

हर भाषा में अभिव्यक्तियों के लिए आवश्यक शिल्प, लोकोक्तियाँ, मुहावरे, अलंकार, समानार्थी, विपरातार्थी, पर्यायवाची, संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण, क्रिया–विशेषण, समुच्चयबोधक, कारक, समास, संधियाँ आदि सभी व्याकरणिक उपादान होते हैं। तत्सम और तद्भव शब्द हर भाषा में होते हैं, व्याकरणिक कोटि के स्तर पर शब्दानुकूलन हर भाषा में होता है, संकर शब्द होते हैं, प्रतिध्वानिक शब्द होते हैं तथा दूसरी भाषाओं के शब्द होते हैं। हर भाषा

में सूक्तियों, उपदेशों, शिक्षाओं आदि का भंडार होता है। हर भाषा अपने क्षेत्र में सामाजिक स्वीकारोक्ति की माध्यम होती है, हर भाषा आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से गुजरी हुई होती है और हर भाषा का सायास शुद्धिकरण भी किया हुआ होता है। हर भाषा में बड़े–बड़े विद्वान, गुरु, संत आदि भी होते हैं। हर भाषा की प्रकृति एक जैसी होती है, हर भाषा के अर्थ और भाव के स्वरूप होते हैं, हर भाषा में शिल्प होता है, हर भाषा की शैली होती है, हर भाषा अपनी पारिस्थितिकी के आधार पर निर्मित होती है, हर भाषा में खंडेतर ध्वनियाँ होती हैं; स्वन, संस्वन, स्वनिम, लेखिम आदि होते हैं। हर भाषा में अल्पतम भेदयुग्म, पदविन्यास, परिपूरक वितरण, मुक्त वितरण, रूप और रूपिम भी होते हैं और हर भाषा की रूप–स्वनिमिकी भी होती है। हर भाषा में शब्दानुशासन, वाक्य विज्ञान, अन्वय–योजना आदि होते हैं। हर भाषा का विकास एक दीर्घ परंपरा और प्रयोग के बाद हुआ होता है और हर भाषा में शब्द–ग्रहण और शब्द–निर्माण की प्रक्रिया एक जैसी होती है। हर भाषा किसी न किसी भाषा–कुल की अंग होती है और हर भाषा मानव के परिवेश की उपज होती है। हर भाषा का कभी अपभ्रंश और प्राकृत रूप रहा होता है, उसकी स्वर–विकास, ध्वनि–विकास, व्याकरणिक विकास, शब्द –विकास की प्रक्रिया होती है। भाषागत विकास की इन प्रक्रियाओं को हेमचन्द्र की इन पंक्तियों से भली–भाँति समझा जा सकता है – 'भल्ला हुआ जु मारिआ, वहिणी म्हारा कंतु। लज्जेज्जम् तु वअंस्सियहु, जई भग्गा घर अंतु।।' क्या आप मानेंगे कि ये शब्द हिंदी भाषा के ही हैं? जी हाँ, ये विकास की प्रक्रिया के दिनों की हिंदी पश्चिमी अपभ्रंश के शब्द हैं। शायद हमें अब इन पर गर्व महसूस न हो, परंतु हमें इन पर गर्व होना चाहिए, क्योंकि हिंदी, जिस पर हमें गर्व है; अपने आधुनिक रूप को विभिन्न अपभ्रंशों के ऐसे ही विकास और सम्मिश्रण के बाद प्राप्त हुई।

हम कुछ और भी आगे मनन करते हैं। हर भाषा जलवायु, मौसम और ऋतुओं से भी समृद्ध हुई होती है, हर भाषा अपनी सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक, व्यावसायिक आदि अभिव्यक्तियों को सक्षम बनाती है, हर भाषा अपने समाज की संस्कृति का अंग होती है, हर भाषा का साहित्यिक इतिहास होता है, हर भाषा की लिपि भी होती है, हर भाषा में शब्द–ग्रहण की प्रक्रिया एक जैसी होती है। हर भाषा की ध्वनिकी भी होती है, व्याकरण और शब्दकोश भी होते हैं। बलाघात, तान, अनुतान, स्वराघात, लक्ष्यार्थ, अभिधार्थ, व्यंग्यार्थ, गौणा, संहिता आदि भी हर भाषा में होती हैं। हर भाषा में एकार्थी, अनेकार्थी आदि अभिव्यक्तियाँ होती हैं। हर भाषा अपने राष्ट्र की गरिमा का पोषण करती है, संचार–व्यवस्था के लिए उपयुक्त होती है और शिक्षा के माध्यम के रूप में उपयुक्त होती है। हर भाषा का अन्य भाषाओं से पूर्वापर संबंध होता है, सामाजिक चेतना एवं विकास के लिए वही उपयुक्त होती है, अपने समाज में वही सौहार्द पैदा करती है। तब किसी भाषा को दूसरी भाषा से अधिक महत्वपूर्ण कहना वैसा ही हुआ जैसे किसी बड़े व्यक्ति को बच्चे से अधिक महत्वपूर्ण कहना हुआ? इसलिए भाषाओं की कीमत नहीं लगानी चाहिए। कोई बात अगर आपको समझ में नहीं आ रही तो भाषा हीन नहीं हो गई। यह तो आदमी–आदमी को हीन समझने जैसी बात हुई। जब कोई

अपनी भाषा से किसी दूसरे समाज की जरूरतों को पूरी नहीं कर सकता तो उसकी भाषा श्रेष्ठ कैसे हो गई? हम यह बात क्यों भूल जाते हैं कि मूलतः बांग्ला में लिखित ''गीतांजलि'' को नोबल पुरस्कार मिला, परंतु संस्कृत जैसी पुरातन भाषा से निकली और महान शब्द–भंडार की स्वामिनी होने तथा विशाल भू–भाग पर शासन करने वाली हिंदी को तो यह गौरव नहीं मिला। इस प्रकार श्रेष्ठता की बात भाषा में नहीं, विचारों में होती है। विश्व में हर भाषा का वक्ता प्रथमतः अपनी ही भाषा सीखकर बड़ा बनता है। इसलिए हम भाषा के सक्षम या असक्षम होने के भ्रमजाल में न पड़ें और किसी भाषा को असहज या कठिन न कहें, न समझें। इसलिए भाषा–भेद को मतभेद का कारण न बनने दें, बल्कि उससे कुछ ग्रहण करें। यह जान लें कि भाषा में कमी नहीं होती, उसके प्रयोक्ता में कमी होती है। कोई अपनी ही भाषा को सही तरह बोल या लिख नहीं पाता और कोई कई–कई भाषाओं में समान सहजता से अभिव्यक्ति कर लेता है। इसलिए यह प्रयोक्ता की निपुणता की बात होती है। इसी निपुणता के कारण गालिब के बारे में कहा गया – 'हैं और भी दुनिया में सुखन्वर बहुत अच्छे, कहते हैं कि गालिब का है अन्दाज–ए–बयां कुछ और।' इसलिए सौहार्द की दृष्टि से यह आवश्यक है कि हम भाषाओं का व्यतिरेकी विश्लेषण न करें, बल्कि ज्ञान–प्राप्ति की दृष्टि से उनको एक–दूसरी का परिपूरक मानें। हमें चाहिए कि हम कई–कई भाषाएँ सीखें तथा देश में अनेकता में एकता के सूत्र को कम से कम यही योगदान दें। जरा ध्यान दें। संस्कृत हिंदी से पुरानी भाषा है और तमिलभाषी तमिल को संस्कृत से भी पुरानी मानते हैं। यह तो केवल भाषिक श्रेष्ठता सिद्ध करने या उनमें परस्पर मतभेद पैदा करने वाली बात हुई। आज जब हर भाषा समान है तो उसका महत्व भी समान है। यह जरूरी नहीं कि जिसकी उत्पत्ति या जन्म पहले हुआ है वही श्रेष्ठ है। ध्यान इस बात पर देना चाहिए कि हर भाषा देश को बहुत कुछ देती रही है और देती है। यदि हम कुछ या किसी एक भाषा को देश की संस्कृति से अलग कर दें, तो हम देश के बहुत बड़े ज्ञान–भंडार से विच्छिन्न हो जाएँगे? मात्र भाषा के आधार पर हम अपने ही हाथों ऐसा नुकसान नहीं कर सकतें। कोई अकेली एक भाषा देश के मस्तक की बिंदी नहीं होती, देश का शृंगार सभी भाषाएँ मिलकर करती हैं। इसलिए भाषा के रूप में अपनी ही संस्कृति के अभिन्न अंग को हम भिन्न क्यों करें? अतः किसी एक ही भाषा को राजदुलारी न समझा जाए, बल्कि जो भाषाएँ हमारे अन्य भाई–बहनों के मस्तिष्क का पोषण कर रही हैं, वे भी हमारी सहोदरी हैं। उनसे भी हमारी उन्नति हो रही है। अपने देश की भाषाओं को हम इसी प्रकार सकारात्मक रूप में लें। भाषाओं को हम भारतमाता के गले में पड़ी माला के अलग–अलग फूल समझें। जैसे किसी एक फूल से माला का निर्माण नहीं हो सकता, वैसे ही भारत जैसे बहुभाषी देश में केवल किसी एक भाषा को अपनाने और दूसरी भाषाओं को छोड़ देने से देश का विकास नहीं हो सकता।

यदि कोई भाषा वाकई सर्वश्रेष्ठ होती तो उसके माध्यम से ज्ञान–प्राप्त अनेक लोग काम, क्रोध, मद लोभ, अहंकार, कपट के दास क्यों होते? उनमें परस्पर ही घृणा, ईर्ष्या, निंदा, चुगली, चापलूसी के कीड़े नहीं होते और उनमें बेईमानी, असहनशीलता,

अनैतिकता, कलह, अविश्वास, देशद्रोह नहीं भरे होते? यदि कोई भाषा विशेष वाकई में सर्वश्रेष्ठ है तो क्यों न अकेली वह उन्हें सद्‌गुण–संपन्न बना पाती? क्यों लोग अंग्रेजी, हिंदी या विश्व की किसी दूसरी भाषा का सहारा लेते हैं? इस प्रकार यदि कोई भाषा विशेष ही व्यक्तियों को गुणवान बना रही होती, तो भारत की छोटी–छोटी जगहों से छोटी–छोटी भाषाएँ बोलकर विश्व पटल पर छा जाने वाली कन्याएँ भारत में देखने को नहीं मिलतीं। इसलिए भाव को भाषा से नहीं जोड़ना चाहिए। अन्यथा भी देखें तो भाषा की बड़ी से बड़ी इकाई वाक्य से लेकर उसकी छोटी से छोटी इकाई शब्द का कोई भाव नहीं होता, उनके अर्थ का भाव होता है। इसलिए कोई भाषा बड़ी नहीं होती, उसके वाक्यों और शब्दों में संजोया भाव बड़ा होता है। इसीलिए कबीर ने कहा, 'का शाखा का संस्कृत भाव चाहिए साँच, काम जु आवे कामरी का लै करै करीअ कुमाच' अर्थात् भाव ही प्रधान है, भाषा नहीं। हिंदू मत में 'धर्म' अर्थात् सही भाव को ही प्रधान माना गया है। धर्म बह्मा के वक्ष से पैदा हुए मानस पुत्र माने जाते हैं, जिनका विवाह दक्ष की 13 पुत्रियों अर्थात् श्रद्‌धा, मैत्री, दया, शांति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्‌धि, मेधा, तितिक्षा, ह्री और मूर्ति से हुआ। धर्म के 13 अंग इन 13 गुणों के रूप में बताए गए हैं अर्थात् भाव या गुण ही सर्वोपरि हैं, कोई भाषा नहीं।

❑❑❑

रहस्य और रोमांच से भरी 'चंडिका' गुफा

लोकेंद्र सिंह

प्रकृति की गोद में बसा अमरकंटक एक प्रसिद्ध और मन को शांति देने वाला प्राकृतिक एवं धार्मिक पर्यटन स्थल है। सबका पोषण करने वाली सदानीरा माँ नर्मदा का उद्गम स्थल होने के साथ ही यह अपने प्राकृतिक पर्यटन स्थलों एवं धार्मिक स्थलों के लिए सुविख्यात है। अमरकंटक की दुर्गम पहाड़ियों और घने जंगलों के बीच सोनमूड़ा, फरस विनायक, भृगु का कमंडल, धूनी पानी और चिलम पानी के साथ ही एक और महत्वपूर्ण स्थान है– चंडिका गुफा। यह स्थान रहस्य और रोमांच से भरा हुआ है। घने जंगलों में सीधे खड़े पहाड़ पर लगभग मध्य में यह गुफा कब और कैसे बनी कोई नहीं जानता? वह कौन योगी था, जो इस अत्यंत दुर्गम स्थान तक आया और यहाँ साधना की। गुफा के बाहर पत्थरों पर लिखे मंत्र भी रोमांच और कौतुहल पैदा करते हैं। ये मंत्र कब लिखे गए, यह भी कोई नहीं जानता। अमरकंटक का यह स्थान सामान्य पर्यटकों के लिए अनदेखा–अनसुना है। बहुत जिद्दी और साहसी लोग ही यहाँ आ सकते हैं। यह जोखिम भरा भी है। एक रोज हम बहुत सारा साहस बटोरकर, अनेक कठिनाइयों को पार कर इस रहस्यमयी और योगियों की तपस्थली चंडिका गुफा तक पहुँचे।

नर्मदा मंदिर से दक्षिण दिशा की ओर लगभग चार किलोमीटर की दूरी पर चंडिका गुफा है। यह अमरकंटक का सबसे दुर्गम पर्यटन स्थल है। खड़े पहाड़ के लगभग मध्य में यह गुफा है। यह सिद्ध पीठ है। कुछ लोग इसे शक्तिपीठ भी कहते हैं। यहाँ साधु–संन्यासी विशेषकर तांत्रिक–योगी साधना करते रहे हैं। चंडिका गुफा तक पहुँचने के लिए कोई सीधा–सपाट मार्ग नहीं है। यहाँ तक आना एक रोमांचकारी और जोखिम भरी यात्रा है। पहाड़ पर ही एक पतली पगडंडी है, जिस पर केवल अकेले चला जा सकता है। यदि सामने से कोई आ जाए तो निकलना मुश्किल हो जाए। इस क्षेत्र की जानकारी रखने वाले लोगों को ही यह रास्ता मालूम है। यही कारण है कि यहाँ तक सामान्य पर्यटक पहुँच नहीं पाते हैं। आमतौर पर बहुत से पर्यटकों को चंडिका गुफा की जानकारी भी नहीं रहती है। पर्यटक मार्गदर्शक (टूरिस्ट गाइड) भी यहाँ आने से मना कर देते हैं। एक गाइड से जब हमने चंडिका गुफा चलने के लिए कहा तो उसने स्पष्ट इनकार कर दिया। उसने कहा– "पाँच सौ रुपये के लिए मैं अपनी जान जोखिम में नहीं डाल सकता"। उसने बताया कि यहाँ मधुमक्खियों के छत्ते लगे हुए हैं। मधुमक्खियाँ हमला कर दें तो फिर आपके पास भागने का भी रास्ता नहीं होता है। एक ही रास्ता बचा रहता है कि आप चुपचाप बैठ जाओ, स्वयं को अधिकतम ढँक लो, बाकी मधुमक्खियों के ऊपर छोड़ दो।

मन में विचलन पैदा करने वाली कुछ घटनाएँ भी उसने सुनाईं। किंतु, उसके ये सब विवरण हमारी जिद को कमजोर नहीं कर सके। बल्कि हमारी इच्छा को और प्रबल कर दिया। विशेषतौर पर मेरे मन में एक ही धुन सवार थी कि कैसे भी करके चंडिका गुफा के दर्शन करने हैं।

हमने अमरकंटक के एक साहसी युवक श्वेतांबर को ढूंढ़ निकाला, जिसे चंडिका गुफा का रास्ता ज्ञात था। वह अकसर वहाँ जाता रहा है। विशेषकर नवरात्रि के पावन पर्व पर वह और उसके मित्र चंडिका गुफा जाते हैं। हमने श्वेतांबर को अपनी यात्रा का मार्गदर्शक नियुक्त किया और चल पड़े एक रोमांचकारी यात्रा पर। इस यात्रा में मैं, मेरे मित्र मुकेश भांगरे, राजकुमार राठौर, अशोक मरावी और श्वेतांबर सहित पाँच लोग थे। धूनी–पानी और भृगु कमंडल होते हुए थोड़ी देर बाद हम उस स्थान तक पहुँच गए, जहाँ से कठिन यात्रा शुरू होनी थी। पहाड़ पर पेड़ों और घास के झुरमुट के बीच से एक पतली पगडंडी दिखाई दी। श्वेतांबर ने सबको सावधान किया कि हम सब धीरे–धीरे आगे बढ़ेंगे, पहाड़ का सहारा लेकर साधकर अपने कदम रखेंगे। ओस गिरी है इसलिए घास पर फिसल सकते हैं।

हम सबने कतार के रूप में आगे बढ़ना शुरू किया। कई स्थानों पर श्वेतांबर ने खुद को आगे रखा और कई जगह उसकी सहायता से हम आगे बढ़े। एक स्थान ऐसा आया, जहाँ वह पगडंडी खत्म हो गई। सब श्वेतांबर की ओर देखने लग गए। अब कैसे आगे बढ़ेंगे? कहीं हम गलत रास्ते पर तो नहीं आ गए? उसने बताया कि हम ठीक रास्ते पर हैं। दरअसल, आगे की राह के लिए हमें दूसरी पगडंडी पकड़नी थी, जिसके लिए हमें पेड़ और घास को पकड़कर 15–20 फीट नीचे उतरना था। हममें से कोई भी पर्वतारोही नहीं था। न कभी इस प्रकार खड़े पहाड़ पर चलने, चढ़ने और उतरने का अनुभव रहा। वहाँ से नीचे उतरना कठिन था। ओस के कारण मिट्टी भी गीली हो गई थी, जिसके कारण फिसलन बढ़ गई थी। हम जहाँ खड़े थे, वहाँ ऊपर पहाड़ था और नीचे खाई। विकट स्थिति में फँस गए थे। मुकेश भांगरे के चेहरे पर थोड़ी घबराहट दिखाई दी। वह आगे बढ़ने में हिचक रहे थे। किंतु, अब वापस लौटना मुश्किल था। वहाँ से आगे की ओर फिर भी बढ़ा जा सकता था, लौटना कठिन था। हम सबने मुकेश जी की हिम्मत बढ़ाई। उनका सहारा बने। हाथ पकड़ कर उन्हें जैसे–तैसे नीचे उतारा। 'डूबते को तिनके का सहारा' यह कहावत हम सबने खूब सुनी है। अर्थ सहित वाक्य में प्रयोग भी बचपन से करते आ रहे हैं। किंतु, अपने राम ने जीवन में पहली बार इस कहावत का व्यवहार में उपयोग किया। पहाड़ पर उगी घास को पकड़–पकड़ कर हम नीचे उतर रहे थे। यह अच्छा था कि घास जंगली थी और उसने पहाड़ को मजबूती से पकड़ रखा था। आज घास के तिनके हमारा सहारा बने। बहरहाल, नीचे उतर कर पगडंडी से फिर कुछ रास्ता तय किया। रास्ते में एक स्थान पर चट्टान बाहर की ओर निकल रही थी, उसको पकड़ कर दूसरी ओर निकलना था। यहाँ जरा–सी असावधानी हमें लगभग 300 फीट गहरी खाई में पहुँचा सकती थी। चट्टान को पकड़ कर उस ओर जब निकल रहे थे, तब यह ख्याल आया कि मोटापा (तोंद निकलना) कितना दुःखदायी है।

अनेक कठिनाइयों को पार करते हुए अंततः हमें हमारी मंजिल नजर आने लगी। हम चंडिका गुफा तक पहुँच गए। सबने 'माई' का जोरदार जयकारा लगाया। सघन जंगल और विशाल पहाड़ के मध्म में हम माँ चंडिका की गुफा के सामने खड़े थे। ऊपर कहीं से बूंद–बूंद करके पानी गिर रहा था। हम हैरत से गुफा के बाहर चट्टानों पर काफी ऊँचाई तक लिखे मंत्रों को देख–पढ़ रहे थे। एक संदेश/उपदेश भी लिखा था। मुझे सिर्फ वही समझ आया। 'मृत्यु से पहले जागो। हमेशा सुरति ईश्वर और मौत पर बनी रहे'। इस उपदेश का गहरा अर्थ है। अकसर हम सोये रहते हैं। या फिर भौतिक दुनिया की मोह–माया में खोए रहते हैं। अंत समय तक जागते नहीं। यह विचार नहीं करते कि ईश्वर ने हमें धरती पर किस हेतु भेजा है? क्या उसने मनुष्य को सिर्फ खाने–पहनने, आजीविका, संतति पैदा करने के लिए बनाया है? हम विचार नहीं करते और न जाने किस नींद में सांसारिक द्रव्यों के पीछे दौड़ते रहते हैं। अवश्य ही हमें समय रहते जाग जाना चाहिए और अपनी सुरति (मन, बुद्धि, चित्त, अहम) को हमेशा ईश्वर को जानने–समझने में लगाना चाहिए। ईश्वर के उद्देश्य के अनुरूप अपना जीवन बनाना चाहिए। उसका उद्देश्य क्या है– मानवसेवा। अनुमान लगाया जा सकता है कि चंडिका गुफा जैसे शांत और आध्यात्मिक ऊर्जा से भरे स्थान पर आकर योगी/तपस्वी योगक्रिया द्वारा मन, बुद्धि, चित्त और अहम को एककर सुरति में परिवर्तित करते होंगे और फिर उस सुरति के माध्यम से ईश्वर की मंशा को जानने का प्रयत्न करते होंगे। सुरति का एक अर्थ स्मृति भी है। इसे स्मृति का अपभ्रंश भी कह सकते हैं। इस अर्थ से भी देखें तो संदेश स्पष्ट है कि व्यक्ति तभी सफल हो सकता है या मुक्ति पा सकता है, जब उसकी स्मृति में सदैव ईश्वर और मृत्यु बनी रहे। ये दोनों यदि हमारी स्मृति में रहें तो हम राह से नहीं भटकेंगे। हमें पता है कि एक दिन मृत्यु आनी है, तब किस बात के लिए मोहमाया में पड़ना। जिस व्यक्ति के ध्यान में यह बात सदैव रहे, वह सार्थकता की ओर ही बढ़ता है।

बहरहाल, हम सबने यहाँ काफी समय बिताया। सबके चेहरे पर आनंद का भाव था। हमारे लिए यह लंका जीत लेने से कतई कम विजय नहीं थी। 'डर के आगे जीत' वाली अनुभूति भी हो रही थी। हालाँकि कोई भी भ्रामक विज्ञापन के आधार पर बिकने वाली उस कोल्डड्रिंक को पीकर नहीं आया था, सब माँ नर्मदा के जल का आचमन करके ही यहाँ के लिए निकले थे। जंगल की ओर से आ रही सरसराती हवा, पत्तों की खडख़ड़ाहट, पक्षियों की आवाजें, मन को आनंदित कर रही थीं। अद्भुत शांति की अनुभूति हो रही थी। हम समझ गए कि क्यों योगियों ने इसे अपनी तपस्थली के तौर पर चुना होगा।

❑❑❑

शादी का जूता

कुमार विश्वबंधु

सवाल सुनकर ठीठर काका ने अपने पैरों की तरफ़ देखा और गुम हो गए।गुम हो गए मतलब?मतलब, चुप होकर सोचने लगे! मेरे बचकाने सवाल का विरक्ति से जवाब देते हुए चाचा जी ने कहानी सुनाना जारी रखा, "इस समय तक बारात ने लगभग आधा रास्ता तय कर लिया था। गाँव छोड़कर, थाना बिहपुर से डेढ़–दो कोस आगे नगोछिया पार करने के बाद और दो घंटे बीत चुके थे। सबेरे–सबेर निकले थे, अब दोपहरिया हो रही थी। गर्मी के मारे सबके माथे से टप–टप पसीना चू रहा था। एक घनी अमराई देखकर रुकने का फ़ैसला लिया गया, ताकि थोड़ा सुस्ताकर और कुछ खा–पीकर बाक़ी का सफ़र पूरा किया जा सके।

शादी पूर्णिया के नज़दीक मूसापुर बस्ती में तय हुई थी। बैल गाड़ी की सवारी में अभी और कई घंटों का रास्ता बाक़ी था। सो दही–चूरा खाकर कुछ देर आराम करने के बाद अब उठने की तैयारी हो ही रही थी कि नरेश की नज़र ठीठर काका के पैरों पर पड़ गई। गाँव में मुँहफट मशहूर था, पूछ ही लिया, "आपका गोर तो देखते हैं खालिए है! बियाह क्या बिना जुत्ते के कीजिएगा ?

ठीठर काका ने जीवन में कभी जूता पहना ही नहीं था। जूता पहनना पड़ेगा यह जानकर ही उनके कान लाल हो गए थे, अब इस कठिन समस्या के बारे में सोच–सोचकर उनका साँवला मुँह लगभग काला पड़ चुका था। कुछ समझ नहीं पड़ रहा था कि करें तो क्या करें? अस्फुट स्वर में बोले, "जुत्ता पिन्हेंगे कैसे? लोग–बेद क्या कहेगा!"कहेगा सुथनी!तुम बियाह करने जा रहा है, कोई खेल नहीं चल रहा है, बूझे कि नहीं ? आखिर उनके बड़े भाई बुचाय सिंह ने उन्हें डाँटा। नरेश ने भी आगे आकर उनका समर्थन किया, कहा, "अरे महराज, इतना सोच क्या रहे हैं? चलिए पूर्णिया बजार में एक ठो जुत्ता कीन लीजिएगा।

ठीठर सिंह की कुछ यादें मेरी बाल–स्मृतियों में भी सुरक्षित हैं। हम सभी बच्चे उन्हें ठीठर बा कहते थे। सोचता हूँ प्रेमचंद अगर उनका वर्णन कर रहे होते तो लिखते, "वे आदमी क्या थे, पूरा देव थे!" ऊँचाई साढ़े छह फ़ीट से कुछ अधिक ही होगी। पत्थर जैसी चौड़ी छाती। लंबी–लंबी मांसल भुजाएँ। खूबसूरत तराशा हुआ चेहरा। हाँ, रंग उनका ज़रूर कुछ साँवला था। इसलिए खूबसूरत होकर भी गाँव में कोई उनको खूबसूरत नहीं समझता था।

गाँव में जीवितों में अब कोई ऐसा नहीं है जो बता सके कि दो पीढ़ी पहले ठीठर सिंह के दादा–परदादा क्यों और कहाँ से आकर इस गाँव में बस गए थे? गाँव के बचे–खुचे बड़े–बूढ़ों के बीच उनके पिता की

बस थोड़ी–सी धुंधली यादें हैं कि वे ऊँची काठी के बहुत ही ताकतवर, मेहनती और साहसी व्यक्ति थे। और उनके तीनों बेटों लूटो सिंह, बुचाय सिंह और ठीठर सिंह की असाधारण क़द–काठी को देखते हुए उस धारणा में कोई अतिश्योक्ति भी नहीं दिखाई देती। लूटो सिंह भाइयों में सबसे बड़े थे और जैसा कि लोग बताते हैं, आज़ादी की लड़ाई में किसी गुप्त क्रांतिकारी दल के सदस्य के रूप में किसी साहसी गतिविधि में भाग लेते हुए उनकी जान चली गई थी। अब बस दो भाई– बुचाय सिंह और सबसे छोटे ठीठर सिंह जीवित हैं। बाहर से गाँव में आकर बसने और घर बनाने के लिए गाँव में ज़मीन तो उन्हें मिल गई थी लेकिन जीविका के लिए मज़दूरी के अलावा इस परिवार के पास कोई दूसरी पूँजी न पहले थी, न अब है।

ठीठर बा अपने पिता और बड़े भाइयों की तरह ही निरक्षर थे, पर मैं समझता हूँ वर्तमान में गाँव के बहुत से तथाकथित पढ़े–लिखे लोगों के बनिस्बत कहीं अधिक विचारवान थे। बोलते बहुत कम थे और कभी किसी दंद–फंद में नहीं रहते थे। गाँव के आपसी उठा–पटक और झगड़ों–टंटों में उन्हें शायद ही कभी देखा गया हो। यहाँ तक कि बचपन में हमने कभी उन्हें गाँव की किसी बैठकी में ताश खेलते या गप्पें लड़ाते भी नहीं देखा।

हाथ में या फिर कंधे पर खेती का कोई औज़ार लिए वे शांत कदमों से काम पर जाते दिखाई पड़ते या फिर देर शाम काम से घर लौटते हुए हम उन्हें देखते। जैसा कि आमतौर पर हर गाँव का चलन होता है, लोग उन्हें बुद्धिमान तो हरगिज़ नहीं समझते रहे होंगे। लेकिन इतना तो सच है कि उनके चेहरे पर हमेशा किसी शांत जलाशय की तरह गहरी विचारशीलता का भाव होता था।

हम बच्चों के साथ उनका व्यवहार निहायत कोमल और दोस्ताना था। हमें याद नहीं पड़ता कि उन्होंने गाँव में कभी किसी बच्चे को कभी डाँटा या घुड़का हो। जबकि उस समय गाँव में हर किसी को पूरा अधिकार होता था कि वह बच्चों को, फिर चाहे वह अपना बच्चा हो या किसी दूसरे का, किसी भी बात के लिए जब मन करे– जितना मन करे डाँट–डपट सकता है अथवा पीट सकता था। इसलिए उस ज़माने में एक तरह से पूरा गाँव ही हम बच्चों का अभिभावक हुआ करता था और इसके लिए किसी विशेष योग्यता की दरकार भी नहीं थी, बस उम्र में बड़ा होना ही काफ़ी होता था।

ख़ैर, चाचा जी अपनी रौ में कह रहे थे, ठीठर काका अपनी जवानी में बहुत ताकतवर आदमी थे, दस मज़दूरों का काम अकेले निबटा देते। आँखों देखी बात है, आसाम रोड के जंगल से बबूल के दो–दो पेड़ काटकर झौंक (टहनियाँ और पत्ते) समेत अपने कंधों पर लादकर अकेले उठा लाते थे। एकबार गाँव के महाजन बलदेव झा से अपने मवेशियों के चारे के लिए पुआल माँगने पहुँचे थे। वे उस समय गाँव के बहुत ही संपन्न आदमी थे, उनका भुसकार ऊपर तक मकई के पुआलों से ठसाठस भरा हुआ था। बलदेव बाबू ने उन्हें दो बोझा पुआल ले जाने की इजाज़त दे दी।

दूसरे दिन सुबह बलदेव बाबू ने आश्चर्य से देखा कि उनका भरा हुआ भुसकार लगभग ख़ाली हो चुका है। उनका नौकर दौड़कर गया और ठीठर सिंह को बुला लाया। वे बहुत देर तक मारे गुस्से के

उन पर चिल्लाते रहे, पूछा, "अरे हम तुमको दो बोझा ले जाने के लिए कहे थे, तुम मर्दे पूरा भुसकारे साफ कर दिया?"
"लेकिन हम तो दो ही बोझा लेकर गए थे बलदेव बाबू!सच कहते हैं!"

ठीठर काका खाते भी खूब डटकर थे। दो–ढाई सेर सत्तू का तो नाश्ता कर लेते थे। भोज–भात में जब वे खाने लगते तो तमाशा लग जाता। सौ–पचास रसगुल्ला तो बातों ही बातों में खा जाते, उसके साथ एक–दो मटके दही के भी गटक जाते। और पूड़ियाँ तो इतनी खाते कि उसकी कोई गिनती ही नहीं रहती थी।

चाचा जी ने खैनी लटाकर होंठों में दबाया और अपनी मूल कहानी पर फिर से लौटते हुए बोले, पूर्णिया पहुँचते शाम हो गई। दस लोग गाड़ी पर ठहर गए, बाक़ी पाँच लोग और ठीठर काका जूता ख़रीदने बाज़ार चले। पूर्णिया में ऐसा कोई देखने लायक़ बाज़ार तो था नहीं, लेकिन इन पाँच–छह लोगों के लिए शायद बहुत कुछ था, जो ये पहली बार देख रहे थे। इन सब में अकेला नरेश था जिसने मैट्रिक तक की ऊँची पढ़ाई की थी और जो एक बार भागलपुर तक जा चुका था। बाक़ी लोग गाँव के नज़दीक लपटोलिया और झंडापुर से आगे न कभी कहीं गए थे और न ही कुछ देखा ही था। लपटोलिया में तो उस समय एक आटा चक्की और एक किराना की दुकान के अलावा कुछ भी नहीं था। झंडापुर का बाज़ार ज़रूर बड़ा था। हर तरह की छोटी–मोटी दुकानें थीं, कपड़ा–लत्ता से लेकर खाने–पीने की और देहात में काम आनेवाले रोज़मर्रा की दूसरी ज़रूरी चीजें यहाँ प्रायः मिल जाया करती थीं। नरेश ने रास्ते के बग़ल में चाय की दुकान देखी तो बोला, "हम तो कहते हैं पहले चाह पी लिया जाय, दिमाग़ थोड़ा फर्रेस हो जाएगा।"
सबसे पहले बुचाय सिंह ने सुर्र..र..र..र करते हुए पहला घूँट पिया। दुकानदार से बोले, "मिठ्ठा तो है ही नहीं ! कैसा चाह बनाए हो जी ? थोड़ा और चिन्नी डालो !
थोड़ी–थोड़ी चीनी सबने ऊपर से ली और खूब फूंक–फूंककर सुर्र सुर्र करते हुए चाय पीने लगे।

बाज़ार में जूतों की कई छोटी–बड़ी दुकानें थीं। एक दुकान तो चाय वाले के ठीक सामने दिखाई पड़ रही थी। चाय पीकर सब लोग बाज़ार घूमने लगे। जूते की एक दुकान सबको बहुत पसंद आई। दुकान बहुत बड़ी तो नहीं थी, पर मुख्य द्वार के दोनों तरफ़ रंगीन शीशे लगे हुए थे। दरवाज़े के ऊपर एक बहुत ही खूबसूरत नौजवान की तस्वीर थी। नरेश ने सबको बताया कि वह सिनेमा का मशहूर हीरो देवानंद है। दुकान में हर तरफ़ तरह–तरह के जूते रखे हुए थे। नरेश ने दुकानदार से कहा, "जुत्ता ख़रीदना है! ठीक है, नंबर बताइए!" किस चीज़ का नंबर?

आपके पैर का नंबर बाबू साहेब, और किस चीज़ का? "मेरे पैर का नंबर? मेरे पैर का कोई नंबर नहीं है!" अच्छा? तो फिर अपने पैर का नाप ही बता दीजिए बाबू साहेब! "मेरे पैर का नाप जानकर आप क्या करिएगा?" आपके लिए जूता निकालेंगे और क्या करेंगे?

अब कहीं जाकर बात नरेश की समझ में आई। ज़ोर का ठहाका मारकर बोला, "अरे, मर्दे! हमको थोड़बे न जुत्ता ख़रीदना है? इनको ख़रीदना है!" नरेश ने ठीठर काका को दिखा दिया।

अच्छा, अच्छा! कहते हुए दुकानदार ने ठीठर सिंह को दुकान में रखे बेंच पर बैठा दिया। बाक़ी लोग भी अग़ल–बग़ल बैठ गए। फिर नाप समझने के लिए दुकानदार ने उनके पैरों की तरफ़ देखा तो उसका मुँह खुला का खुला रह गया। बाप रे! दुकानदार न चाहते हुए भी हड़बड़ाकर बोल ही गया।

क्या हो गया? बुचाय सिंह ने आश्चर्य से पूछा। दुकानदार की फैली हुई आँखें अभी भी ठीठर सिंह के पैरों पर अटकी हुई थीं, बोला, "हमारे पास नहीं है जूता! और हमारे पास क्या, पूरे पूर्णिया बाज़ार में कहीं नहीं मिलेगा, देख लीजिएगा।"

"काहे नहीं मिलेगा जुत्ता? हम सबको तुम क्या समझ लिया है जी? हम क्या बाज़ार में झिटका लेकर आए हैं जुत्ता खरीदने?" यह समझकर कि दुकानदार उन सबका अपमान करना चाहता है, बुचाय सिंह तैश में आ गए। "अरे बाबू साहेब, आप ग़लत मतलब समझ लिए हैं। आप ज़रा इनका पैर देखिए! हम कहाँ से दें जूता इनको? जब इस नाप का जूता बनता ही नहीं है?" "अब? अब क्या करें? इ तो बड़का फेरा लग गया!" बुचाय सिंह ने चिंतित होते हुए कहा। दुकानदार की बातें सुनकर चिंतित तो सभी लोग हो गए थे,पर पता नहीं क्यों, एक ठीठर काका को देखकर ऐसा नहीं लग रहा था कि उन्हें कुछ ख़ास फ़र्क़ पड़ा है।

"अरे, इ दुकनदरवा के बोलने से क्या होता है? जुत्ता कैसे नहीं मिलेगा भला? बाज़ार में ढेरी दुकान है जुत्ता का। मन छोटा मत करिए बुचाय का! चलिए दूसरे दुकान में!"

नरेश के कहने पर सब लोग दूसरी दुकान की तलाश में निकले। फिर एक के बाद एक, जितनी दुकानें वहाँ जूते की थीं, सब देख लिया गया। एक दुकान में तो दुबला–पतला दुकानदार भी जैसे सनक ही गया। दौड़–दौड़कर एक के बाद दूसरा जूता लाकर पहनाने की कोशिश करने लगा। एक तरह से वह पिल पड़ा ठीठर काका के पैरों पर जूता लेकर! लेकिन उसके लाख कोशिश करने पर भी ठीठर काका का पैर था कि किसी भी तरह से जूते में घुसता नहीं था। क्योंकि बात केवल यही नहीं थी कि उनके पैर औसत से काफ़ी बड़े थे। असल मुश्किल असाधारण रूप से चौड़े पंजों की वजह से पेश आ रही थी। बचपन से नंगे पाँव चलते रहने के कारण ठीठर काका के पैर के पंजे बेतरतीब ढंग से फैल चुके थे, जैसे किसी बत्तख़ के पैर हों। आखिरकार वही हुआ, तड़ाक की आवाज़ के साथ जूता चटककर फट गया।

बाक़ी सभी दुकानदारों ने भी घुमा–फिराकर एक ही बात कही कि इतने बड़े और चौड़े नाप का जूता उनके पास नहीं है। हाँ, एक दुकानदार ने इतना ज़रूर कहा कि अगर पंद्रह दिन का समय मिलेगा तो वह जूते का इंतज़ाम कर सकता है। लेकिन, पूरा रुपया पहले ही दे जाना पड़ेगा।

सब लोग मुँह लटकाए वापस गाड़ी के पास लौटे।जूता तो मिला नहीं, लेकिन उस चक्कर में साँझढल चुकी थी। हालाँकि मूसापुर बस्ती यहाँ से नज़दीक ही पड़ती थी, मुश्किल से आधा–एक घंटे का रास्ता होगा। लेकिन चूँकि अंधेरा हो रहा था इस कारण थोड़ी चिंता हो रही थी। सब लोग गाड़ी पर बैठे और गाड़ी रवाना हुई तो आपस में बाज़ार की घटना पर बातें होने लगीं। ठीठर काका के बड़े भाई बुचाय सिंह

बहुत दुखी थे, बोले, "बेचारा ठीठरवा को बिना जुत्ते की बियाह करना पड़ेगा !

धीरो बा बरातियों में सबसे बुजुर्ग थे, कहा– "यहाँ का दुकनदरबा सब नामी खच्चर है! जानबूझकर बदमाशी किया होगा। साला आदमी देखा नहीं कि असली माल पार कर देता है!" नरेश ने आपत्ति करनी चाही, नहीं धीरो बा, ऐसी बात नहीं है। एगो दुकानदार का तो जुत्तो फट...

"अरे तुम चुप रहो! धीरो बा ने चिढ़कर नरेश को डाँट दिया।"ज्यादा पिंगिल मत पढ़ो ! दू अच्छर पढ़ क्या लिए हो तो समझते हो तुम्हीं एगो होशियार हो दुनिया में! "फिर ठीठर काका को जैसे सांत्वना देने के ख़्याल से मज़ाक़ करते हुए बोले," कोई बात नहीं ठीठरवा, जुत्ता नहीं मिला तो क्या हुआ? सुन्नर कनियाँ तो मिलेगी!" "नहीं! हमको कनियाँ भी नहीं चाहिए!"

धीरो बा के मज़ाक़ पर सब लोग ठहाका मारकर हँस रहे थे पर ठीठर काका की बात सुनकर चुप हो जाना पड़ा। बाज़ार में ठीठर काका ने एकबार भी कुछ नहीं कहा था। वहाँ से लौटकर भी वे एकदम शांत थे। वैसे भी वे कम ही बोलते थे, इसलिए उनकी चुप्पी की तरफ अब तक किसी का ध्यान नहीं गया था। बुचाय सिंह की तो कुछ समझ में ही नहीं आया कि ठीठर बोल क्या रहा है। पूछा, "क्या मतलब कि तुमको कनियाँ नहीं चाहिए?"

"हम शादी नहीं करेंगे। घर चलेंगे। ठीठर काका का जवाब साफ़ था।"

"घर? बुचाय सिंह बौखलाए। लेकिन हुआ क्या?"

"होगा और क्या? जब जुत्ता ही नहीं मिला तो शादी क्या करें?" सीधा घर चलिए।

सब बाराती तरह–तरह से समझाकर हार गए। पर ठीठर काका अपनी बात से रत्ती भर भी टस से मस नहीं हुए।

फिर?

फिर क्या? वे घर से ख़ाली पैर चले थे, ख़ाली हाथ वापस घर लौट आए! उन्होंने फिर कभी शादी का नाम भी नहीं लिया। इतना कहकर चाचा जी ने उठकर अपनी लाठी ली और खेत की निगरानी करने निकल गए।

❑❑❑

प्रिया के दादू

मनीष कुमार सिंह

दिन भर धूप की मार झेलते बॉलकनी के पौधों को पानी डालते हुए प्रिया को पहली बरसात जैसी मिट्टी की सौंधी खुशबू मिली। अंदर कमरे में उसकी माँ दादी से मोबाइल पर बात कर रही थी।

"मम्मी हम लोग दादू के यहाँ कब जा रहे हैं?" प्रिया ने रागिनी से मोबाइल पर बात खत्म होने के बाद चहकते हुए पूछा। वह बेटी के सवाल का कोई जवाब दिए बगैर आगे बढ़ गई। "हम जाएगें या दादू–दादी हमारे पास आ रहे हैं?" पर मधुमक्खी की भाँति माँ के कानों में मधुर गुंजन कर रही उसकी बात रेगिस्तान में विलुप्त नदी–सी खो गई।

रागिनी ने प्रिया के उत्साह और कौतुहल से भरी आँखों को नहीं देखा। गुस्से से बोली, "तुझे उनके पास जाने की पड़ी है। एक वे लोग हैं कि अपने पोते–पोती को पूछते तक नहीं हैं। जन्मदिन पर विश करने में जान जाती है। सारा प्यार तेरे चाचा के बेटे पर लुटाते हैं।"

प्रिया को सास–बहू के मध्य होने वाले वार्तालाप की कोई जानकारी नहीं थी इसलिए वह माँ की इस प्रतिक्रिया से स्तब्ध रह गई। राजेश ने दूसरे–से आकर पूछा, "क्या बात है? बड़ी टेंशन में हो।"

"इस घर में जिसकी शादी हुई है उसे टेंशन की क्या कमी होगी। जिसने पिछले जन्म में सोना दान किया होगा बस उसे ही अच्छा घर–बार मिल सकता है। सासु माँ को तीज के मौके पर फोन किया था। नेग दे चाहे न दे लेकिन पर्व–त्योहार पर फोन पर हँस–बोल लेने में बुराई नहीं है। लेकिन वे समझती हैं कि हमारी नजर उनकी दौलत पर है।"

किसी को भला–बुरा सुनाया जाए तो वह बदले में ऋचाएँ नहीं सुनाएगा। स्पष्ट है कि रागिनी ने भी कुछ वैसे ही अंदाज में प्रतिक्रिया व्यक्त की होगी।

राजेश के चेहरे पर भी तनाव दिखने लगा। और कौन भरेगा। ब्रजेश और सुमन का दिन–रात का यही धंधा है। माँ–बाबूजी पूरी तरह से इन लोगों की गिरफ्त में हैं। बिल्कुल ब्रेन वाश कर रखा है। उनके लिए मैं दुनिया का सबसे बड़ा विलेन हूँ। भला बताओ मैंने आखिर ऐसा क्या किया है? घर से दूर दूसरे शहर में इतने सालों की जद्दोजहद के बाद एक मुकाम बनाया। एक पैसे की किसी से मदद नहीं ली लेकिन फिर भी सबको लगता है कि मैं सब कुछ हड़प लूँगा।" बोलते–बोलते तनाव उसके चेहरे पर कागज पर गिरी स्याही जैसा पूरी तरह फैल गया था।

रागिनी ने दैहिक रूप से पूर्णतया स्वस्थ पति को अपने दिमागी तापमान व स्नायु तंत्र से संघर्ष करते देखा तो उसका मूड ठीक करने की गरज से बोली। "आप इतना परेशान मत होइए। जो होगा देखा जाएगा। यह अपनी प्रिया एक नंबर की

पागल है। जब देखो दादू–दादी करती रहती है। एक हमारा रिंकू सबसे अच्छा है। पूरे परिवार में एक यही है जो बिल्कुल नॉरमल है। इसके लिए मम्मी–पापा और दीदी के सिवा कोई अपना नहीं है। इसलिए पुरानी किसी बात को याद करके परेशान नहीं होता है। यह दिक्कत बस हम तीनों के साथ है।"दूसरे कमरे में दीवार पर क्रेयान से चित्र बनाता रिंकू अपना नाम सुनकर सर खुजाता हुआ पास खड़ा हो गया।

प्रिया अभी तक चुपचाप खड़ी होकर माँ की बातों में हाँ के कच्चे सूत जैसा नाजुक उम्मीद को ढूँढ़ रही थी। दादू–दादी से मिलने की कोई संभावना न देखकर उसकी आँखों से आँसू टपकने लगे जैसे बादल के पानी से भर जाने पर अनायास बारिश शुरू हो जाती है।

"अपनी बेटी भी बहुत अच्छी है।" राजेश ने प्रिया के सर पर प्यार से हाथ फेरा। "बिल्कुल ऐंजल है।"

"वो तो है।" रागिनी उसे लिपटाकर उसके आँसू पोंछती हुई बोली।

अवसाद को घर की खुशियों को राहू–केतु की तरह निगलने को तत्पर देखकर राजेश ने एक सामयिक घोषणा की। "आज सब लोग घूमने चलेंगे। प्रिया बिटिया के लिए उसकी पसंद की आइसक्रीम लेंगे।"

"और मेरे लिए चॉकलेट"। रिंकू बोल पड़ा।

"हाँ–हाँ क्यों नहीं।" राजेश हँसा। प्रिया भी घर के खुशनुमा माहौल में मुस्कराने लगी। आजकल के माहौल में औलाद पर दुर्वासा–दृष्टि डालने के प्रतिकूल परिणाम की कल्पना करके माँ–बाप काँप उठते हैं। सासु माँ अगर चाहती तो भूमध्य रेखा की तरह उत्तरी और दक्षिणी गोलार्द्ध की सीमा बन सकती थी लेकिन वह तो शुरू से ही पीसा की मीनार की भाँति विजय और सुमन की ओर झुकी हुई थीं। ऐसे में द्वेष और लिप्सा की कुल्हाड़ी से कुटुंबरूपी हरसिंगार को बचाने के लिए सारे प्राणायाम बस वही क्यों करे। सद्भाव का शकट एक कंधे से नहीं बढ़ता है। हम और हमलोग जैसे सर्वसमावेशी संबोधनों के बदले व्यक्तिवाचक सर्वनाम यथा मैं और मेरा का प्रयोग प्रारंभ हुए अरसा बीत चुका है।

घूम–घाम के लौटने के बाद बच्चों की अनुपस्थिति में रागिनी बोली, "लाठी मारने से पानी भला कब अलग होता है। प्रिया के अंदर अपने दादा–दादी के लिए बहुत प्यार है। आपको याद होगा कि जब इसकी दादी बीमार पड़ी थी तो वह रोज अपने हाथों से उन्हें दवा खिलाती थी। जाने वाले दिन दादी के पास बैठकर इसने कितनी हिदायतें दी थीं। यहाँ आकर भी दिन में दो बार फोन करके दवा खाने के बारे में पूछताछ करती थी।"

राजेश मन ही मन बोला। जड़ से बैर और पत्तों से यारी। हमसे कोई रिश्ता नहीं और बच्ची से लाड़ जताते हैं। प्रिया बेचारी सीधी है। सीधी कील दीवार में आसानी से ठुक जाती है। सीधाई का फायदा सारी दुनिया उठाती है।

प्रिया आखिर कैसी लड़की है? क्या माँ–बाप का प्यार काफी नहीं है? शहर में बसे एकल परिवार और क्या मिलेगा? अभी तक पुरानी बातों को लेकर परेशान है। दादू–दादू करने से क्या उनका साथ मिल जाएगा? प्यासे को रेत का विस्तार भी पानी नजर आता है। राजेश और रागिनी को माँ–बाप होने के नाते यह अहसास था कि

प्रिया की चहचहाहट और सुबकना वामन रूप में भी आकाश की तरह विराट है लेकिन वे क्या करें। उधर वे लोग ययाति की भाँति दूसरे का हक लेकर अनंत भोग को उद्यत हैं और हमसे दधीचि की तरह अस्थिदान की अपेक्षा करते हैं। भाई बच्चू से ब्रजेश और फिर ब्रजेश साहब कहलाने लगा। स्पष्ट था कि वह त्वरित गति से उन्नति के विभिन्न सोपानों को पार कर रहा था।

इधर अपनी गृहस्थी बनाने में दाँतों पसीना आ गया है। ये प्राइवेट कंपनियाँ कर्मचारी की मेहनत को अपने फायदे के लिए आनन–फानन में एमडी और एग्जिक्यूटिव डॉयरेक्टर जैसे सुनने में भारी–भरकम पदधारी बनाकर सुनियोजित तरीके से खून चूसने का अभियान चालू कर देती हैं। काम निकल जाने पर छँटनी भी तबियत से की जाती है। एक दिन में आदमी अर्श से फर्श पर आ जाता है। मजबूर इंसान कबंध की तरह गले के ऊपर की इंद्रियों काप्रयोग किए बगैर खटता है ताकि नौकरी बची रहे। जीव का तभी तक महत्व है जब तक जीविका है। इस जद्दोजहद में कुछ बरसों से ही इंसान साबुन की तरह घिस जाता है। नए शहर में आने के बाद सारी वित्तीय समस्याएँ पुश्तैनी जायदाद से वंचित रहने से नाभिनालबद्ध हैं।

राजेश उधेड़बुन में था। जब भी वे बाबाजी के यहाँ जाते तो सोनू के लिए कपड़ा लेकर पहुँचते थे। फल–मिठाई के बगैर कभी नहीं गए। पर सदाशयता का प्रतिफल नहीं मिला। सच है कि नाली चाहे जितनी साफ करो उसमें काई दुबारा जमेगी। जहाँ विग्रह स्थायी भाव हो वहाँ सद्भावना कैसे आएगी? कितनी भी कोशिश कर लो ब्रजेश और सुमन की नीयत पानी में डूबी लाश की तरह कुछ समय बाद ऊपर आ ही जाती है। वहाँ जाने का मतलब है कि बारूदी सुरंगों से आच्छादित इलाके में प्रवेश करना।

दादू के पान खाने की आदत बुढ़ापे तक कायम थी। सारे दाँत नकली थे लेकिन आदत नहीं गई। सुबह मंजनादि करके प्रिया और सोनू चाय सुड़कते दादू के इर्द–गिर्द खड़े रहते हैं। अखबार बाद में पढ़िएगा दादू। पहले हमारे साथ मॉर्निंग वॉक को चलिए। दोनों उनके दाएँ–बाएँ उँगली पकड़कर नुक्कड़ तक जाते। पान की दूकान पर मर्तबान में रखी टॉफियाँ दोनों बच्चों के लिए खरीदे जाते। एक बार दादू ने दोनों को बिना जर्दा वाला मीठा पान खिलाया। वापस लौटते हुए प्रिया पूछती," "दादू ये बगुले नाले के किनारे क्या कर रहे हैं?" वे तसल्ली से बताते कि ये मछली खाने के लिए खड़े हैं। रास्ते मे एक पोखर में उगे सिंघाड़ों को दिखाते हुए दादू ने कहा, "देखो बाजार में ये बाद में दिखेंगे। इन्हें पहले तुड़वाकर तुमलोगों को खिलाता हूँ।"

"दादू ये पोखरा गंदा तो नहीं है?" सोनू ने पूछा

"नहीं बेटा। अभी तक तो नहीं। हमारी गलती है। हमने रिवर और सीवर को अलग–अलग रखने की परंपरा को छोड़ दिया है। परेशानी यहीं से शुरू होती है।"

प्रिया सारी बातें बड़े ध्यान से सुनती। मम्मी–पापा से ऐसी बातें कभी सुनने को नहीं मिलती थी।

घर आकर दोनों बच्चे खेलने में मशगूल हो जाते। दादू की डायरी में एक भी शब्द फालतू नहीं लिखा होता था। संस्कृत के श्लोक, उर्दू की शायरी, अंग्रेजी के क्योटेशन या फिर पुराने संस्मरण।

लेकिन प्रिया जैसी ढीठ लड़की ने उसमें भी कुछ न कुछ लिख डाला। एकाध जगह पेड़ और चिड़ियों के चित्र बना दिए।

जिस दिन दादू दोनों के लिए खिलौने लेकर आते उस दिन घर में बच्चों के लिए उत्सव का माहौल रहता। सुमन अपने ससुर को बच्चों के साथ विचरण करते देखकर अपनी नापसंदगी जाहिर करती। बापरे! घूमते–घूमते गाड़ी के पहिए को चक्कर आ सकता है लेकिन बाबूजी नहीं थकते हैं। अब तक इनके जूते से सड़क की हड्डी–पसली टूट गई होगी।

सुमन अपने कमरे में बड़बड़ा रही थी। भईया–भाभी दो–चार दिन के लिए घूमने–फिरने आए हैं। फिर दिल्ली लौट जाएँगें। सास–ससुर सामने बैठे थे। आप ही बताइए जरा ऐसे में किसी पर भला कोई कितना भरोसा कर सकता है? सुमन अपने मन की कड़वाहट उनके दिलों में भी भरना चाहती थी।

"सुमन जानबूझकर हम लोगों से बात नहीं करती है ताकि हमारा यहाँ आना–जाना न हो।" रागिनी ने जो गौर किया था वह अपने पति को सुनाया। राजेश को चुप देखकर वह आगे बोली, "बाबूजी के मकान की कीमत अब काफी बढ़ चुकी होगी।"

राजेश अन्यमनस्क रहा। "पिछली बार जब देखा था तब जगह–जगह से प्लास्टर झड़ रहा था।"

रागिनी का मन अपना सर पीटने का हुआ। "अजी मकान है कोई दही नहीं कि रखे–रखे खट्टा हो जाएगा। मेनरोड पर है। रेट आगे जाएगा। देखिएगा सब उस ब्रजेश के पास जाएगा।"

राजेश सोच में पड़ गया। "कुछ कहा तो लोग बोलेंगे कि इसकी नजर जायदाद पर है।"

रागिनी गुस्साई, "इस डर से क्या लहुलुहान होकर भी चुप रहेंगे कि मारने वाला उलटा हमपर इलजाम न लगा दे।" उस दिन शुरूआत न जाने किस बात पर हुई। सुमन का खुला आरोप यह था कि भईया–भाभी की नजर प्रापर्टी पर है। "हमारे पास तुमसे कम है लेकिन नजर बुरी नहीं है।हक हमारा भी उतना ही है जितना तुम्हारा लेकिन नीयत बुरी है।"

रागिनी गुस्से से कॉप रही थी। सच है कि जमीन–जायदाद के मामले में कोई किसी का सगा हीं होता है।

उसके बाद वे दुबारा माँ–बाप के यहाँ नहीं गए। प्रिया दादू–दादी के सान्निध्य से वंचित हो गई। खबरों से पता चलता रहा कि सुमन एक जिम्मेवार माँ की भूमिका नहीं निभा रही है। सोनू उपेक्षित हो गया है क्योंकि बिजनेस में मशगूल ब्रजेश के पास मँहगे गैजेट दिलवाने के पैसे हैं लेकिन बेटे के लिए समय नही है।अभिभावकीय नियंत्रण से परे सोनू दादा–दादी का भी अपमान कर बैठता है। इतनी कम उम्र में बाइक चलाने की क्या जरूरत है। किसने उसे इसकी इजाजत दी।अरे वह किसकी सुनता है। अपनी मर्जी का मालिक बन गया है। घर में सभी उससे डरते हैं। एक दिन अपने दादा को कह दिया कि ज्यादा लेक्चर मत दीजिए। यह घर हमारा है। पसंद नहीं है तो चले जाइए। उस दिन खूब बवाल हुआ। दादी खूब रोईं।

प्रिया यह सब जानकर बेहद दुखी हुई। बड़ों की राजनीति की उसे कोई जानकारी नहीं थी। लेकिन बचपन में वह

सोनू के साथ खेली थी। रिंकू तो खैर बहुत छोटा था। हमउम्र के साथ खेला जाता है।

फिर एक हृदयविदारक खबर आई। सोनू का एक्सिडेंट हो गया। नई बाइक चला रहा था हाइवे पर न जाने किस गाड़ी ने टक्कर मारी। मौके पर ही खत्म हो गया। यह खबर राजेश को बहन के फोन पर बताने से मालूम हुई। ब्रजेश की तरफ से कोई सूचना नहीं आई। दो साल से बातचीत और आना–जाना बंद था। सभी दुखी हुए लेकिन प्रिया का रो–रोकर बुरा हाल था। मेरा भाई...। रागिनी ने उसे बड़ी मुश्किल से उसे चुप कराया। बार–बार वह अपने आँसुओं से भीगे चेहरे को स्लेट पर चॉक से लिखी वर्णमाला की तरह साफ करती और दुबारा रोती जाती।

पारिवारिक कलह इस मौत से भी कहाँ थमा। जल्द ही मृत्यु के शोक पर जीवन का प्रहसन हावी हो गया।

"मम्मी दादू की पीठ पर बाम कौन लगाता होगा?" प्रिया पूछ रही थी। उसका सवाल जलधारा के प्रवाहित होने जैसा स्वाभाविक कर्म था। लेकिन जवाब उतना ही जटिल था।

"हे भगवान"! रागिनी ने अपना सर थाम लिया। इस लड़की का क्या करें। "बेटा यह बात बरसों पुरानी हो गई है। दादी लगाती होंगी।"

"दादी तो उस समय भी मना कर देती थीं। मैं अपने हाथों से लगाती थी।"

"अरे पागल क्यों परेशान होती है। अब तक दादू का पीठ दर्द थोड़े ना होगा। कब का ठीक हो चुका होगा।"

"जब मैं छोटी थी तो कितनी बीमार पड़ी थी। तब दादू आकर मेरा सर दबाते थे।" वह भावविह्वल होकर बताने लगी। फिर तनिक रूक कर खुश होकर कहा, "मम्मी दादू अपने गले से लॉएन की आवाज निकालते थे।"

मम्मी की प्रतिक्रिया का इंतजार किए बगैर वह आगे बोलती गई। "दादू के यहाँ गेंदा के फूल कितने पीले–पीले हैं। सोनू के साथ मैं गेंदा के फूल से खूब बैंडमिंटन खेलती थी।" उनकी आँखों तथा वाणी में अतीत की खुशियों के प्रति पुलक और मम्मी की प्रतिक्रया को लेकर प्रकंप दोनों का सह–अस्तित्व था।

"पागल लड़की। पता नहीं कब बड़ी होगी। इसे वहाँ की हर बात याद है?" रागिनी बुदबुदाई। यह लड़की किसी भी पाँखुरी पर उँगली रखती है तो पराग–कण चिपक जाते हैं। फूल गहने जैसे कीमती नहीं होते हैं लेकिन यह भी सच है कि इनकी सुगंध गहनों में कभी नहीं मिलेगी। सभी को अपनी पसंद के विषय आँखों के सामने हर पल विराजमान रहते हैं। इन्हें स्मरण करने के लिए शिलाजीत का सेवन करने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

प्रिया कुछ नहीं समझती है। अब बाबूजी बच्चों के साथ घूमने–फिरने लायक कहाँ होंगे। काफी दिनों से वह मिला नहीं है लेकिन अंदाजा लगा सकता है कि बुढ़ापे की बीमारी में इंसान का शरीर पक्षी की भाँति हो जाता है। झुकी हुई पतली–सी लंबी गर्दन। सामने वाले को भेदती नजर और धनुषाकार शरीर।

"तुम आए दिन वहाँ की बात उठाकर मुझे परेशान मत करो।" राजेश ने आजिज होकर रागिनी से कहा।" वैसे भी वहाँ से कुछ मिलना–विलना नहीं है। जब मन में जगह नहीं रही तो जायदाद क्या मिलेगा।"

"आप बस ऐसी शायरी किया कीजिए। मन की बात छोड़ दीजिए। वहाँ एक भाई सब कुछ कब्जा करके बैठा हुआ है इधर

आप साधु बनकर धूनी रमाए हुए हैं। वाह मुझे कितना बढ़िया ससुराल मिला है। एक के पीछे माँ–बाप जान दे रहे हैं और दूसरे को क्या पैदा नहीं किया था। ऐसा व्यवहार करते हैं जैसे सड़क से उठाकर लाए हैं। जब कोई रिश्ता बचा नहीं है तो अपने हक के लिए लड़ने में कैसा संकोच?"

"सासुमाँ के सारे गहने सुमन ने अपने लॉकर में रखे हैं। उसे यह किसने करने दिया?" रागिनी पूछ रही थी।

राजेश विद्रूपता से मुस्कुराया। "माँ–बाबूजी का क्या है। उन लोगों को ब्रजेश और सुमन जितनी चाभी देंगे वे उतना ही चलेंगे।" रागिनी के मानसिक तुमुल को चरम पर देखकर राजेश ने ठिठोली की, "जाने दो। अपनी तनख्वाह और बीबी साथ देती है।"

पर रागिनी की मनःस्थिति परिवर्तित नहीं हुई। "शुतुरमुर्ग जैसे रेत में मुँह छिपाने वाले को तूफान तक का पता नहीं चलेगा। पत्तों की खड़खड़ाहट की बात छोड़िए। सामने वाले की नीयत पहचाननी आनी चाहिए। आज रिश्ते–नाते का कौन लिहाज करता है।" रागिनी के शब्द फटके हुए अनाज की तरह त्रुटिहीन थे जो बमवर्षक विमान जैसे सीधे निशाने पर बरस रहे थे। समय और भौतिकता की अजस्र धारा में संबंधों का अस्थि विसर्जन न जाने कब का हो चुका है।

राजेश की मनःस्थिति इन बातों से शायद बदली। वह सोच में पड़ गया। रागिनी पुनः बोली, "याद है जब हम–लोग शुरू में किराए के मकान में रहते थे तब प्रिया कितनी छोटी थी। इसके हाथ में दो बिस्कुट पकड़ा कर बाकी पैकेट ऊपर रैक पर रख देते थे जिससे उसके हाथ वहाँ तक न पहुँचें। इतनी तंगी से सालों बिताए हैं।" इस झकझोरने वाली बात पर राजेश और पीछे के टाइम जोन में पहुँच गया। उसके बचपन में खाट पर बीमार पड़े दादाजी को सेब उबालकर खिलाया जाता था। दादी फेरी वाले से मोलभाव करके चुनकर सेब खरीदतीं। उसे भी सेब का एकाध फाँक मिल जाता था। सुदूर अतीत में घटित बात की आवृत्ति अंतस में बारंबार होती है।

कुछ न कुछ करना पड़ेगा। क्या करें? मुकद्मेबाजी...। लेकिन कानूनी धाराएँ अपने पक्ष में होनी चाहिए। ऐसा क्यों न करें कि बहन को अपनी ओर करके कोशिश की जाए। आखिर उसे भी ब्रजेश से काफी शिकायतें हैं। उधर व्याप्त कलह की बारहमासी में पुनः जाना सुविचारित कार्य नहीं होगा। रागिनी को यह भरोसा था कि सास–ससुर उनके कहने पर भले टस से मस न हो पर ननद की बात पर यमराज के महिष पर भी बैठकर चल देंगे।

तभी दूसरे कमरे में प्रिया भागती हुई आई। अपनी माँ से लिपटकर वह सुबकने लगी।"क्या हुआ मेरी बच्ची?" रागिनी घबरा गई। राजेश भी चौंक उठा। आखिर इसे हुआ क्या है?

"मम्मी मैं सो रही थी। मुझे सपने में दादू दिखाई दिए। उन्हें सोनू अपने साथ लेकर जा रहा था। मैं दादू का हाथ पकड़कर रोक रही थी। मैं और सोनू दोनों उन्हें अपनी तरफ खींच रहे थे। लेकिन सोनू मेरे रोकने के बाद भी दादू को अपने साथ ले गया।" वह फफक कर रोने लगी। उसकी घूरती नजर रेगमाल की खुरदरी जिह्वा बनकर माँ–बाप के मन को छील रही थी।

"नहीं मेरी प्यारी बिटिया। ऐसा नहीं कहते। सपना कहीं सच होता है?" रागिनी

उसकी पीठ पर हाथ फेरती हुई समझाने लगी। पति–पत्नी के चेहरे पर वर्णनातीत भाव थे। खिड़की के बाहर नजर आ रहे पेड़ के सूखे पत्ते बेजान रिश्तों की तरह झर रहे थे। लेकिन खिड़की के ठीक नीचे दीवार के किसी भग्न हिस्से में चिड़िया की बीट से मौजूद अनपचा बीज पौधा बनकर उगा हुआ था। बिना बारिश के बस ओस और नमी से प्रोत्साहन पाकर वह अपनी जड़ जमाए हुए था।

❑❑❑

शब्दों का सूरज

राधेश्याम बंधु

बाबा की अनपढ़
बखरी में, शब्दों का सूरज ला देंगे,
अम्मा की सूनी
आँखों में, अक्षर की ज्योति जगा देंगे,

अनजान अँगूठे का कर्जा
अब और नहीं बढ़ने देंगे,
भाभी के दिल की चिठ्ठी का
अब भेद नहीं खुलने देंगे,
जिन की पुस्तक
ही नहीं खुली, जीने की कला सिखा देंगे,

विज्ञान चाँद तक पहुँच गया
पर गगा की गलियाँ गूँगी,
हम चंद्रलोक को सजा रहे
पर झुग्गी की खुशियाँ गूँगी,
जो सबका शीश
उठाता है, उसका भी शीश उठा देंगे,

जिसने सीखा ढाई आखर
तुलसी, कबीर बन जाता है,
काले अक्षर का चमत्कार
धरती पर स्वर्ग उगाता है,
चौपालों की
चर्चाओं को, ग्रंथों का सत्य बता देंगे,

बाबा की अनपढ़,
बखरी में, शब्दों का सूरज ला देंगे।

❑❑❑

हम इतने खुल कर रोए हैं

कृष्ण कुमार कनक

हमने आँसू नहीं गिने पर, दुःख है नील कमल खोए हैं।
भाषाएँ तक मौन हो गईं हम इतने खुलकर रोए हैं।

गंगाजल में पाँव पड़े तो शुष्क अधर पर प्यास जग गई।
आशाएँ बलवती हुईं तो चंदन वन में आग लग गई।
राख हो गए सपने सारे, जो हमने मिलकर बोए हैं।
भाषाएँ तक मौन हो गईं हम इतने खुलकर रोए हैं।

अरुण प्रभा के मस्तक पर ज्यों व्याकुल चकवी विरहा गाए।
बीती रजनी की करुणा पर, कविता के कुछ छंद चढ़ाए।
वैसे ही हमने सुधियों की, पुस्तक के पन्ने धोए हैं।
भाषाएँ तक मौन हो गईं हम इतने खुल कर रोए हैं।

मोती एक खोजने भर में, बिखर गईं कितनी मालाएँ।
बर्फीले मौसम से पहले, तन से लिपट गईं ज्वालाएँ।
हमने शेष विशेष अर्थ भी, विधि का नियम समझ ढोए हैं।
भाषाएँ तक मौन हो गईं हम इतने खुल कर रोए हैं।

धूल धूसरित कुंठाएँ हैं, गंगा के रेतीले तट पर।
"प्राण" हुआ अनुरागी मेरा, सूख चुके जीवन के वट पर।
जल–जलकर बुझ गईं मशालें, चित्र चेतना के सोए हैं।
भाषाएँ तक मौन हो गईं हम इतने खुल कर रोए हैं।

हमने आँसू नहीं गिने पर, दुःख है नील कमल खोए हैं।
भाषाएँ तक मौन हो गईं हम इतने खुल कर रोए हैं।

❑❑❑

कब ये मौसम आएगा

राकेश चक्र

दिल की बातें कर लेना तुम
कब ये मौसम आएगा
आना जाना लगा रहेगा
कौन कहाँ मिल पाएगा

बचपन खूब कुलाँचें भरकर
खेला था घर आँगन में
गिल्ली डंडा, ढकीमींचना
झूला, पेंगें सावन में
कभी बाग में, कभी खेत में
कभी पोखरे साजन में

मुस्काती उजली रातों का
समय निकल फिर जाएगा

कुछ नादानी, कुछ शैतानी
भूले बिसरे स्वप्न गढ़े
कभी हँसे या ढलके आँसू
कभी मात की गोद चढ़े
कभी अल्पना फूल सजाते
कभी अँधेरा देख लड़े

जीवन है लहरों की धारा
पावन पल छिन जाएगा

सही गलत को समझ न पाया
सब पर अपना प्यार लुटाया
प्रभु ने जैसे रखा मुझे पर
गीत सदा ही उसके गाया
सादा जीवन अपना करके
नहीं किसी पर तीर चलाया

जीवन है पल भर का मेला
फूल आस में खिल जाएगा

❑❑❑

मराठी कहानी

प्रारब्ध

दीपक तांबोली

हिंदी अनुवाद : अशोक बाचुलकर

जॉगिंग ट्रैक के दस राऊंड पूरे करके पसीने में तरबतर मैं बेंच पर बैठ गया। साठ साल के एक सज्जन पहले ही वहाँ बैठे हुए थे। कई दिनों से मैं उन्हें इस उद्यान में देख रहा था। हाँ, लेकिन उनसे कभी कोई बात नहीं हुई। शहर में यही समस्या होती है। कोई किसी से बात नहीं करता है। हर एक अपने में खोया रहता है। वैसे वरिष्ठ नागरिकों के कई ग्रुप्स उद्यान में घूमते हुए दिख पड़ते हैं। लेकिन ये मात्र अकेले ही दिखते हैं। मैंने तय किया कि आज उनसे बात करके रहूँगा।

''नमस्ते सर!'' मेरी आवाज सुनकर वे चौंक गए। शायद उन्हें उम्मीद नहीं थी कि मैं उनसे बात करूँगा।

''नमस्ते,नमस्ते!''हाथ जोड़ते हुए उन्होंने कहा।

''सर, कई दिनों से मैं आपको इस बेंच पर देख रहा हूँ। सोचा कि आज आपसे परिचय कर लूँ। कहाँ नौकरी करते थे आप?''

''मैं साइन्स कॉलेज में प्रिंसिपल था। तीन साल हो गए रिटायर हुए।''

''बच्चे क्या करते हैं, आपके? शादी वगैरा हो गई होगी उनकी?''

''हाँ, हाँ। बेटा नासा में सांइटिस्ट है। बेटी कंप्यूटर इंजीनियर है। बेंगलुरू की एककंपनी में है। उसके मिस्टर भी सॉफ्टवेयर इंजीनियर हैं। वे भी बेंगलुरू में जॉब करते हैं।''

''अरे व्वा! बहुत बढिया।'' सुनकर मैं प्रभावित हुए बिना नहीं रहा। उन्होंने मेरे बारे में पूछा। मैंने अपनी नौकरी के बारे में बता दिया।

''अब फुर्सत है और हाथ–पैर चल रहे हैं, तब तक यात्रा का आनंद लिजिए सर।'' मैंने उन्हें सुझाया। ''अरे, बहुत घूम–फिर चुका हूँ मैं। अलग–अलग परिषदों के निमित्त आज तक इकतालीस देशों की यात्रा कर चुका हूँ मैं। और देश के सभी राज्यों में भी जाकर आया हूँ।''

मैं शॉक्ड! चेहरा देखकर किसी के कार्य कर्तृव्य के बारे में अनुमान लगाना कितना गलत है! उनके सामने मैं कुछ भी नहीं था। यह बात मुझे सताने लगी। फिर इधर–उधर की बातें करके हम अपने–अपने घर चल पड़े। पूरा दिन वे मुझ पर छाए रहे।

फिर बार–बार हमारी मुलाकातें होने लगी। सर को राजनीति में इंटरेस्ट था। इसलिए हम लोग अक्सर राजनीति पर ही चर्चा करते थे। लगातार दो–तीन दिन सर मुझे दिखे नहीं! चौथे दिन मैंने उसी बेंच पर बैठे कुछ रिटायर्ड लोगों से पूछा।

''क्यों जी ! देशमुख सर आजकल कहीं दिखते नहीं हैं।''

''कौन देशमुख? तीन–चार देशमुख हैं। उनमें से कौन?''

मैं उनका शुभनाम नहीं जानता था।

''वे जो साइन्स कॉलेज में प्रिंसिपल थे। उनका बेटा अमेरिका में नासा में है और बेटी बेंगलुरू में कंप्यूटर इंजीनियर।''

सभी सीनियर सिटिजन जोर से हँस पड़े। ''क्यों क्या हुआ?'' चकित होकर मैंने पूछा।

''लगता है आपको भी वही बता दिया उन्होंने !''

''मतलब? मैं नहीं समझा'' मैं कन्फ्यूज हो गया।

''अरे, कहाँ का नासा और कहाँ का बेंगलुरू! उनका बेटा नंदूरबार कोर्ट में चपरासी है और बेटी एक ऑटो रिक्शावाले के साथ भाग गई। वह अब परभणी में है।''

मेरे तो होश उड़ गए।

''क्या ! वे तो कह रहे थे कि वे प्रिंसिपल थे।''

''हाँ। वे प्रिंसिपल ही थे। अत्यंत बुद्धिमान। चालीस से भी ज्यादा देशों में उन्होंने पेपर प्रेजेन्टेशन किया होगा। सौ से भी अधिक पुरस्कार मिले होंगे उन्हें। लेकिन दुर्भाग्य कि उनके दोनों बच्चें नालायक निकले। बाप का एक भी गुण उनमें नहीं है।''

'फिर वे इस तरह झूठ क्यों कहते हैं, बच्चों के बारे में?'' मैंने गुस्से में पूछा।

''अरे, इतना बड़ा आदमी। जिसके हजारों स्टुडेंट्स् बड़े–बड़े ओहदों पर हों, वह अपने नालायक बच्चों के बारे में सच कैसे कह पाएंगे! उनकी जगह हम होते, तो हम भी वही करते ना।''

मैं समझ गया, परंतु सर से बात किए बिना मन को सुकून मिलनेवाला नहीं था।

एक हफ्ते बाद सर उसी बेंच पर बैठे मिले। मैं जाकर उनकी बगल में बैठ गया। इधर–उधर की बाते करके मैंने कहा,

''सर ! आपके बच्चों के बारे में मालूम हुआ। बहुत दुख हुआ''

वे तुरंत समझ गए कि मैं क्या कहना चाहता हूँ। वे गंभीर हो गए।

''सर, आखिरकार आपको मालूम हो ही गया !''

''हाँ, सर। लेकिन यह सब हुआ कैसे? आप इतने बुद्धिमान, नामचीन ...''

यह एक बहुत बड़ी त्रासदी है। विस्तार से बताता हूँ। ग्रेजुएट होने के बाद मेरे पिताजी ने गाँव के अपने दोस्त की बेटी से मेरा विवाह करा दिया। लड़की दसवीं फेल, पर थी सुंदर। पिताजी का आग्रह था। मुझे भी लगा कि आगे पढ़ा सकूँगा। इसलिए मैंने शादी कर ली। लेकिन बाद में मैं समझ चुका कि वह अत्यंत सामान्य बुद्धि की है। केवल जान–पहचान के कारण दसवीं तक पास होती गई। यह भी सुनने में आया कि गाँव के एक लड़के से उसे प्रेम था। परंतु उम्र का दोष मानकर मैंने माफ कर दिया। पोस्ट ग्रेज्युएट करने के बाद मैंने कॉलेज में नौकरी ज्वॉईन कर ली। बीवी को पढ़ाने की काफी कोशिश की। औंधे घड़े पर पानी। फिर मैंने उसके बारे में सोचना बंद कर दिया और अपने पी.एच.डी. के शोधकार्य में जुट गया। बाद में बच्चें हुए। मैंने अपने कैरियर पर ध्यान केंद्रित कर दिया। बच्चें बड़े हो रहे थे। मेरा कैरियर का ग्राफ भी बढ़ता जा रहा था। मैंने बच्चों को एक अच्छे स्कूल में भर्ती करा दिया। लेकिन स्कूल से आनेवाली रिपोर्टों से पता चला कि मेरे दुर्भाग्य से बच्चे माँ पर गए हैं। अच्छे क्लासेस थे, मेरा मार्गदर्शन था। बावजूद इसके बड़ी मुश्किल से वे पास होते गए। अंततः मैंने उन्हें उनके नसीब पर छोड़ दिया। अपने कैरियर की तरफ ध्यान दिया। मैंने खुद को अनुसंधान में व्यस्त रखा। अंतरराष्ट्रीय अधिवेशनों में सहभागी होता रहा। बच्चे कॉलेज में गए। वहाँ उन्होंने गुल खिलाना शुरू किया। बेटी के लफड़ों से तंग आकर मैंने उसे पूना भेज दिया। कॉलेज आने–जाने के लिए ऑटो रिक्शा का इंतजाम कर दिया था। तो वह उस ऑटो रिक्शावाले के साथ ही भाग गई। अपनी ताकत का इस्तेमाल करके दोनों को पकड़कर मैं वापस ले आया। परंतु बेटी बालिग थी। अतः मैं कुछ नहीं कर पाया। अब वे वहीं हैं। उसका पति रिक्शा चलाता है।

बेटे ने भी अपने रंग दिखाने शुरू किए। कम उम्र में वह अनेक प्रकार के व्यसनों का आदि हो गया। उसका चाल–चलन देखकर उसके मामा ने नंदूरबार की कोर्ट में चपरासी का काम दिला दिया। वहीं एक लड़की से उसने अंतर्जातीय विवाह किया। मेरा दुर्भाग्य कि अनेक शादियों में मैं मुख्य अतिथि के रूप में सम्मिलित होता था। पर मेरे दोनों बच्चों ने ना मुझे बताया, ना बुलाया। चुपचाप शादी कर ली।

मैं प्रिंसिपल बन गया। कुलगुरु के ऑफर भी मिले। लेकिन मैंने इनकार कर दिया। पारिवारिक सुख मुझे मिला ही नहीं।''बोलते–बोलते उनका गला भर आया।

''आपकी बीवी ने कभी उन्हें सुधारने का प्रयास नहीं किया?'' मैंने पूछा।

''सबसे बड़ी बाधा तो वही थी। उसने बच्चों का समर्थन ही किया। मुझसे प्रेम था ही नहीं उसे। इसलिए मेरी प्रतिभा पर हमेशा जलती थी वह। बच्चों ने भी यही किया। मेरी इच्छा थी कि बेटा सांइटिस्ट बनकर नासा में जाए और बेटी कंप्यूटर इंजीनियर बने। लेकिन बच्चों ने मेरे मुँह पर कालिख पोत दी।''

''अब उनके साथ आपके संबंध कैसे हैं?'' मैंने पूछा।

''हैं ही नहीं। मैंने उन्हें घर आने से मना कर दिया है। वे भी मुझे कभी बुलाते नहीं है।''

''अरेरे!'' मुझे ऑफिस जाना था। इसलिए मैंने उनसे विदा ले ली। लेकिन पूरा दिन मैं उन्हीं के बारे में सोच रहा था।

सर जी से मेरी पुनः मुलाकात हो गई। तब मैंने उनसे कहा, ''सर! आपके बच्चों ने आपके ज्ञान, बुद्धि एवं अनुभव का लाभ नहीं उठाया। परंतु ऐसे कई बच्चें हैं, जिन्हें इस सबकी जरूरत है।''

''मतलब? मैं कुछ समझा नहीं।''

''सर, कई बच्चे एम पी एस सी, यूपी एस सी की परीक्षाएँ देना चाहते हैं। परंतु अच्छे कोचिंग क्लासेस नहीं होते हैं या फिर उनकी फीस उनके बस में नहीं होती है। ऐसे बच्चों को आपके ज्ञान एवं अनुभव का लाभ हो सकता है।''

सर की आँखें चमक उठी। खुश होकर उन्होंने कहा,

''क्या ! ये तो बहुत बढ़िया आइडिया है। ऐसे बच्चों को मैं मुफ्त में पढ़ाऊँगा।''

''बिल्कुल नहीं सर। मुफ्त में पढ़ाने से उसका कोई मोल नहीं रहेगा। कम से कम फीस लेकर आप उन्हें पढ़ा सकते हैं।''

''हाँ, ठीक है। पर मुझे स्टुडेंट्स् मिलेंगे कैसे?''

''सर, आपके प्रचार–प्रसार का तथा स्टुडेंट्स ला देने का जिम्मा मुझ पर।''

''बहुत बढ़िया!'' उनके चेहरे पर खुशी झलक रही थी। तब मैंने कहा,

''सर, और एक बात। गुस्सा मत होना। अब आपकी जिंदगी के कुछ ही साल बचे हैं। क्यों न बचे हुए दिन खुशी–खुशी बिताएँ?''

''सही कर रहे हैं आप। लेकिन मैं क्या कर सकता हूँ?''

''सर, आपके बच्चों की वास्तविक स्थिति हम टाल नहीं सकते हैं। हमारे संत कह गए हैं, 'जो नसीब में है, उसे भुगतने के लिए तैयार रहो'। बच्चों के संदर्भ में आपके नसीब में जो था, वह तो आप भुगत चुके हैं। जो हुआ सो हुआ। अब नए सिरे से शुरूआत करते हैं।''

''यानी मुझे क्या करना पड़ेगा?''

''आप बेटा और बेटी को घर बुला लीजिए। पोते–पोतियों के साथ खेलने के यही तो दिन हैं। उनके बड़े होने से पहले ही आपको आनंद लेना है।''

पोते–पोतियों के प्रति खिंचाव से उनकी आँखें भर आईं। ''आपकी बात समझ रहा हूँ मैं लेकिन प्रत्यक्ष में...। उन दोनों ने मुझे बहुत कष्ट दिए हैं। अब उनके सामने मुझे झुकना पड़ेगा?''

''आपका कहना सही है, सर। लेकिन यह काम आपको करने की आवश्यकता नहीं है।

आपकी इजाजत हो, तो यह काम करने के लिए मैं तैयार हूँ।''

सर का चेहरा खिल उठा। ''अरे, अनुमति का सवाल ही नहीं उठता। तुम तो पोता–पोती को दादा से मिलवा रहे हो। इसके जैसा पुण्य काम नहीं है।''

उसके बाद पूरा एक महीना बीत गया। सर के लिए मैंने बीस स्टुडेंट्स का इंतजाम करा दिया। उन्हीं के बंगले में क्लासेस शुरू किए। उनके पढ़ाने के तरीके से खुश होकर पहले वाले बीस स्टुडेंट्स और तीस स्टुडेंट्स ले आए। क्लास का प्रबंध करके मैं परभणी के लिए निकल पड़ा, सर की बेटी से मिलने। सर का नाम लेते ही वह गुस्से से उबल पड़ी। मैंने उसे समझा दिया। अपनी गलती उसके ध्यान में आ गई। उसने स्वीकार किया कि प्रेम में दीवानी होकर पिताजी के साथ गलत बर्ताव कर बैठी। उसे खुशी इस बात की थी कि बिछड़ा हुआ मायका पुनः मिल रहा है। अगले महीने सर के जन्मदिन पर आने का उसने वचन दिया।

फिर मैं सर के बेटे से मिलने नंदूरबार चला गया। सर का निमंत्रण उसने साफ ठुकरा दिया। उसने कहा, 'बाप का मुँह देखने की उसकी बिल्कुल इच्छा नहीं है।'

'मैंने उसे अलग तरीके से समझा दिया। तुम आनेवाले नहीं हो, पर तुम्हारी बहन आनेवाली है। तब शायद सर अपनी सारी प्रॉपर्टी उसके नाम कर सकते हैं या फिर तुम्हारा हिस्सा समाजसेवी संस्थाओं को दान में दे सकते हैं।' यह बात उसकी बीवी की समझ में आ गई। उसने अपने पति को समझाया। तब जाकर वह भी राजी हो गया।

सर का विशेष निमंत्रण था। मैं उनके जन्मदिन पर उपस्थित रहा। सर ने अच्छी–खासी दावत दी। सर की बेटी और बेटा सपरिवार उपस्थित थे। उद्यान में सर पर हँसनेवाले सभी वरिष्ठ नागरिक तथा सर के स्टुडेंट्स भी उपस्थित थे। सर बेहद खुश थे। सभी से मेरा परिचय कराकर उन्होंने मुझे अपने पास खींच लिया और कहा, ''यह मेरा दूसरा बेटा है। इसी ने मुझे जिंदगी जीना सिखाया। आज का यह खुशीभरा दिन केवल इसी के कारण हम देख रहे हैं।''

सभी ने खूब तालियाँ बजाईं। सर ने मुझे बेटा कहा। तब उनकी बीवी, बेटा और बेटी का मेरी तरफ देखने का दृष्टिकोण ही बदल गया। उनके मन में क्या चल रहा होगा, मैंने भाँप लिया। मैंने माइक हाथ में लिया और कहा,

''डरिए मत ! सर की प्रॉपर्टी में से मुझे एक रूपया भी नहीं चाहिए।''

हँसी का फव्वारा फट पड़ा। मैंने देखा सर अपनी खुशी के आँसू पोंछ रहे थे।

❑❑❑

ओडिया कहानी

वही लड़की

दाशरथि भूयाँ

अनुवाद : भगवान त्रिपाठी

हीराखंड एक्सप्रेस दक्षिण–पश्चिम दिशा की ओर मुँह किए दौड़ रही थी। खटरखट–खटरखट की संगति से ताल मिलाते हुए पेड़–पौधे, मील के पत्थर, बिजली के खंभे, पहाड़–पर्वत, सभी ट्रेन के विपरीत दिशा में दौड़ रहे थे। मानो सारी पृथ्वी ट्रेन के यात्रियों को पीछे छोड़कर भाग रही हो। खोरधा स्टेशन में साधारण डिब्बे में भीड़ बेहद बढ़ गई थी। भीड़ में से एक दुबली–पतली कमजोर बूढ़ी औरत, जो जगन्नाथ धाम से एक मास का कार्तिक–व्रत समाप्त करके लौट रही थी, खोरधा स्टेशन से चढ़ी। वृद्धा की थकी हुई आँखें बैठने के लिए थोड़ी–जगह तलाशने लगीं। कहीं भी उन्हें खाली जगह नजर नहीं आई। खड़े होकर यात्रा करना उस वृद्धा के लिए काफी कठिन था। यह बात उनके चेहरे से साफ झलक रही थी। वृद्धा के कंधे पर लटका हुआ एक पुराना थैला सामने बैठे एक युवक के सिर पर झूल रहा था। बीच–बीच में वह थैला युवक के सिर से हल्का–हल्का टकराता था। उस थैले को वहाँ से हटाने के लिए युवक वृद्धा को बार–बार ताकीद कर रहा था। थकावट के कारण उनका बदन काँपने लगा। वृद्धा को अपने पास बैठाने के लिए कोई भी सहयात्री तैयार नहीं था।

वृद्धा की नजर सूरत से लौट रहे अर्द्ध शिक्षित–अशिक्षित चार–पाँच युवकों पर पड़ी, जो ताश खेल रहे थे। वह सूरत–पुरी एक्सप्रेस से संबलपुर होते हुए आकर भुवनेश्वर में उतरे थे। फिर वहाँ से कोरापुट जाने वाली हीराखंड एक्सप्रेस में आ बैठे थे। उनके पास बैठने के लिए थोड़ी जगह मिलने की संभावना थी; किंतु वे युवक उस वृद्धा को अपने पास बैठाना चाह नहीं रहे थे। ताश खेलने वाले युवकों के पास एक युवती बैठी हुई थी, वृद्धा की पीड़ा और व्याकुलता को भली–भाँति महसूस कर पा रही थी। युवती ने एक बार वृद्धा के चेहरे को देखने के बाद ताश खेलने युवकों के चेहरों पर निगाह डाली। वे सब ताश खेलने में मशगूल थे। उन्हें अपने खेल में किसी और का हस्तक्षेप बिलकुल पसंद नहीं था। वे खेल रहे थे, हँस रहे थे और पास में बैठी युवती के सौंदर्य को कनखियों से देखने का आनंद ले रहे थे।

ट्रेन निराकारपुर स्टेशन पार कर चुकी थी। भीड़ में वृद्धा की पीड़ा काफी बढ़ गई थी। युवती ने फिर एक बार वृद्धा के व्याकुल और पीड़ित चेहरे को देखा। बैठी हुई युवती और खड़ी हुई वृद्धा के बीच

अटैची को रख कर, उस पर चादर बिछा

कर युवक ताश खेल रहे थे। वृद्धा के चेहरे की ओर अपलक नयनों से निहारते हुए युवती कुछ सोचने लगी। सोचते हुए किसी एक निर्णय पर पहुँचने के बाद उसके होठों पर एक मुस्कान फैल गई। उसने वृद्धा को आमंत्रण देते हुए कहा– "मौसी, आप यहाँ आइए। मेरे पास बैठिए।"

युवती की उदारता को देखकर ताश खेलने वाले युवकों के मन में गुस्से का वातावरण फैल गया। युवकों ने एक–दूसरे के चेहरों को देखा फिर युवती पर अपना गुस्सा जाहिर किया। एक युवक ने दूसरे युवक के कान मे फुसफुसाते हुए कहा– "साली! उदारता का ज्यादा दिखावा कर रही है।"

एक दूसरे युवक ने युवती को ऊँची आवाज में सुनाया– "यहाँ बैठने के लिए जगह कहाँ है? बूढ़ी क्या हमारे सिर पर बैठेगी?"

तीसरे युवक ने दो युवकों का समर्थन करते हुए कहा– "बूढ़ी को अंदर बिलकुल आने मत दो। देखते हैं हमारा कौन क्या कर लेगा?"

वृद्धा ने युवती के पास जाने की प्रबल इच्छा जाहिर की; लेकिन युवकों के नकारात्मक मनोभाव को देखते हुए वृद्धा वहीं खड़ी रही। युवती ने वृद्धा को अपने पास बैठने के लिए फिर से निमंत्रित किया। वृद्धा साहस बटोरते हुए जब युवती के पास जाने को उद्यत हुई, तब युवकों ने उसे अंगुली दिखाते हुए कहा– "ठहर जा बुढ़िया। हमारा खेल खत्म होने दे। हम ब्रह्मापुर में उतर जाएँगे। फिर आराम से बैठना।" वृद्धा ने काफी दीनता भरी आवाज में अनुनय किया– "हे बाबुओं! मैं भी ब्रह्मापुर तक ही जाऊँगी।"

ट्रेन दौड़ रही थी उसी पुरानी गति से काफी देर खड़े रहने के कारण उस वृद्धा का थका हुआ और हल्का बदन ट्रेन के खटर–खटर संगीत के साथ ताल मिलाते हुए काँप रहा था। फिर से एक बार वृद्धा ने युवकों से विनती करते हुए कहा– "हे बाबुओ! तुम लोगों के खेल में बाधा बिलकुल नहीं उपजाऊँगी। मुझे जरा बैठने दो।"

वृद्धा द्वारा बार–बार अनुरोध किए जाने से खेल की एकाग्रता नष्ट हो रही थी। एक युवक गुस्से में आकर कह उठा– "ए डोकरी! पहले खेल खत्म हो जाने दे। फिर तेरे बैठने की बात सोचेंगे।"

वृद्धा और उस युवती के साथ चल रहे युवकों ने कोई उत्तर नहीं दिया। युवती समझ गई कि सारे युवक जानबूझ कर उसके अनुरोध की उपेक्षा कर रहे हैं। इसलिए उसने क्रोध भरी आवाज में कहा– "यदि मौसी को मेरे पास आने नहीं देंगे, तो मुझे अटैची को हटाना ही पड़ेगा।"

उनमें से एक निर्दय स्वभाव के हट्टे–कट्टे काले युवक ने क्रूर नयनों से युवती को देख कर प्रतिवाद करते हुए कहा– "ए छोकरी! यदि हटा सकती है, तो हमारी अटैची को एक बार हाथ लगा के तो देख।"

युवती भी छोड़ने वाली थोड़े ही थी। हाजिर जवाब वाली युवती ने उत्तर देते हुए कहा– "फिर तुम क्या कर लोगे? ठीक है, देखो। मैं अभी तुम्हारी अटैची को यहाँ से हटा कर मौसी को बैठाऊँगी। यह कहते हुए युवती ने दो अटैचियों पर फैलाई गई चादर को हटा दिया। चादर पर रखे हुए सारे ताश सरसराते हुए गिर पड़े। फौरन

एक अटैची को सीट के नीचे धकेल कर युवती ने वृद्धा का हाथ पकड़ कर अपने पास खींचते हुए ले आई और बैठा दिया।

गुस्सैल आवाज में युवकों ने ब्रह्मापुर की भाषा में बकना शुरू किया– "ए छोरी! औरत जात में पैदा होकर मर्दों की तरह मर्दानगी दिखा रही है। रहने दे अपने पास यह मर्दानगी। ब्रह्मापुर स्टेशन आने दे। हम अपनी असली मर्दानगी दिखाएँगे।"

लड़की ने कटाक्ष के साथ ठहाके लगाते हुए कहा– "ब्रह्मापुर स्टेशन में चार–पाँच युवक मिलकर एक लड़की पर जुल्म करते हुए भाग निकलने की योजना कौन–सी मर्दानगी में गिनी जाएगी। धिक्कार है तुम्हारी मर्दानगी को।"

यद्यपि क्रोधित युवती के वाक्य–बाण से सारे युवक क्रुद्ध हो उठे थे, परंतु उनका स्टेशन नजदीक आने के कारण वे अपना–अपना सामान समेटने में व्यस्त हो गए।

दूसरों के झगड़े को देखने में सब को मजा आता है। अब तक दूसरे के झगड़े का मजा उठा रहे मामा और भांजा, यह जानने के लिए उत्सुक थे कि अब परिणति क्या होने वाली है; लेकिन युवकों के नरम पड़ जाने के स्वभाव को देख कर दोनों का मन फीका पड़ गया था। इस घटना का इतनी आसानी से समाधान हो जाएगा, इसका उन्हें पहले से अंदाजा नहीं था। युवती की इस तरह की हिम्मत को देख कर वे उसके चेहरे की ओर टुकुर–टुकुर देखने लगे थे। तब तक ट्रेन आकर ब्रह्मापुर स्टेशन पर पहुँची। बेशर्म युवक कोई उत्तर दिए बिना ही उतर गए थे। युवकों के उतरने से पहले युवती ने उन्हें इतना ही कहा था– "मुझे इसका खेद है कि आप लोगों के खेल में बाधा उपजी।"

ब्रह्मापुर स्टेशन पर उस युवती ने वृद्धा का हाथ पकड़ कर उन्हे प्लेटफार्म पर उतार दिया था। युवती के बैठने की सीट के पास सारी जगह खाली हो गई, तो दूसरी तरफ बैठे मामा और भांजा झटपट युवती की सीट के पास दौड़ आए और वहीं एक–एक सीट अख्तियार करके बैठ गए।

मामा और भांजा यह सोचकर मन ही मन खुश हुए कि उस युवती के पास बैठ कर यात्रा करने से यात्रा आनंददायक होगी।

मामा ने युवती से कहना शुरू किया– "समझे मैडॅम, आपकी बुद्धि और साहस की तारीफ किए बिना रहते नहीं बनता है। आपके वाक्य–बाणों से घायल होकर युवक इतना नरम पड़ गए कि वे उत्तर देने की हिम्मत ही नहीं जुटा पाए। बेचारे सिर खुजलाते हुए चुपचाप उतर कर चले गए। आप शायद कोरापुट जाएँगी? हम भी कोरापुट जा रहे हैं। मेरे भांजे के लिए लड़की देखने।"

उन्होंने फिर अपना भाषण शुरू किया– "यह मेरा भांजा वीरेंद्र है। मैं उसका मामा हूँ प्रभु प्रसाद पाढ़ी। संक्षेप में पी.पी.पी. कहने से सारा ओड़िशा मुझे जानता है। हमारी पार्टी अभी सत्ता में है। ये छोकरे यदि ज्यादा कुछ कहते, तो मैं ब्रह्मापुर के एस.पी. को मोबाइल से बता देता। अब मेरे दोस्त का बेटा गंजाम का कलक्टर है। वह सब कुछ सँभाल लेता।"

फिर उन्होंने अपने भांजे का परिचय कराने के उद्देश्य से लड़की से कहा– "मेरा भांजा वीरेंद्र एक बहुत बड़ी स्वेच्छासेवी संस्था का सर्वमय कर्ता है। वह संस्था महिलाओं के लिए काम कर रही है और अंतरराष्ट्रीय स्तर से अनुदान मिल रहा

है। उनके ऑफिस में सैकड़ों कर्मचारी काम कर रहे हैं। उसे भी ओड़िशा के सारे बृद्धिजीवी अच्छी तरह जानते हैं; यानी एक लेखक के रूप में उसका खूब परिचय है। उसकी लिखी हुई किताब नारी सशक्तिकरण को लेकर साहित्य अकादमी ने उन्हें पुरस्कृत किया है। वह किताब अभी ओड़िशा के सभी विश्वविद्यालयों में पाठयपुस्तक के रूप में प्रचलित है।"

मामा की चापलूसी भरी उक्ति से भांजा वीरेंद्र गर्व के मारे फूले नहीं समाया। युवती की प्रतिक्रिया जानने के लिए उसके चेहरे की ओर देख कर वीरेंद्र ने एक कुटिल मुस्कान बिखेर दी। इस प्रकार के परिवेश में मामा–भांजा दोनों की ट्रेन की यात्रा रसमय हो उठी थी।

विजयनगरम् स्टेशन में कुछ और यात्री उस साधारण डिब्बे में चढ़े। नये चढ़नेवालों में तीन युवक थे। तीनों युवकों के कंधों पर एक–एक बैग लटक रहा था। वे अजीब किस्म के कपड़े–लत्ते पहने हुए थे। बाघ की खाल की तरह चुस्त पैंट पहने हुए थे। पहनी हुई टीशर्ट में द्वि–अर्थबोधक अंग्रेजी शब्द लिखे हुए थे। उनके हाव–भाव से वे छात्र तो लग नहीं रहे थे।

उनमें से पिंटू नामक युवक की आँखों के लेंस में युवती का रूप जैसे ही प्रतिबिम्बित हुआ, उसी क्षण वह औरों को बुलाने के लिए चिल्लाने लगा– "अरे बंटी, मिंटू यहाँ सीट खाली है। अबे, आओ यहाँ बैठते हैं। ऐसा कहते हुए पिंटू युवती के पास सटकर बैठ गया।"

दरवाजे के पास खड़े बंटी और मिंटू फौरन वहाँ आ पहुँचे। युवकों के इस तरह के अनुप्रवेश और हरकत को देख मामा और भांजा का मन फीका पड़ गया।

उनके बैठने के ढंग से नाराज होकर मामा ने कह दिया– "ए बाबुओ। आगे बहुत जगह खाली पड़ी हे। यहाँ भीड़ में क्यों बैठ गए।"

मामा की बातें सुनकर पिंटू नामक युवक ने गुस्से में आकर कहा– "मौसा, अब तुम ज्यादा बकबक मत करो। आजकल उपदेश बड़े सस्ते हो गए हैं। अपने उपदेशों को बेचने के लिए कहीं और जाओ। मौसा, तुम आगे क्यों नहीं जाते झरोखे के पास बैठोगे। पान डालने के लिए भी सहूलियत होगी। इसके साथ खुली हवा भी मिलेगी। ऐसा कहते हुए पिंटू आकर बैठ गया मामा के पास।"

मामा ने बौखलाते हुए कहा– "अरे ऐ, तुम मेरे सिर पर आकर बैठोगे क्या?"

अब की बार पिंटू ने व्यंग्य करते हुए सिनेमा का एक गीत गाकर मामा को चिढ़ाया– "हाय मैं क्या करूँ राम मुझे बुड्ढ़ा मिल गया।"

पिंटू की इस तरह की पैनी व्यंग्य भरी बातों से तनिक लज्जित और अपमानित अनुभव करते हुए मामाजी भांजा वीरेंद्र से सहायता चाहते हुए उसकी ओर देखने लगे; लेकिन उन युवकों को ताकीद करने की हिम्मत वीरेंद्र की हुई नहीं। उन युवकों के बैठ जाने के बाद मामा और भाँजा की ट्रेन–यात्रा मानो विषमय हो उठी थी। ट्रेन अपनी पारंपरिक गति से आगे की ओर बढ़ती जा रही थी।

कुछ पल नीरवता के साथ बीत जाने के बाद मिंटू नामक युवक ने युवती को टेढ़ी नजर से निहारते हुए पूछा– "आप शायद कोरापुट तक जा रही हैं?

युवती ने सुजनता की दृष्टि से उत्तर दिया– "हाँ मैं कोरापुट लौट रही हूँ।"

युवक ने फिर से पूछा– "आप क्या करती हैं?"

युवती ने उत्तर दिया– "मैं कुछ नहीं करती। पुलिस एस.आई. इंटरव्यू देने के लिए भुवनेश्वर गई थी।"

तीनों युवक एक दूसरे के चेहरे को देखने लगे। उसका अर्थ यह है कि यह युवती अकेली है। फिर भी संदेह दूर करने के लिए उन्होंने फिर एक बार युवती से पूछा– "आप क्या इंटरव्यू देने अकेली गई थीं?"

वीरेंद्र ने युवकों की बातों में दखल देते हुए कहा– "लड़कियों का ट्रेन में अकेले यात्रा करना शायद आपको अजीब लगता है। नारी सशक्तिकरण के इस युग में महिलाओं को आप लोग इतना कमजोर क्यों समझते हैं? मैंने अपनी पुस्तक में नारियों की इस नई शक्ति का ही बारीकी से विश्लेषण किया है।"

मामा–भांजा और इन तीन युवकों में युवती की अकेले ट्रेन–यात्रा को लेकर जो विवाद चल रहा था, उससे युवती को तनिक शर्म महसूस हुई। उसके अकेले यात्रा करने के साथ इनका क्या संपर्क है। उसे लेकर इन लोगों में इतना वाद–विवाद चल क्यों रहा है। वह कुछ समझ नहीं पा रही थी।

बेटी अकेले ट्रेन में भुवनेश्वर इंटरव्यू देने जाएगी। लड़की के पिताजी इसके लिए राजी नहीं थे। उन्होंने बेटी के साथ भुवनेश्वर आने की जिद की थी; लेकिन बेटी ने पिताजी को समझाते हुए कहा था– "हर पल सुरक्षा देने के लिए एक नारी के पास एक पुरुष का रहना क्या निहायत जरूरी है? वह भी पुरुषों की तरह हर परिस्थिति में खुद को ताल मिलाते हुए चल सकती है। हर परेशानी का सामना कर सकती है।"

पिताजी साथ आएँगे। युवती का स्वाभिमान इसे बिलकुल स्वीकार नहीं कर पा रहा था। बेटी के तर्क से पिताजी चुप हो गए थे।

तब तक ट्रेन आंध्रप्रदेश को पार करके रायगढ़ इलाके में प्रवेश कर चुकी थी। रायगढ़–कोरापुट के जंगल के घाटी–रास्ते में सुरंग के बीच ट्रेन के बिगुल की आवाज प्रतिध्वनित हो रही थी। एक के बाद एक छोटी–बड़ी सुरंग। कभी अंधकार तो कभी प्रकाश। युवती को भावना में डूबा हुआ देखकर बंटी ने पूछा– "क्या सोच रही हैं। आप? अकेली महसूस कर रही हैं क्या? आप अब अकेली नहीं हैं। हम आपके साथ हैं। आपको कोई कुछ भी नुकसान पहुँचा नही सकता। मेरे पिताजी एक ऊँचे ओहदे के अफसर हैं। आप जो इंटरव्यू देकर आई हैं, उनकी सिफारिश से उसमें सफल हो सकती हैं। आप ट्रेन से उतरने के बाद हमारे साथ चलिए। स्टेशन के पास हमारा एक होटल है। वहाँ से मैं अपने पिताजी को फोन करके आपके इंटरव्यू की बात बताऊँगा। आप मेरे साथ चलेंगी न?"

युवकों के अजीब प्रस्ताव का कोई उत्तर न देकर युवती चुप रही। इन युवकों के साथ उनका क्या संपर्क है? उन्हें वह तनिक भी न जानती है, न पहचानती है। फिर भी ये युवक उन्हें जोर जबरदस्ती ऐसा प्रस्ताव क्यों दे रहे हैं, उनका उद्‌देश्य क्या है? युवती ने अपने मनोबल को दृढ़ बनाते हुए उन्हें कहा– "थैंक्स फॉर युअॅर प्रपोजल। मैं ट्रेन से उतर कर सीधा घर चली जाऊँगी। उधर पिताजी और चिंतित होकर मेरे लौटने की बाट जोह रहे होंगे।"

बंटी ने युवती को ढाढ़स दिलाते हुए समझाने की कोशिश की– "आप एक आधुनिक और स्वाधीन नारी हैं। हर एक बात माँ और पिताजी को बता कर टेंशन देना उचित नहीं होगा।"

युवती अब की बार उनकी बातों को महत्व दिए बिना ही न सुनने की तरह झरोखे से बाहर की ओर निहारती रही। यह जानकर कि युवती उनकी बातों की उपेक्षा कर रही है, मिंटू नामक युवक ने कहा– "इधर देखिए मैडम। उन अँधेरे से भरे पहाड़–पर्वतों से क्या मिलेगा? आप हमारे साथ होटल चलेंगी या नहीं?" और दो युवकों ने मिंटू की बातों का समर्थन करते हुए कहा–"मैडॅम हमारे साथ जरूर जाएँगी। न जाएँगी तो हम थोड़े ही छोड़ने वाले हैं। जबरदस्ती ले जाएँगे न। मैडम सिर्फ ऊपर से ना–ना कर रही हैं। पर अंदर ही अंदर पूरी तरह खुश हैं।"

युवकों के असभ्य आचरण से पूरी तरह भयभीत होकर सहायता की आशा से मामा और भांजा वीरेंद्र के चेहरे को व्याकुल नयनों से निहारने लगी। युवती की व्याकुलता को देख कर मामा और भांजा दोनों ने युवकों से कहा– "तुम लोग शरीफ घर के लड़के हो या नक्सल। यदि तुम्हारे साथ होटल जाने के लिए लड़की तैयार नहीं है, तो उसके साथ जबरदस्ती क्यों कर रहे हो?"

मामा और भांजा को तीनों युवकों ने लाल आँखें दिखाते हुए कहा– "तुम क्यों कबाब में हड्डी बन रहे हो। यह हम लोगों का अंदरूनी मामला है। तुम इसमें सिर खपाने वाले कौन हो? जान लो कि नतीजा अच्छा नहीं होगा।"

ठीक उस समय दो रेलवे पुलिस के जवान उस डिब्बे से होकर गुजर रहे थे। युवती ने सोचा कि वह युवकों के खिलाफ पुलिस से शिकायत करेगी; लेकिन पुलिस को देखते ही बंटी नामक युवक खुशी के मारे कह उठा– "अरे नागा मामा, तुम?"

बड़ी–बड़ी मूँछों वाले काले–कलूटे पुलिस के जवान ने आवभगत करते हुए कहा– "बंटी बाबू, तुम इस ट्रेन में? तुम्हारे साथ यह लड़की कौन है?"

बंटी ने फौरन कह दिया– "मेरी गर्ल फ्रेंड है।"

जी.आर.पी.पुलिस नागा रेड्डी ने अपने साथी पुलिस को बता दिया– "ये हमारी कॉलोनी के साधु बाबू के बेटे हैं।"

फिर दोनों पुलिसकर्मी बंटी से हाथ मिलाकर डिब्बे की भीड़ में आगे की ओर बढ़ चले। दोनों पुलिसकर्मियों के गायब हो जाने के बाद युवकों की नजर फिर से युवती पर टिक गई। युवती की बगल में बैठे बंटी नामक युवक ने युवती के कंधे पर हाथ रखते हुए कहा– "फ्रेंड, तुम इस तरह नाराज क्यों हो रही हो?"

बंटी के इस तरह के असामाजिक स्वभाव को देख कर युवती गुस्से में आग बबूला हो उठी। उसकी आँखों में अँधेरा छा गया। वह गुस्से में खुद को सँभाल नहीं सकी और उसने बंटी के गाल पर एक सख्त चाँटा मारा। बौखलाते हुए अपनी जेब से एक धारदार छुरी निकाल कर बंटी चिल्लाया– "तूने यह क्या किया हरामजादी छोरी?"

धारदार छुरी देखकर आस–पास के सभी यात्री डर के मारे काँपने लगे। सभी यात्रियों की ओर निगाह दौड़ाते हुए बंटी जोर से चीखने लगा। सभी यहाँ से दूसरी जगह जाते हो या नहीं? मैं कहता हूँ कि जाते हो या नहीं। ऐसा कहते–कहते सामने बैठे मामा और भांजे को लाल आँखे दिखाते

हुए आँखों में आँखें डालकर भौंहों के माध्यम से उस जगह को छोड़कर चले जाने का निर्देश दिया। बंटी की भयानक धमकी से मामा की नेतागिरी और वीरेंद्र की वीरता फीकी पड़ गई। उसी क्षण मामा ने अनुभव किया कि उनके पिछले हिस्से का कपड़ा गीला होने लगा है। मामा और भांजा अपनी बैठे हुए जगह से हड़बड़ाते हुए उठकर दूसरी जगह चले गए। उनका पीछा करते हुए दूसरे यात्री भी उस स्थान से एक–एक करके अपनी सीट छोड़कर चले गए।

सभी यात्रियों के दूसरी जगह चले जाने के बाद तीन युवकों ने मिलकर युवती के साथ दुर्व्यवहार करना शुरू कर दिया। शहर के बिजली के खंभों पर जलती रोशनी की कतार से युवती ने यह अंदाजा लगा लिया कि जरूर ट्रेन किसी शहर में प्रवेश कर चुकी है। स्टेशन को नजदीक आते देख उसने बड़ी होशियारी से चेन पुलिंग की। घटना की जानकारी लेने के लिए और डिब्बों से यात्री उतर कर उस डिब्बे के आसपास इकट्ठे हो गए। घटना की जाँच–पड़ताल के लिए जी.आर.पी. पुलिस की एक टोली दौड़ आई। तीनों अभियुक्त युवकों के साथ युवती को पुलिस ले गई जी.आर.पी.थाने में।

दूसरी जगह बैठे मामा और भांजा दोनों झरोखे की दरार से घटना का बारीकी से निरीक्षण कर रहे थे। एफ.आइ. आर. दर्ज करने का काम खत्म होने के बाद युवकों को हवालात में बंद करके युवती को छोड़ दिया गया। अब की बार युवती इंजन के पीछे के डिब्बे में चढ़ गई। युवती का ट्रेन में दोबारा लौटना मामा और भांजें को दिखाई नहीं पड़ा। उन्होंने सोचा कि तीन युवकों के साथ युवती को भी जी. आर.पी. पुलिस ने स्टेशन पर रोक लिया है।

ट्रेन का हॉर्न दोबारा सुनाई पड़ा। इसका अर्थ है कि ट्रेन फिर से यात्रा के लिए तैयार है। आधा घंटा रुक जाने के बाद ट्रेन फिर से अपने तय पथ पर दौड़ने लगी। भोर की ठंड हवा के कारण मामा और भांजा दोनों को नींद आ गई थी। यात्रियों के उतरते समय के शोरगुल से मामा और भांजा की नींद टूटी।

मामा और भांजा दोपहर तक कोरापुट स्टेशन में उतर कर लड़की देखने के लिए सीधा पहुँच गये। लड़की के पिता के घर पर लड़की देखने से पहले शिष्टाचार की दृष्टि से चाय–नाश्ता परोसा गया। चाय–नाश्ते के दौरान ट्रेन–यात्रा की अनुभूति का वर्णन करते हुए मामा–भांजा ठहाके लगा रहे थे। अंत में कहा कि हम नहीं होते तो उस लड़की का हाल क्या होता?

चूँकि पिताजी बेटी के साथ जाने की जिद कर रहे थे, इसलिए ट्रेन में हुए हादसे के बारे में उसने अपने पिताजी को अब तक कुछ नहीं कहा था। चाय–नाश्ता खत्म होने के बाद पिताजी घर के अंदर आये और बेटी से कहा– "बेटी तू अब तक तैयार नहीं हुई? वे लड़की देखने आए हैं न?"

बेटी ने कहा– "पिताजी! जो मुझे देखने आए हैं, उन्हीं के साथ मैं सहयात्री बनकर भुवनेश्वर से कोरापुट लौटी हूँ। ट्रेन में हम लोगों ने एक–दूसरे को अच्छी तरह पहचान लिया है। वे मुझे और ज्यादा क्या देखेंगे? मामा पी.पी.पी. बाबू ओड़िशा के एक दमदार नेता हैं और वीरेंद्र बाबू एक वीर और साहसी युवक हैं। मेरा इंटरव्यू बहुत अच्छा हुआ है। मेरा आत्मविश्वास है कि अबकी बार मैं जरूर सफल होऊँगी। मैं जब तक स्वावलंबी न हो जाऊँ, तब तक

मेरे लिए रिश्ता मत लाइएगा। मैं उन्हें अब डिस्टॅर्ब करना नहीं चाहती। मैं ट्रेन में सारी रात बिना सोए लौटी हूँ। मुझे नींद जोर से आ रही है पिताजी। मुझे पूरी तरह विश्राम करने दीजिए।"

बेटी की जिद को पिता जानते हैं। इसके अलावा वे यदि ट्रेन में लड़की के हाव–भाव और कार्यकलाप का बारीकी से निरीक्षण करके आए हैं, फिर यहाँ देखने के लिए रह क्या गया है?

लड़की के पिता लौट कर आए और अतिथियों से इतना ही कहा– "जी साहब! मुझे इस बात का पता नहीं था। बीते कल आप लोग मेरी बेटी के साथ एक ही ट्रेन में, एक ही जगह भुवनेश्वर से आत्मीयता के साथ बातचीत करते आए हैं। वह यह भी कह रही थी की मामाजी एक दमदार नेता हैं। हर जिले के हर थाने में उनका काफी प्रभाव है और भांजा वीरेंद्र बाबू भी नारी सशक्तिकरण के एक प्रखर प्रवक्ता हैं। उन्हें इस साल नारी सशक्तिकरण पर लिखी गई पुस्तक के लिए पुरस्कार प्रदान किया गया है। मेरी बेटी कह रही थी कि वीरेंद्र बाबू में एक और अच्छा गुण है। वीरेंद्र बाबू बहुत बड़े साहसी और वीर पुरुष हैं। बड़ी समस्या आने पर भी दूसरों को सहायता पहुँचा सकते हैं। दोनों एक–दूसरे के बारे में इतना सब जान चुकने के बाद, अब लड़की देखने की फॉर्मेलिटि की जरूरत ही क्या है?"

पत्नी की आवाज सुनकर लड़की के पिता घर के अंदर चले गए। मामा और वीरेंद्र बैठने की जगह से उठ कर खड़े हो गए और पल भर के लिए एक–दूसरे के चेहरे को टुकुर–टुकुर निहारते रहे। दोनों के मुँह से एक साथ एक ही आवाज निकल पड़ी– "वही लड़की!"

❑❑❑

कश्मीरी कविता

म्येच़

गौरीशंकर रैणा

नबस छुनु
बदुल्यो भुत वुनि रंग
जांड़ छि अनदुवन्दु नबस
वथ छि नज़रव दूर
तु गच्छनुक अरमान।

शीनस मंज़ फेटिम्यित ख्वर
छि छकान नार।
पनुवथर्न होंद वोजुजार दोधमुत नारस
मंज़।
सूर क्रुहुन, मोछि मंज़ बरिथ
पकु किथुकन्य
खुर्यलद वतन छु आमुत खुर।
ब्रोंहकन्यि छु, ब्रांदस प्येठ अलोन्द यि बर
वोथुय बेज़ार
कुस करि ठुक–ठुक।
क्रालु सन्दिस अथ चुवतिसप्येठ छि
रोटु गअमुच़ ग्रटु चांकुज

बानु छि फुट्य–फुट्य यिवान
वुन्य–वुन्य फुट अख नोट
नबु प्येठु वुच्छ अख त्रठ
गगराय गच्छित चोल सु क्राल,
अथ अन्यिगटिस मंज़।
गच्छि कुस तु अन्यि म्येच़
म्यानि गामुच
योसु ब मथुहॉ
पनुनिस मूद्यमतिस जिस्मस
त्रावहॉ मोछि मंज़ बेरिथ
क्रहंन सियाह सूर कुनि जायि
त्रावहॉ सु त्रामुव पॉन्स
युस फेसिथ छु म्यान्येन दौन वुठन मंज़
खोरु तलपेद्पन
यीहे मथनु म्येचि होन्द मेहलाम
तु अचिहेम बेयि ज़ुव!

❑❑❑

पुल

गौरीशंकर रैणा

पुल पर से लोग
आ रहे थे
जा रहे थे।

इधर बर्फ़ पिघलकर
पानी हो गई थी,
उधर पानी का रंग बदलता जा रहा था,

कभी हरा
कभी नीला
कभी लाल
तो कभी काला
उसमें तैर रही थी गुलाब की पंखुड़ियाँ

पानी का रंग काला देखकर भयभीत थे सभी!
बीच से चिनार पर
अजीब–सी आकृतियाँ उभर आईं थीं

पुल बीच से टूट गया था
मगर लोग आ रहे थे
जा रहे थे

कुछ इस तरफ
कुछ उस तरफ

❑❑❑

बांग्ला कविता

जेते–जेते

सुभाष मुखोपाध्याय

तारपोर जेते जेते जेते जेते
ऐक नदीर संगे देखा
पाएँ तार घूंघूर बाँधा
पोरने
उड़ उड़ ढेऊए
नील घाघर।
सेई नदीर दुई दिके
एक मुख से आमाके आमाके आसबी बोले
दाड़ कोरिए रेखे
अन्य मुखे
घुटते घुटते चोले जाय
आर
जेते जेते बुझिए दिलो
आमी एमनी कोरे आसी
एमनी कोरे जाई।
बुझिए दिलो
आमी थेकेऊ नेई
ना थेकेऊ आछी।
आमार काँधेर ऊपरे हाथ राखिलो
सोमोय
तारपोर कानेर काछे
फिसफिसे करे बोललो–
देखले
काण्डटा देखले
आमी किंतु कोखोनो
तोमाके छेड़े थाकी ना
तार कोथा सुने
हाथेर मुठोता खुललाम
काल रातेर बाँसी फूलगुलो
सतीई शुकिए काठ होए आछे।

❑❑❑

जाते–जाते

अनुवादः रोहित प्रसाद पथिक

उसके बाद जाते–जाते–जाते
एक नदी के साथ मुलाकात।
पाँव में उसके घुंघरू बंधा हुआ कपड़ा
उड़ता–उड़ता लहरों की तरह
उसका नीला घाघरा।
वह नदी की
दो दिशाओं में दो मुख की हुई
एक मुख से मुझे कह गई–
आ रही हूँ
खड़ी कर गई अन्य मुख से
वह खोजती–फिरती चली गई
और ऐसे ही चली जाती हूँ
समझा गई
मैं रहकर भी नहीं हूँ
और ना रहकर भी हूँ
मेरे कंधे के ऊपर हाथ रखा–समय।
उसके बाद कानों में फुसफुसाते हुए
कहा–
देखें!
कांड को देखें!
मैं अब कभी भी
तुझे छोड़कर रहता नहीं
उसकी बातों को सुनकर
हाथ की मुट्ठी को खोला
कल रात की बासी फूल सब
सच में,
सूखकर लकड़ी हो गए हैं।

❑❑❑

'स्त्री और समुद्र' पुस्तक की समीक्षा

पद्मा सिंह

हमारी लौकिक इच्छाएँ साहित्य में भाव के रूप में परिष्कृत हो जाती है। साहित्य मन और भाव की उपज है। साहित्कार मनुष्य मात्र की आकांक्षाओं और भावनाओं को अपनी चिंतनधारा के आधार पर प्रकट करता है। कवि के मानस की प्रतिच्छाया बनकर स्वयं अवतरित होती कविता कवि की जीवनानुभव और संवेदनाओं से एकाकार हो जाती हैं। फिर वही स्वतंत्र सत्ता के रूप में रचनाकार को अपनी चक्राकार गोलाइयों में भरमाती हैं। किसी रहस्यमयी छलना–सी जीवन–मृत्यु से भी परे, उजाले के विस्फोट सी अनायास निविड़ अंधकार में खींच ले जाती है, जहाँ मैं और तू का भेद मिट जाता है। वही है कविता का साम्राज्य जहाँ वाग्देवी स्वयं मूर्त हो उठती है। हृदय की गहराई में गूँजती, वेदना के सितार में झंकृत होती दिव्य रागिनी ने आदि कवि को जिस पुण्यलोक में अवगाहन कराया था, वहीं से कविता रूपी भागीरथी का उद्गम मान लिया गया। वही तो है जो अनादिकाल से संवेदनाओं की वेगवती धाराओं में सहृदयों के भौतिक ताप को शांत कर अनिर्वचनीय आनंद में निमग्न कर रही है।

मानस के संस्कार और अनुभूतियों को व्यक्त करने की बैचेनी ने सृजनधर्मी रचनाकार राकेश शर्मा को व्यापक फलक पर, जिन बिंदुओं पर कविता रचने की प्रेरणा दी है, उन्हें 'स्त्री और समुद्र' शीर्षक से एक सौ नौ कविताओं के रूप में पाठकों को सौंपा गया है। कवि निजी अनुभवों को सामाजिक मूल्यों और परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में शाब्दिक लय प्रदान करता हे। अपने वर्तमान से जुड़ा हुआ वह अतीत के वैभव और भविष्य के मध्य एक सेतु का निर्माण करता है। भाषा रचने के स्थान पर वह भावों को मूर्त रूप देता है। कविता की भाषा में जिस शाब्दिक लय रचते हुए कवि, सम्प्रेषण के रास्तों को सहज बनाते हुए समय से संवाद स्थापित करते हैं, वही उसे अपरिचय से परिचय की ओर ले जाता है। जीवनानुभव और चिंतन को पौराणिक संदर्भ व मिथकों के साथ बिंब और प्रतीकों के माध्यम से रूपाकार होते हुए कवि राकेश शर्मा अपना अलग मुहावरा भी रचते हैं, जिसमें समुद्र का विस्तार, तरलता और हलचल को छिपाकर, शांत दिखने के गुण स्त्री मन के अनाम रहस्यों के एकाकार होते प्रतीत होते हैं। 'कौन रचता है किसे' कविता में कवि, कविता की अखण्ड सत्ता की स्वीकारोक्ति करते हुए कहता है– "कविता एक सत्ता है/अप्रतिहत और

'स्त्री और समुद्र'/लेखक : राकेश शर्मा/प्रकाशन : नीरज बुक सेंटर, सी–32, आर्यनगर सोसायटी, प्लॉट नं–91, आई.पी.एक्सटेंशन, दिल्ली–110092/संस्करण : 2018/कुल पृष्ठ : 112 मूल्य : 200₹ /–

अखण्ड/कविता गंगा है/जो निकलती है/सृष्टा के कमंडल से/ भागीरथ सा कवि/पाता है सौभाग्य।" वाल्मीकि के कंठ में 'अनुष्टुप' हो उतरी वाग्देवी की अभ्यर्थना ही कविता का मूल उत्स है।

अतीत का 'कालखण्ड' बीत जाने पर भी, अपने चिह्न सभ्यता के सीने पर छोड़ जाता है। वर्तमान पर उसका प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। 'महाकाल की किताब' का पलटा गया पन्ना इतिहास कहलाता है। जो नाश और निर्माण की महागाथा लिखता है। समय का अविरल प्रवाह जीवन मृत्यु के मध्य प्रवाहित होता है। उसी से ऊर्जस्वित होकर महाकाल रचता है। महाकाली का ध्वंसकारी स्वरूप, फिर नाद का प्रलयंकारी डमरू बज उठता है। इस विश्व में मनुष्य कर्मफल या भाग्यफल से संचालित होता है, ऐसी धारणा है जिसके कारण सारा संसार एक अनजाने सुख की मृगतृष्णा के पीछे दौड़ रहा है। सुखःदुख का कोई सैद्धांतिक आधार नहीं है। अगर होता तो उपदेशकों, धर्मगुरुओं और समाज के ठेकेदारों को ज़मीन और आसमान एक करने में सिर फुटौव्वल करने की जरूरत ही नहीं रह जाती। कवि समय के परिवर्तन में प्रकृति की आशंकाओं से व्यथित होकर, वेदना से उबरने की राह खोजना चाहता है। मगर निराशा ही हाथ लगती है। वह बदलते समय के रक्त रंजित स्वरूप से उत्पन्न विचलन के स्वर 'अपने समय के लिए' शीर्षक कविता में व्यक्त करते हुए समय से दिशा दिखाने के आग्रह करता है– "फैलाओ कृपा हाथ/अज्ञानी मानव को/ सत्पथ दिखलाओ/हे मेरे समय/दिशा दिखलाओ।" जब चारों ओर फैला अंधकार विदीर्ण होगा, तभी तो ज्ञान के कपाट खुलेंगे ओर नई ऊर्जा का संचार होगा। जब साहित्य, कला और संस्कृति के विकास का मार्ग प्रशस्त होगा, तभी विचारधाराओं के आतंक से साहित्य की मुक्ति संभव है। साहित्य में व्याप्त अनाचार और विमर्ष की खोखली नारेबाजी, बौद्धिकता पर काई की तरह जम गई है। अपनी गहन अंधकार में भ्रमित जिजीविषा को पुनर्जीवित करने की चाह में, मुक्तिबोध को समरण करते हुए कवि 'वे नहीं आए' कविता में उस अज्ञात का आह्वान कर रहा है जो बाहर से नहीं, आत्मतेज से प्रकट होगा– "प्रतीक्षा में जिसकी/भूकंप सा कंपन लिए/अनाहूत आया वह/विचारधाराओं के भवन ध्वस्त/भवनों से फटी दरारों से/ झाँक कर देख रहे हैं/दक्षिण और बाम के पुरोधा सब/कला और क्रांति/के पक्षधरों को/अब नहीं सूझती कोई आकृति/जो उभरी है समय की दीवार पर/देखा था जिसे मुक्तिबोध ने/अंधेरे में कभी।" जीवन का उत्स आनंद है, जिसे महसूस करने वाला उस असीम सत्ता के मिलन का आनंद अनुभव करता है। 'ठहरे हुए जल का वक्तव्य' में यही संदेश है कि गतिमान होना ही जीवन की सार्थकता है। धरती की कोख में बहता जल जब वेग से प्रवाहित होकर समुद्र में मिल जाता है, वही उस अंतिम लक्ष्य को प्राप्त कर लेना है। इसीलिए गतिशीलता ही वह आनंद यात्रा है जो जीवन को परितृप्त करती है।

कविता को रसानुभूति का माध्यम और उसके आनंद को ईश्वरीय आनंद की चरमानुभूति कहा गया है। जब कवि कविता का आह्वान करता है तब वह समाधिस्थ हो जाता है। सृजन में लीन कवि का वह क्षण दिक् और काल से परे का आनंद होता है। जिसमें डूबकर वह अनिर्वचनीय सुखानुभूति की अंतःसलिला में, काल की परिधि से

छिटककर शून्य में स्थित हो जाता है। ये अक्षराधन ही कवि का मोक्ष है, जो 'कविता में समय' बनकर उसका जीवन सफल बना देता है। कवि का चिंतन मौलिक होगा तभी वह आने वाले समय के लिए सत्य का पथ प्रशस्त कर पाएगा। 'धारा के विपरीत' चलना जीवन संघर्ष का कारक अवश्य है किंतु रास्ता बनाकर चलना भी तो मनुष्य होने की अनिवार्य शर्त है, उसी को कवि कर्म कहा जाता है। कवि की सूक्ष्म दृष्टि बड़ी पारदर्शी होती है। वह उसे जिस सत्य के रूबरू कराती है वह साधारण मनुष्य की सीमा से परे है। फिर भी कवि कहता है– "तो आओ बंधु! धारा के विपरीत बहें और दूसरों को भी विपरीत बहने के लिए कहें।" "घाव और कविता" का मिथक 'अश्वत्थामा' की अंतहीन पीड़ा से सृजन की यातना को रेखांकित करना है। पीड़ा से कविता जन्म लेती है। जब दर्द असह्य होने लगता है, तभी शब्द निर्झरणी फूट पड़ती है। पीड़ा की अंतहीन खाइयाँ पार करते हुए कवि एक रहस्यमय लोक में विचरता है। एक आंतरिक लोक और दूसरा बाह्य लोक, जिसमें सृजन यात्रा निरंतर जारी रहती है। 'अकेली स्त्री' की दुश्चिंता पुरुष की दरिंदगी का सामना करने की है। पुरुष की उपस्थिति भीड़ के बीच तो सामान्य लगती है, किंतु अकेले में वही भय, असुरक्षा और आतंक का पर्याय पुरुष स्त्री के अचेतन को लगातार चोट पहुँचाता रहता है। स्त्री–पुरुष के बीच का यह द्वंद्व शाश्वत है। जिसे नीति, धर्म और समाज की सीमाओं ने भी सुरक्षा देने में असमर्थता दर्शायी है। इसी को आगे बढ़ाती हुई स्त्री की असुरक्षा दर्शाती कविता है 'प्रश्नों से जूझते हुए'। अकेले यात्रा करती स्त्री पुरुष की उपस्थिति में भयाक्रांत हो जाती है। ऐसे में पुरुष अपने भीतर की नैतिकता को ही कटघरे में खड़ा करने को विवश हो जाता हे। ये प्रश्न मात्र स्त्री के सामने ही नहीं उठते, पुरुष के पौरुष को भी चुनौती देते हैं। रेल यात्रा में ही दैहिक प्रेम प्रदर्शन से क्षुब्ध कवि प्रेम के सात्विक भाव पर विचार करते हुए सोच में पड़ जाता है कि "दो से एक हो जाने के लिए विकल/प्रेम के अभिनय में रत युगल" की अनियंत्रित वासना में प्रेम कहाँ है? 'इसे प्रेम नहीं कहते' कविता आचार्य रजनीश का 'सम्भोग से समाधि' तक दिया गया 'देह दर्शन' की निस्सारता पर प्रश्न चिह्न लगाती है।

'स्त्री का बचपन' में कवि स्वयं से पूछता है कि सूर, तुलसी ने राम–कृष्ण का बचपन तो चित्रित किया है लेकिन सीता और राधा का क्यों नहीं किया। यद्यपि सूर ने राधा की बाल सुलभ चेष्टाएँ वर्णित की हैं। 'चुटकी भर सिंदूर' में परंपराओं और नियमों में बद्ध रिश्तों में रीति निभाने भर का संकल्प शेष रह गया है, इसी को व्यक्त करता कवि यह दर्शाना चाहता है कि आज किसी रिश्ते में भावना से ज्यादा सामाजिक सुरक्षा और आर्थिक संरक्षण का भाव होता है। आंतरिक तृप्ति और समर्पण से दाम्पत्य जीवन का संबंध छूटने लगा है शीर्षक कविता 'नदी और समुद्र' के रूपक से उस शाश्वत सत्य को उद्घाटित किया गया है जिसमें स्त्री पुरुष के प्रेम में छिपे अहंभाव और प्रणय की सच्चाई सामने आती है। स्त्री के समर्पण और त्याग को पुरुष अधिकार मानकर अहंकारपूर्ण तृप्ति में मगन रहता है। यह इस तथ्य को स्वीकार नहीं कर पाता कि उसके पौरुष की सार्थकता स्त्री के त्याग से ही है।

स्त्री पुरुषत्व का दर्प अपनी निजता खोकर भी सहेजती है। समुद्र की भीषण

गर्जना के पीछे नदी का अनसुना चीत्कार कवि को मथता है। वह समुद्र को नदी के अस्तित्व का शोषक कहकर परंपराओं से चली आ रही स्त्री शोषण का विरोध करता है। 'कविता में माँ' को वह शब्दातीत मानता है और 'चीअर गर्ल्स' विकासवादी संस्कृति का विकृत रूप।बाजारवाद ने स्त्री को भी बाजार बना दिया है। स्त्री विमर्श के भुलावे में छली जा रही पवित्रता से आँखें फेरने वाली प्रगतिशीलता, थोपा गया ऐसा विचार है जिसे च्युंगम की तरह चबाकर स्वादहीन रबर सा, थूक दिया जाता है।

साहित्य, विज्ञान और आदर्श कला के गुंजलक में फँसे आदमी की आदिम खोज में समय अलक्षित ही रह जाता है। भविष्य दृष्टा कवि उस लेखन के प्रति आशंकित और भयग्रस्त है, जो भविष्य की दिशा तय करता है। 'चाँद' के बहाने कवि धरती को त्राण देती कुत्सित मनोवृत्तियों के स्थान पर शुचिता का आह्वान करता है। वह नए पथ पर चलकर, 'पीढ़ियों के लिए प्ररेणा, स्वयं के लिए संतोष, जीवन के लिए सार्थकता' को ही मनुष्य होने की परिभाषा देता है। 'आज का आदमी' दिग्भ्रमित है। धर्म, आध्यात्म, दर्शन और भ्रमित विचारधाराओं ने विज्ञान की सहजता को अभिशाप बनाकर सांस्कृतिक अपमिश्रण का पाप किया है। विघटनकारी तत्वों ने युवा पीढ़ी को पंगु बनाने में सारी ऊर्जा खर्च कर दी है, इसीलिए विकास के नाम पर विध्वंसकारी ताकतें सभ्यता पर हावी होती जा रही हैं। 'भ्रमित युवा' अपनी राह नहीं चुन पा रहे और दिशादर्शक भी कोई नहीं है। स्वाधीनता ने व्यक्ति को कला, संस्कृति और वैभवपूर्ण अतीत से विमुखकर खोखले 'विकास' के टूटे सपनों वाले बियावान के भटकने को विवश कर दिया है। जीवन को पुनः ऊर्जस्वित करके गतिशील बनाने के लिए 'कवि और कुम्हार' के माध्यम से कवि विचार रूपी प्रकाश की कामना करता है, जिसे कुम्हार का दीपक ही फैला सकता है। शब्द ब्रह्म के साधक कवि 'नरेश मेहता' को प्रणाम करता है, जिसने शब्द को अमरत्व देकर वसंत बना दिया है। वह शब्द ब्रह्म की अनुगूंज का चिरस्थायी होने की कामना करता है। कवि को 'संगम के तट पर' प्रवासी पक्षियों का आना वैसा ही लगता है जैसे अखिल ब्रह्मांड में भ्रमण करती आत्माएँ। 'निमंत्रण पत्र' कविता में देह व्यापार करती स्त्री की विवशता है और 'अनदिखे जलजले' में मनुष्य जीवन के अनवरत प्रश्नों की व्याकुलता है। "जीवन लाश को ढोता है वह/प्रश्नों में लदा फदा जीवन का चिरंतन सत्य भी यही है।" 'स्वप्न के खंडहर' में कवि समय के अंधेरों में लुप्त होती जय–पराजय को याद करता है। 'बाजार का भ्रमजाल' में विकास के मायाजाल में उलझी मृत संवेदनाओं की पीड़ा है और नैतिकता के रिसते जख्मों का अरण्यरोदन है। अपनी जिजीविषा को सहेजते युगीन प्रश्नों से मुँह फेरकर संवाद हीनता से उपजा आक्रोश व्यक्त करती रचना सार्थकता खो देती है, इसीलिए कवि का कथन है कि "भाषा चलाती हैं/संसार के व्यापार को/युगों और कल्पांतरों में रचे गए/वेद, पुराण, बाइबिल, कुरान और गुरुग्रंथ/सभी में पहले प्रश्न बनती है वह/फिर तराशती है/आदमी की प्रज्ञा को।" वर्तमान को अतीत की गौरव गाथाओं से महान् नहीं बनाया जा सकता। 'आधुनिकता' के नाम पर मूल्यों का क्षरण रोकना होगा। वास्वविकता पर ओढ़ी गई शालीनता मनुष्य को मनुष्य होने से रोकती है तभी तो– 'छिपाने के लिए विद्रूपताएँ ओढ़े जाते हैं

आवरण/आवरण वस्तुओं के ही नहीं शब्दों के भी होते हैं।' जो इतने घातक हैं कि मनुष्यता को भी लील लेते हैं।

कवि की रचना कालजयी तभी होती है जब उसमें करुणा की अंतःसलिला प्रवाहित होती हो वरना शब्दांबर निरर्थक हैं। 'आह से उपजा होगा गान' या आह से कविताएँ जन्मी होंगी, यही लेखक का ध्येय होना चाहिए। मनुष्य विषम परिस्थितियों में ज्ञान प्राप्त करता है। जैसे बुद्ध को जीवन की नग्नता का भान हुआ, तभी वे बुद्ध बने। कवि का मानना है कि– 'यातनाएँ बनाती हैं बुद्ध' वरना 'सिद्धार्थ ही बने रह जाते बुद्ध'। 'कविता' मनुष्यत्व का उदय है। सत्य के पक्ष में खड़ा रहने वाला साहित्य ही कालजयी होता है 'कविता सत्य का नवनीत' है। 'स्त्री और छाया' में कवि स्त्री और नदी, समाज और समुद्र को एक–दूसरे में विलीन कर देता है। विश्वप्रेम के मूल में ममता ही तो है। 'महाकवि और परिंदा', 'उन क्षणों में', 'याद' जैसी कुछ रचनाएँ ऐकांतिक अनुभूतियों को व्यक्त करती है। 'संभ्रांत लोग', ओढ़ी गई सांस्कृतिक चेतना और आभिजात्य का मुखौटा लगाए खोखले चरित्रों पर किया संकेत है। 'दुःखदायी मित्र', 'कबीर की प्रासंगिकता', 'उत्खनन में कंकाल' का रहस्य खोलती कविताएँ भी हैं। 'थर्ड जेंडर' के बहाने पुरुषों की कायरता पर आक्षेप लगाया है जो मनुष्यता का सम्मान करने के बजाए उसकी संवेदनाओं का उपहास करते हैं। मनुष्य के कॉइयापन को जताती 'कुत्ता आदमी' जैसी व्यंग्यात्मक रचना है। 'विरोध' अच्छाइयों की भी आलोचना करने की मानसिकता पर रोष जताती कविता है। 'सपनों की मंडी' में भावनाओं की खरीद–फरोख्त करती स्वार्थपरता से कवि आहत महसूस करता है। उसकी स्मृतियों में सामाजिक रिश्तों की प्रगाढ़ता महसूस करवाते गाँव बसे हैं, जो विकास की अंधी दौड़ में कस्बा और नगर बनकर रह गए हैं। अपनी संवदेनाओं और अनुभूतियों को पूरा संदर्भों, मिथकीय बिम्बों और प्रांजल भाषिक संस्कारों से पुष्ट करते हुए कवि राकेश शर्मा की सभी रचनाएँ संस्कारों की पुख्ता मीन पर टिकी हैं। शिल्पगत सुघड़ता के साथ कवि का आत्मसंघर्ष और सांस्कृतिक प्रदूषण से उपजा आक्रोश पाठक को उद्वेलित करता है। आंग्ल कवि जेम्स ने कहा था कि प्रकृति के रूप रहस्य को भव्य रूप में प्रस्तुत करना और उसकी महानता व सौंदर्य की अनुभूति कराकर उसके महत्व की प्रतिष्ठा कराना कलाकार का ध्येय है। कवि कर्म भी कला साधक की ईश्वर से की गई प्रार्थना है। इसके पवित्र स्वर मूल्यहीन समाज को नई राह सुझा सकें यह सामर्थ्य इन कविताओं में हैं।

❑❑❑

समाज की विसंगतियों, आस्थाओं, अनास्थाओं का वास्तविक विश्लेषण करता उपन्यास 'आड़ा वक़्त'

ओम प्रकाश शर्मा

राजनारायण बोहरे का उपन्यास 'आड़ा वक़्त' समाज की विसंगतियों, विकृतियों, विषमताओं, जटिलताओं, रीतिं–रिवाजों, आस्थाओं, अनास्थाओं का यथार्थ और वास्तविक विश्लेषण करता है।

यह उपन्यास समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, बेईमानी, धोखाधड़ी, ईमानदारी और ईमानदारी से इतर पड़ने वाले परिणामों, प्रभावों और दुष्प्रभावों की व्याख्या भी करता है। उपन्यास को पढ़ते वक्त मुझे लूकाच की पंक्तियाँ याद आ रही थी कि "उपन्यास निकृष्ट समाज की निकृष्ट उपज होता है"

इस उपन्यास का आरंभ छत्तीसगढ़ के उस क्षेत्र से होता है जो बिहार और उड़ीसा के छोर से लगता है। यह क्षेत्र नक्सल प्रभावित क्षेत्र है। उपन्यास में नक्सल आंदोलन का कोई जिक्र नहीं है और यह ठीक भी है यदि ऐसा न किया होता तो उपन्यास अपने लक्ष्य से भटक जाता। औपन्यासिक समाज का निर्माण वास्तविक समाज से होता हैं। एक अच्छे लेखक की यही सफलता होती है कि वह अपने लक्ष्य पर टिका रहे। देश–काल और आसपास से सिर्फ उन चीजों का चयन करे जिसकी उसे वास्तव में जरूरत है और राजनारायण बोहरे ने भी यही किया है।

उपन्यास दो तरह के समाज को लेकर चलता है। एक आदिवासी समाज की व्यवस्था, उसकी परिस्थितियाँ, उसकी समस्याएँ, दूसरे यह उपन्यास मध्य और उत्तर भारत की सामाजिक विकृतियों और परिस्थितिजन्य विसंगतियों को न केवल उद्घाटित करता है बल्कि मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी करता है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की यथार्थ अभिव्यक्ति बहुत कम उपन्यास कर पाते हैं।

आदिवासी क्षेत्र में प्रचुर मात्रा में प्राकृतिक संपदा मौजूद रहती है जिस पर आदिवासियों का हक होना चाहिए लेकिन उन्हें बेदखल कर दिया जाता है। उन्हें आतंकित करके रखा जाता है, उन्हें उनके अधिकार से वंचित रखा गया है। पूँजीपतियों, व्यापारियों और बाहुबलियों का गठजोड़ रहता है। यहाँ के आदिवासियों को जब रोजगार नहीं मिलता है तब अपना पेट पालने के लिए वे नदी से रेत निकालते हैं। उस रेत को निथारते हैं। उस निथरे हुए रेत में कुछ सोने के कण रहते हैं जिससे उनको एक कटोरा धान मिल जाता है। वे कहते हैं– "रोज–रोज नहीं करते साहब। हम लोग मजदूरी करते हैं अगर किसी दिन मजदूरी नहीं मिलती तो उस दिन यह काम करते हैं।" स्वरूप जब उनको बताता है कि– "मैं यहाँ पीडब्ल्यूडी रेस्ट हाउस में सब इंजीनियर हूँ। इतना कहना था कि वहाँ काम कर रहे सभी लोग अपने हाथों के तसले फेंककर भाग निकले।'' (पृष्ठ 6)

गाँव के समाज की खास बनावट होती है। कुछ लोग खेत के मालिक होते हैं, कुछ लोग खेतिहर मजदूर और कुछ लोग ऐसे होते हैं जो खेतों में काम तो नहीं करते मसलन बढ़ई, लोहार, कुम्हार, नाई, धोबी

पंडित, मोची, जुलाहे इन लोगों का जीवन खेतों से ही जुड़ा है। वर्षभर बढ़ई हल बनाता है, बखर बनाता है, गाड़ी बनाता है, बैलगड़ियों के धुरा, पटली, सौला, जुआ और जो भी लकड़ी संबंधित काम हो, लोहार साल भर हल का फार, बखर का पार, गाड़ियों के धमा, हंसिया, खुरपी, गेंती, फावड़ा, कुल्हाड़ी सब पर धार रखता है। कुम्हार वर्षभर चाक घुमाता है, घड़े, दिये, पारी आदि मिट्टी से बनने वाली चीजें बनाता है। इसी तरह हर जाति के लोग अपना काम करते हैं लेकिन पैसा नहीं लेते हैं। वह साल में एक बार खलिहान में अपना हिस्सा माँगते हैं और यह हिस्सा हर खलिहान से मिलता है तो उनका वर्षभर का काम चल जाता है। इतना भर हो जाए, संतोष है।

"खलिहान में कितने सारे मँगते आते। मँगते भी और दान दक्षिणा वाले भी। दूर से आए भिखारी–फकीर शनि के दान वाला जोशी, गाँव का लुहार–बढ़ई–नाई–धोबी और आसपास के तमाम पंडित भी।" (पृष्ठ 22)

जमीन किसान को प्राणों से भी प्यारी होती है। उसके लिए जमीन ही सब कुछ होती है।

"और दादा को तो सबसे ज्यादा खब्त थी– अपनी जमीन की। पिता की विरासत में मिली चौंतीस बीघा जमीन में प्राण बसते थे उनके। सोलह साल की उम्र में पिता ने बंजर से खेत उन्हें सौंपे और आँखे मूंद ली थीं।"

जमीन से केवल किसान का पेट नहीं भरता बल्कि दुनिया की पूरी आबादी का भरण–पोषण होता है। उसी जमीन को किसान से छीनने के लिए तमाम षडयंत्र होते हैं। एक किसान को उसकी ही जमीन से बेदखल करके, उसकी ही जमीन में मजदूर बनाए जाने के लिए तमाम हथकंडे अपनाए जाते हैं। साहूकार, पूँजीपति और सरकार मिलकर उत्पीड़न के लिए तमाम रास्ते बनाती है। छत्तीसगढ़ में रेस्ट हाउस के लिए जमीन को अधिग्रहित करने की कोशिश हो या जुगल किशोर की जमीन का अधिग्रहण हो जाना हो। प्रकृति की मार भी किसान को ही झेलनी पड़ती है। सूखा, पाला, ओले, बारिश सब का कहर किसान पर ही टूटता है जुगल किशोर जैसे मौजू किसान भी राहत कार्यों में अंततः मजदूरी करने के लिए मजबूर हो जाते हैं। "लू के बबूले हवा में तैर रहे हैं, जुगलकिशोर धूप–छाँव की परवाह किए बगैर अपने टपरा से बायलर तक हर दस मिनट में चक्कर लगा रहा है और लौटकर कुछ आराम भी कर लेता है"। (पृष्ठ 40)

यह समाज का कड़वा सच है। समाज में सिर्फ उसकी इज्जत होती है जिसके पास पैसा होता है, रौब रुतबा होता है, तमाम संसाधन होते हैं, उनके परिवार की बहू बेटियों की भी इज्जत होती है, उसका आर्थिक शोषण नहीं होता। किंतु मजदूरी करने वाली महिलाओं की इज्जत आबरू से खेलना अधिकारियों और ठेकेदारों के लिए सामान्य सी बात है। इस पतनशील और भ्रष्ट व्यवस्था को भी राजनारायण ने अपने उपन्यास में ठीक से व्यक्त किया है– "यहाँ आकर जुगल किशोर ने कम दिनों में ही बहुत कुछ देख लिया है। यहाँ कल्लू और नौनीता की दादागिरी देखी है..... अभी तक जमराज का नाम ही सुना था, मगर खन्ना साहब के संपर्क में आकर वह भी देख लिया। काला भैंसे जैसा शरीर, इधर–उधर घूमती आँखें और किसी भी रेजा से मजाक करते–करते हाथ मार देने वाले खन्ना पूरे

यमराज हैं। हालाँकि सुना है कि कोई तहसीलदार साहब भी यहाँ के ऑफ़ीसर हैं, लेकिन खेता ने उन्हें देखा कभी नहीं है। वे तो कभी–कभी डाकबँगले तक आते हैं, तब कल्लू और नौनीता की खास ड्यूटी लगती है। उनकी सेवा के लिए कभी कोई तेज–तर्रार, सुंदर रेजा की भी ड्यूटी लगती है। शेष मजूर आपस में बतियाते रहते हैं कि अगली बार तैसीलदार साब की सेवा में कौन की ड्यूटी लगना है।" (पृष्ठ 46)

इस काम के लिए जुगलकिशोर की भी ड्यूटी लगती है। जुगलकिशोर मन मारकर एक बार तो ड्यूटी कर लेता है। फिर उसके दिमाग में यह ख्याल भी आता है कि इसकी जगह पर कोई रिश्तेदार की लड़की होती तो या मेरी बिंदो होती तो? वह इसी पशोपेश में रहता है, फिर सोचता है कोई बिंदो थोड़े ही है लेकिन फिर उसका जमीर जगता है। गद्दार आदमी का जमीर बहुत दिनों तक सोया हुआ नहीं रह सकता। यही वे चंद आवाजें होती है जो समाज में अन्याय और अत्याचार के खिलाफ खड़ी होती हैं। जुगलकिशोर भी तमाम जद्दोजहद के बाद यही तय करता है कि वह ऐसा नहीं करेगा। उसकी मुट्ठी तनने लगती है जुगलकिशोर ने शांत भाव से ड्रॉमों की बाउंड्री पार की फिर एकाएक मुड़ा और खन्ना साहब के केबिन की ओर देखकर गुस्से में चीखा "हरामजादे तेरी लाश में कीड़ा पड़े आक्क थू।" (पृष्ठ 52)

राजनीति वोट लेने के तरीके जानती है। वह जानती है कि भोली–भाली जनता को कैसे बेवकूफ बनाया जा सकता है। नेताओं का काम वादा करना और भूल जाना होता है। सारे वादे सिर्फ वोट के समय याद आते हैं। हमारे देश की जनता इतनी भोली है कि न जाने कब से वादों के सहारे जीती जा रही है। वादों के भरोसे वोट करती आ रही है। शम्शी मिनाई का एक शेर है–

"सब कुछ तो है अपने देश में रोटी नहीं तो क्या,
वादा लपेट लीजिए लंगोटी नहीं तो क्या।"

उपन्यास में वही वादा मुख्यमंत्री करते हैं–

"हम गारंटी लेते हैं पहले आपको सरकारी खर्च पर सही जगह बसा दिया जाएगा। रहने को सरकार की तरफ से अच्छे से अच्छे मकान बनाए जाएँगे। आपको उतने ही बड़े खेत दिए जाएँगे जितने कि अभी तुम्हारे पास हैं। यह सुनकर कल्याण सिंह और लोगों के मुँह पर संतोष के भाव आ गए।" (पृष्ठ 81)

नेता जानते हैं कि पब्लिक की नब्ज क्या है, कैसे उसे संतुष्ट किया जा सकता है और किस तरह उसे बेवकूफ बनाया जा सकता है। "मुख्यमंत्री ने अपने साथ चल रहे दूसरे अफसर से कहा, इन सबको भोजन कराओ और इनके गाँव जाने वाली बस में बैठा दो।" "कल्याण सिंह की इच्छा हो रही थी कि मुख्यमंत्री की जय जय कार करने लगे, लेकिन वल्लभ भवन का आतंक, आसपास खड़े ढेर सारे अफसरों को देखकर वे चुप रह गए।" (पृष्ठ 81)

राज नारायण बोहरे ने लोक निर्माण विभाग की यथार्थता को सुंदर ढंग से व्यक्त कर दिया है। सच है लोक–निर्माण विभाग में तीन प्रकार के चरित्र ही पाए जाते हैं। एक वह जो कार्य की गुणवत्ता से समझौता नहीं करते लेकिन काम को चलने देते हैं। दूसरे वे जो स्पेसिफिकेशन को अक्षरशः लागू करते हैं जिनके यहाँ ठेकेदार काम नहीं कर सकता। यह प्रजाति बहुत कम

पाई जाती है एक फीसदी से भी कम। तीसरी प्रजाति वह होती है जो बहुसंख्यक होती है। हर तरह के समझौते करती है, घटिया माल को इस्तेमाल करने की छूट देती है, सीमेंट और सरिया चोरी करने की छूट देती है, फर्जी नाप चढ़ाती है, फर्जी पेमेंट करती है। स्वरूप पहली प्रजाति का चरित्र है। आखिर में विभाग के कोप को सह नहीं पाता है, बीमार होकर अभावों में मर जाता है। स्वरूप जब नौकरी कर जो कुछ बचत कर पाता था वह दादा को देता था लेकिन दादा जब अस्पताल आए तो ख़ाली हाथ– ''स्वरूप उस अस्पताल में भर्ती हो गए थे जिसमें डॉक्टर ने ले जाने का बोला था जाने कैसे अगले दिन आ तो दादा भी गए थे लेकिन खाली हाथ। स्वरूप ने कहा "दादा आप कुछ पैसा नहीं लाए इलाज में बहुत पैसा लगता है।'' (पृष्ठ 127)

यह उपन्यास भारतीय पारिवारिक जटिलताओं को बहुत व्यापकता से व्यक्त करता है। दादा स्वरूप को पढ़ाते लिखाते हैं, उसे सब इंजीनियर बनाते हैं, उसकी नौकरी लग जाती है तो उसे छत्तीसगढ़ ज्वाइन करवाने जाते हैं, स्वरूप को इतनी दूर अकेले छोड़कर नहीं जाना चाहते हैं, उसका ट्रांसफर कहीं पास में हो जाए इसकी भरपूर कोशिश करते हैं, उसका विवाह कराते हैं, स्वरूप भी उन्हें पिता तुल्य ही मानता है। दोनों आदर्श परिवार के आदर्श भाई। इस सबके बाद भी दादा को जमीन के लिए कभी आड़ा वक़्त नहीं आता। दादा की जमीन के प्रति आसक्ति ही दोनों परिवारों के बीच दूरियाँ पैदा करती हैं–

"फिर दादा की खेतों के प्रति जमी आसक्ति दोनों परिवारों में दूरी का सबसे बड़ा कारण बन गई थी। हाँ, दादा जुनून और पागलपन की हद तक इतने आसक्त थे खेतों पर कि किडनी खराब हो जाने के बाद मृत्यु शैय्या पर पड़े स्वरूप की बहू ने इलाज के लिए दादा से रुपए माँगे तो दादा ने हाथ उठा दिए थे और बातचीत जमीन बेचने की आई तो दादा का वही जवाब था 'खेत और जमीन तो आड़े वक्त के लिए होती है।' दादा को कौन समझाता कि छोटा भैया मृत्यु शैय्या पर है, इससे खतरनाक आड़ा वक़्त क्या आ सकता है। दादा के सच्चे भाई स्वरूप ने नौकरी की थी और सारी कमाई दादा को देते रहे जिसे दादा खेतों पर खर्च करते रहे। ऐसे आड़े वक्त के लिए उसके पास धेला तक न था।" (पृष्ठ 143) अंत में वही जमीन जुगल किशोर से भी चली जाती है।

राजनारायण बोहरे का यह उपन्यास समाज की विसंगतियों, विकृतियों, विषमताओं, जटिलताओं, रीति–रिवाजों, आस्थाओं, अनास्थाओं का यथार्थ और वास्तविक विश्लेषण करता है। इसके लिए मैं उपन्यासकार को साधुवाद देता हूँ।

□□

❑❑❑

संपर्क सूत्र

1. प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल, 56, अशोक नगर, आधार तल जबलपुर, मध्यप्रदेश–482004
   मो. न.–9425044685, ईमेल– tnshukla13@gmail.com
2. डॉ. अनीता गांगुली, मकान सं. 9–24, प्लॉट सं. – 174, वैंकटाडरी टाऊनशीप, फेज–1 पाँचवी लेन, चौधरीगुंडा, मेडचल, तेलंगाना–500088,
   मो. न..–9391367802 ईमेल– anitaganguly1954@gmail.com
3. डॉ. पी. ए. राधाकृष्णन, एबीस नेस्ट रइनट्री अपॉर्टमेंट्स इल्लथ्थाया पी. ओ. टेंपिलगेट तलश्शेरी कण्णुर जिला, केरल–670102
   ईमेल– radhakrishnanpa129@gmail.com
4. डॉ. अमिय कुमार साहु, एसोसिएट प्रोफेसर (हिंदी) एवं प्रमुख, भाषा संकाय राष्ट्रीय रक्षा अकादमी, खड़कवासला, पुणे, महाराष्ट्र– 411023, मो. न.–8600329383,
   ईमेल–amiyaks@yahoo.com
5. डॉ. धर्मेंद्र प्रताप सिंह, सहायक आचार्य (हिंदी विभाग), हिंदू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली–110007,
   मो. न.–7838846000, ईमेल– dsingh@hinducollege.du.ac.in
6. राहुल राज आर्यन, मकान सं. 89, द्वितीय तल, गली सं. 06, भगत कालोनी, संत नगर, बुराड़ी, नई दिल्ली–110084,
   मो. न.–7827915153, ईमेल–claryans@gmail.com
7. प्रभाकर कुमार, शोधार्थी, हिंदी विभाग, हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय, तेलंगाना–500046
   मो. न.–8317582785, ईमेल–prabhakarhcu2013@gmail.com
8. डॉ. गुर्रमकोंडा नीरजा, असिस्टेंट प्रोफेसर, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, खैरताबाद, तेलंगाना–500004,
   मो. न.–9849986346, ईमेल–neerajagkonda@gmail.com
9. श्री महबूबअली अ. नदाफ, संत अलोशियस (स्वायत्त) महाविद्यालय, मंगलुरु, कर्नाटक, भारत–575003,
   मो. न.–09972078861, ईमेल– nadafmangalore@gmail.com
10. हनुमान प्रसाद शुक्ल, प्रतिकुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा– 442001 (महाराष्ट्र)
    मो. न.–9403783977, ईमेल– shuklahp7@gmail.com
11. डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह– डी–154, सांगवान सिटी, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश–202011
    मो. न.–82194057917, ईमेल – vickysingh675@gmail.com
12. डॉ. वी. पद्मावती, हिंदी विभागाध्यक्ष, पी. एस. पी. आर कृष्णम्माल महिला महाविद्यालय, कोयम्बत्तूर, तमिलनाडु–641004 मो. न.–9142242959,
    ईमेल– vpadmavathy@psgrkcw.ac.in

13. रमेश चंद्र, 46/22, गाँधीनगर, गली नं. 12, लाल कोठी, पटौदी रोड, गुरुग्राम, हरियाणा–122001 मो. न.–9711011034, ईमेल–sambherwal@yahoo.co.in
14. लोकेंद्र सिंह, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, बी–38, विकास भवन, प्रेस कॉम्प्लेक्स, महाराणा प्रताप नगर, जोन–1 भोपाल, मध्यप्रदेश–462011, मो. न.–09893072930, ईमेल–lokendra777@gmail.com
15. डॉ. कुमार विश्वबंधु, 388/8, बेहाला एअरपोर्ट रोड, मेन गेट, पो–पर्णश्री पल्ली, कोलकाता–700060,
मो. न.–9831198760, ईमेल–kumarvishwabandhu@gmail.com
16. मनीष कुमार सिंह, एफ–2, 4/273, वैशाली, गाजियाबाद उत्तरप्रदेश, पिन–201010,
मो. न.–8700066981, ईमेल–manishkumarsingh513@gmail.com
17. राधेश्याम बंधु, बी– 3/163, यमुना विहार, नई दिल्ली–110053 दूरभाष– 011–22911512
18. कृष्ण कुमार कनक, प्रबंधक, सचिव–प्रज्ञा हिंदी सेवार्थ संस्थान ट्रस्ट "कनक–निकुंज" ठार मुरली नगर, गुँदाऊ, लाइन पार फिरोजाबाद, उत्तर प्रदेश–283203,
मो. न.–7017646795, ईमेल–kanakkavya@gmail.com
19. राकेश चक्र, 90, बी शिवपुरी, मुरादाबाद–244001, उत्तर प्रदेश
मो. न.–9456201857, ईमेल–rakeshchakraoo@gmail.com
20. डॉ. अशोक बाचुलकर, सहयोगी प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, आजरा महाविद्यालय, आजरा तहसील–आजरा, कोल्हापुर, महाराष्ट्र–416505
मो. न.–9423391579, 9764835672
21. डॉ. भगवान त्रिपाठी सी–33, शरधाबालि चौथी गली एक्सटेंशन खोड़ासिंगी, ब्रहमपुर, जिला, गंजाम, ओडिशा–760010, मो. न.–9437037485,
ईमेल– bhagaban35@gmail.com
22. गौरीशंकर रैणा, 1901, टावर–1,स्काई गार्डन, सैक्टर 16–बी ग्रेटर नोएडा (पश्चिम), पिन–201318, मो. न.–9810479810, ईमेल– gsr19@rediffmail.com
23. रोहित प्रसाद पथिक, के.एस रोड़, रेल पार डीपू पाड़ा क्वार्टर नंबर–741/सी, आसनसोल, 713302 (पश्चिम बंगाल)
मो. न.–8101303434/8167879455 ईमेल– poetrohit2001@gmail.com
24. डॉ. पद्मा सिंह– पूर्व प्राचार्य एवं विभागाध्यक्ष तुलनात्मक भाषा अध्ययनशाला देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर, मध्यप्रदेश–452001 मो. न.–9425053679,
25. डॉ. ओम प्रकाश शर्मा– 1, तुलसी विहार, सेवा नगर, ग्वालियर, मध्यप्रदेश–474002 मो. न.–9425307705,

❑❑❑

केंद्रीय हिंदी निदेशालय

भाषा पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र

सेवा में,

निदेशक

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,

शिक्षा मंत्रालय, पश्चिमी खंड–7, आर. के. पुरम्, नई दिल्ली – 110066

ई.मेल–chdsalesunit@gmail.com

फोन नं. – 011–26105211 एक्सटेंशन नं. 201, 244

महोदय/महोदया,

कृपया मुझे भाषा (द्वैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए / पाँच वर्ष के लिए/ दस वर्ष के लिए/ बीस वर्ष के लिए दिनांक ..... से सदस्य बनाने की कृपा करें। मैं पत्रिका का वार्षिक/ पंचवर्षीय/ दसवर्षीय/ बीसवर्षीय सदस्यता शुल्क ..... रुपए, निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं. ..... दिनांक ..... द्वारा भेज रहा/रही हूँ। कृपया पावती भिजवाएँ।

नाम : .....

पूरा पता : .....

.....

.....

मोबाइल/दूरभाष : .....

ई–मेल : .....

संबद्धता/व्यवसाय : .....

आयु : .....

पूरा पता जिस परपत्रिकाः .....

प्रेषित की जाए : .....

सदस्यता	शुल्क डाक खर्च सहित
वाषिक सदस्यता	रु. 125.00
पंचवर्षीय सदस्यता	रु. 625.00
दसवर्षीय सदस्यता	रु. 1250.00
बीसवर्षीय सदस्यता	रु. 2500.00

सदस्यता शुल्क सीधे www.bharatkosh.gov.in – Quick Payment – Ministry (007 Higher Education)- Purpose (Education receipt) में digital mode से जमा करवाई जा सकती है।

डिमांड ड्राफ्ट निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम एवं पूरा पता भी लिखें।

नाम एवं हस्ताक्षर

नोट : कृपया पते में परिवर्तन होने की दशा में कम से कम दो माह पूर्व सूचित करने का कष्ट करें।

पंजी संख्या. 10646/61
ISSN 0523-1418

भाषा (द्वैमासिक)
BHASHA-BIMONTHLY
पी. ई. डी. 304-5-2022
700

भाषा

सितंबर–अक्तूबर 2022

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम्

हिंदी

केंद्रीय निदेशालय

Digital India
Power To Empower

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
उच्चतर शिक्षा विभाग
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066
www.chd.education.gov.in
www.chdpublication.education.gov.in
bhashaunit@gmail.com